



२ अा (१५०)

श्रीमद्भुद्धिसामरसूरि प्रेयमाळा ग्रन्थाङ्क-१११

अह ॥

## अध्यात्मसार

रचयिता

श्रीभद्र यशोविजयल उपाध्यायल  
पठित श्री वीरविजयलना टथा संह

प्रगटकर्ता

श्री अध्यात्मज्ञानप्रसारक भृंडण

( खा भण्डुलाल चोहनलाल पादराकर )

वीरात २४१४ ]

प्रत १०००

[ निधि स १६६४

भू-४ ०-१२-०

---

---

मुद्रक-शोठ देवचंद दामजी  
आनंद प्री. प्रेस—भावनगर.

---

---

## प्रस्तावना.

---

श्री यशोविजयजी उपाध्यायना पून्य नामधी जैन समाज सुपरिचित छे तेओ आजे चिदेही छता अक्षरदेहे जीवता छे. तेमनी केटलीक अमर कृतिओ ज्ञनसमाजमा घेर घेर बचाय छे. तेमना जेटली लोकप्रियता मेळपवा बहु ओछी व्यक्तिओ शक्ति मान् थड छे जे थोडाएक परिप्रथम पक्किना साधुओ जैन समाजे प्रकटाव्या छे तेमाना तेओश्री एक छे

सर्वदर्शनमा तेम जैनदर्शनमा अध्यात्मज्ञान उपर धणो भार मूकबामा आव्यो छे तेनु कारण छे अध्यात्मज्ञान सर्वज्ञानने मोखरे छे जेणे आत्माने जाण्यो तेणे सर्व जाण्यु, अने जेणे सर्व जाण्यु छता आत्माने न जाण्यो तेणे कड न जाण्युं धार्मिक विधिविधानो, अनुष्टुप्नो बगेरे विकासने मार्गे लङ्घ जनारा छे खरा परन्तु आत्मानो पूर्ण विकास अध्यात्मज्ञाननी ग्राहि मिवाय शम्य नथी आत्मकल्याण ० ज जेनु ध्येय छे तेने माटे अध्यात्म मिना आरो नयी

आत्मा गहन छे, अगम्य छे आनदेवनजीए पोताना “निशानी क्या यताहु रे तेरा अगम अगोचर रूप” थी शुभ थता एक सुदर पदमा एनी अगम्यता बहु कुशब्दतापूर्वक बतायी छे तथी ज महापुरुषो आत्मानुशुद्ध स्वरूप जाणना सरवत्र प्रयत्नशील रहे छे—जीन सुद्धा समर्पी दे छे

अध्यात्मरमिकने अन्य कोई विषयमा रस पडतो नयी अध्यात्मनी तेने लगनी लागे छे श्री यशोविजयजी स्वयं कहे छे के “ स्त्रीना अधरस्य अध्यात्मशास्त्रना स्वादयी जुगान पुरुषने

जे सुख उपजे छे ते सुखनो स्वाद् अध्यात्मशास्त्रना स्वादनो जे समुद्र छे तेना एक विंदुमात्र छे ” ( अ. सा. श्लो. ९ ) परंतु तेनी प्राप्ति अत्यंत मुश्केल छे. “ जेम बनने विषे घर, दग्धिने धन, अंधारामां उद्योत, तथा मरुदेशने विषे जे पाणी, ते दुःखे पामवा योग्य छे, तेम जे धन्य प्राणी होय छे तेने ज अध्यात्म-शास्त्र कलियुगने विषे प्राप्त थाय छे. ” ( अ. सा. श्लो. १७ ) अध्यात्मनो आ रस अमर्यादित छे, निरवधि छे, अखुट छे, अनंत छे. “ कामनो जे रस ते भोगवतां सुधी मधुर छे. भलां भोजननो रस ते जमवाना वर्खत सुधी मधुरपणे वर्ते छे, पण अध्यात्मशा-स्त्रनी सेवानो जे रस ते तो निरवधि छे, केमके ते प्रारंभकाळथी मांडीने सदा वधतो ज रहे छे, पण किवारे विरस न थाय. ” ( अ. सा. श्लो. २१ )

अध्यात्म ज्ञाननी प्राप्तिथी ज मनुष्य महान् थइ शके छे. ते विना साच्ची महत्ता आवती नथी. “ जे प्राणी निश्चे अध्यात्म-शास्त्रने पाम्या नथी अने आचार्य-पंडितपणुं इच्छे छे ते पण व्यर्थ छे. ” ( अ. सा. श्लो. ११ )

ग्रंथनी भाषा संस्कृत छे, परंतु संस्कृतनो सामान्य ज्ञाता पण समजी शके एवी सरलता अने सुगमता तेमनी भाषामां छे तेमनी काव्यशक्ति घणा उच्च प्रकारनी छे. तेमनां गुजराती काव्योमां नजरे पडती मधुरता, प्रासादिकता, शब्दलालित्य अने मनोहर उपमाओ तेमना संस्कृत काव्यमां पण नजरे पडे छे. रम्य कल्पनाओथी तेमनी काव्यपंक्तिओ दिपी उठे छे. अहिंसाने साचा स्वरूपमां जीवनमां उतारनार जैन भेखधारीमां जे मृदुता अने मार्दवनी आशा गखी शकाय ते मृदुता अने मार्दव तेमनी

कलममाथी टप्की रहेला आजे पण देखाय छे. भापामा तेना लेसकना मानसनु ग्रतिविंश पडे छे, तेमना अनेक लखाणोमाथी आपणे एक एवा यशोविजयनी कल्पनामूर्ति घडी शकीए छीए के जे तेओनी जीवतमूर्ति साथे कदाच अत्यत निकटनु साम्य धरावती होय.

तेओथी सस्कृतना महा विद्वान् हता, परतु विद्वान् के पडित कहेडायवा माटे ते जमानामा जडातोड शब्दो, क्षिट समासो अने भारेखम भापानो उपयोग करवानी आवश्यकता रहती हती तेवी भापा न लखुनार पडितोनी टीकाने पात्र थतो, पडितोमा तेनी गणना थती नहि श्रीमद् यशोविजयजीनामा पडितोनी भापा वापरवानी शक्ति हती, परतु तेमने सामान्य जनसमूहने प्रयोधग्रो हतो एवी क्षिट भापा वापरी ग्रथने समजी न शकाय एवा कोयडाह्यवनावगानी तेमनी इच्छा नहोती पंडितोनी टीका पण फातिल हती जनसमूहनी अने पडितो वच्चेनी भापानी रेंचारेची तेमना पोताना शब्दोमा आ प्रभाणे छे “जे नारे पोतानी मेळे पद वाचता अर्थ सङ्गे एवा अल्पार्थ ने सुगम पद जो अमे जोडीये तो खल माणस एम कहेशो जे, आ ग्रथमा काड मार नवी, वळी जो अमे गभीर अर्थ सहित पद वाधीए तो खल माणस कहेशो के कठण पद वाध्या छे, एनो शु अर्थ करीए ? ए तो मुगानी पारसी छे एवे श्रेये कोइने गुण न थाय ” ( अ सा प्रश्नस्ति -लो० ४ ) तेमनो आखो ग्रथ अवलोकता जणाय छे के तेओथ्रीए काव्यनु अने विपयनु गौरव साचमा छता भापानी सरळता टकावी राखी छे, अने पडित-अपडित वच्चे समाधान स्वीकारी समतुला जाळनी बनेनी टीकाओथी पर थगा प्रयत्न कयो छे.

आ ग्रंथ उपर पंडित वीरविजयजी गणीए अर्थ भर्या छे. श्रीवीरविजयजीना परिचयनी जैन समाजने के साहित्यरसिक वाचकने भाग्येज जस्तर हो. तेमनी भाषानी मीठाश अने ललित उपमाओमां तेओ वीनहरिक हो. तेमनी पूजाओथी भाग्येज जैननुं नानुं बालक पण अजाण हशे. पर्युपणना पवित्र दिवसोमां मंदिरे मंदिरे तेमनी पूजाओना मधुर घोप कर्णपटल पर अथडाय हो. तेमना काव्योनी प्रापादिकता अने मधुरता पर मात्र जैनो नहि जैनेतरो पण मुग्ध चन्द्रा हो ए सर्वविदित हो. तेमना जेवा समर्थ पुरुषने हाथे लखायेलो टबो बीजा कोइ लेखकना करतां वधारे प्रमाणिक होइ शके ए स्वाभाविक हो. संस्कृत नहिं जाणनार वर्ग उपर तेमनो उपकार अनहद हो.

आ युगमां ज्यारे अध्यात्मज्ञान तरफ विशेष वेदरकारी चतावाती जाय हो, ज्यारे अध्यात्मशास्त्रना गहन समुद्रमां डुबकी मारबाने बदले थोडाएक आचारविचारो अने पंडिताइ पाछल मथी धर्मना किनारा उपर धूम्या करवामां आवे हो, ज्यारे धर्म, धर्म-धूरंधरो माटे, कुरुक्षेत्रनुं मेदान पूर्ण पाडे हो तेवा समये आवा मार्गसूचक ग्रन्थनी खास जस्तर हो. थोडाएक विचारवंत पुण्यात्माओ आ ग्रंथ वांची अध्यात्मज्ञानने मार्गे बळझे अने अध्यात्म रसनो यत्किञ्चित् आस्वाद करवा पण शक्तिवान् थशे तो ग्रन्थ-लेखकनो थ्रम सफल थयो गणाशे.

राजमहेल रोड,  
बडोदरा.  
ता. १-८-३७

नंगाकुमार मकाती  
वी. ए; एलाग्ल. वी.



श्री यशोविजयजी उपाध्यायकृत

# अध्यात्मसार (सार्थ)



ऐङ्ग्रेजिनत श्रीमान्नटतान्नामिनदन ।

उहधार युगादौ यो जगदज्ञान पक्षत ॥ १ ॥

आशातिस्तातिभिङ्गभूयाद्विना सृगलाल्लन ।

गार कुरल्योगाम कुर्पते यस्य निर्मला ॥ २ ॥

अर्थ—इन गमधी जे श्रेणि तणे नह क० नमस्कार कर्गे हे  
जेने पा अने अट मढा प्राविहार्यन्प लाखीण करी युक्त तथा युगने  
आडे जगनुने ब्राह्मनन्प काढवमार्यी उद्धार एवनार एहरा जे  
थीकरमदेह भगवान् र जरमंगा रजा । ॥ १ ॥ धीरातिनाय  
भगवान् र न वप्रालींगी प्रनि मंत्रापना भेदनाग थाशा । मृगनु  
तांगन हे जेने पा तथा जेर और्डिना निर्मल थां रमाईन  
रिक्तिन रहे र तार तेसी गार । २० गारी न एरीत ति  
उआ रहे ॥ २ ॥

श्रीशैवेयं जिनं स्तौमि भुवनं यशस्वेयः ।

मारुतेन मुखोच्छेन पांचजन्यमप्सुरत ॥ ३ ॥

जीयात् फणिफणप्रांतं संक्राततलुरेकदा ।

उद्धर्तुमिव विश्वानि श्रीपार्वीवहुस्वरूपभाक् ॥ ४ ॥

अर्थ—शिवारणीना पुत्र श्रीनेमनाथजी तेमने स्तुतु छुं.  
जे भगवंते पोताना यशे करीने जेम जगत्‌ने भर्यु छे तेमज पोताना  
मुखथी प्रगल्घो जे वायु तेणे करीने पांचजन्य नामे शंखने पूरीने तेनो  
नाद कीधो ॥ ३ ॥ फणी के० शेषनाग तेनी फणना प्रांते जे मणी  
तेने विषे संक्रम्यु जे शरीर तेणे करीने ब्रण जगत्‌नो उद्धारज जाणे  
करता होयनी एवा जे श्रीपार्वीनाथ वहुस्वरूपना कर्ता ते जय-  
वंता वर्तो ॥ ४ ॥

जगदानन्दनः स्वामी जयति ज्ञातनन्दनः ।

उपजीवंति यद्वा चामद्यापि विवुधाः सुधाम् ॥ ५ ॥

एतानन्यानपि जिनान्नमस्कृत्य गुरुनापि ।

अध्यात्मसारमधुना प्रकटीकर्तुमुत्सहे ॥ ६ ॥

अर्थ—जगत्‌ने आनन्दना करनार, वली जेहनी अमृतसरि-  
खी वाणीने हजी सुधी पंडित लोको सेवे छे, अंगीकार करे छे एहवा  
ज्ञातनन्दन जे श्री वीरजिन ते जयवंता वर्तो ॥ ५ ॥ ए पांचे परमेश्वरने  
तथा वीजा पण जिनोने तथा पोताना गुरुने नमस्कार करीने  
अध्यात्मनो सार जे रहस्य ते प्रगट करवाने हवे उत्साह  
करुं छुं ॥ ६ ॥

शास्त्रत्परिचितां सम्यक् संप्रदायाच्च धीमितां ।

इहानुभवयोगाच्च प्रक्रियां कामपि द्रुवे ॥ ७ ॥

योगिना प्रीतये पद्ममध्यात्मरमपेशल ।

भोगिना भासिनीगीत मगीतकमय यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—यणा शास्त्रोधी भली रीते परिचयेकरीने ने वली पडितलोकोना मंप्रदायथकी जे अध्यात्मशास्त्रने विष अनुभव थयो तेथकी हु काइक सदेप मात्र प्रस्तावना करु छु ॥७॥ जे रीते भोगीपुरुषने स्तीना गीतमगीत प्रियकारी लागे ते ते रीते योगीश्वर पुरुषने प्रीतिना अर्थे अध्यात्मरसे करीने मनोहरकारी एवो आ ग्रन्थ पद्मपताये करु उ ॥ ८ ॥

अथ अध्यात्ममाहात्म

काताधरसुधास्वादा चूना यज्ञायते सुम् ।

विदुः पान्वे तदध्यात्मशास्त्रस्वादसुग्वोदधे ॥९॥  
अध्यात्मशास्त्रसभूत सतोपसुग्वशालिनः ।

गणयति न राजान न श्रीदनापि वासवम् ॥१०॥

अर्थ—स्तीना अधरस्य अमृतना स्वादयी जुनान पुरुषने जे सुख उपजे छे ते सुखनो स्वाद अध्यात्मशास्त्रना स्वादनो जे समुद्र छे तेना एक बिंदुमात्र छे ॥ ९ ॥ जे प्राणीने अध्यात्मशास्त्रयी मनोहर सतोपस्य सुग्व प्राप्त थयू ते प्राणी रानाने तथा धनदने अने छ भरिसाने पण लेखामा गणतो नवी ॥ १० ॥

य किलाशिद्विताध्यात्मशास्त्र पादित्यमिच्छति ।

उत्क्षेपत्यगुली पगु म स्वद्रुफललिप्सया ॥११॥  
दभपर्वतदभोदि मौहार्दा बुद्धिच्छमा ।

अध्यात्मशास्त्रमुत्ताल मोदजालयनानल ॥१२॥

अर्थ—जेम धन्वरुना फलने लेखानी इच्छाये पागलो पुम्प आगली ऊची कर दे ते जेम व्यर्थे ते, तेम जे प्राणी निथे

अध्यात्मशास्त्रने पाम्या नथी अने आचार्य—पंडितपणुं इच्छे छे ते पण  
व्यर्थे छे ॥ ११ ॥ कपटरूप पर्वतने भेदवाने वज्र समान, मैत्रता-  
भावरूप समुद्रनी वृद्धि करवाने चंद्रमा समान एहबुं अध्यात्मशास्त्र ते  
वृद्धि पामेलुं एहबुं जे मोहजालनुं बन तेहने वालवाने अर्थे दावानल  
समान छे ॥ १२ ॥

अध्वा धर्मस्य सुस्यः स्यात्पापचारैः पलायते ।

अध्यात्मशास्त्रसौराज्ये न स्यात्कश्चिद्गुप्तवः ॥ १३ ॥

येषामध्यात्मशास्त्रार्थं तत्त्वं परिणतं हन्ति ।

कषायविषयावेशकलेशस्तेषां न कर्हिचित् ॥ १४ ॥

अर्थ—अध्यात्मशास्त्रनुं भलुं राजप्रवर्तते थके कशोये उपद्रव  
थाय नहीं, धर्मनो मार्ग सुगम थाय अने पापरूप चोरटा नासी जाय  
॥ १३ ॥ जे प्राणीना हृदयने विषे अध्यात्मशास्त्रना अर्थनुं  
तत्त्वतः ज्ञान थयुं छे तेने कपायरूप विषयना वेगनो कलेश ते  
कदी ए न थाय ॥ १४ ॥

निर्दयः कामचंडालः पंडितानपि पीडयेत् ।

यदि नाध्यात्मशास्त्रार्थवोधयोधकृपा भवेत् ॥ १५ ॥

विषवल्लिसमां तृष्णां वर्धमानां मनोवने ।

अध्यात्मशास्त्रदात्रेण छिंदति परमर्षयः ॥ १६ ॥

अर्थ—जो अध्यात्मशास्त्रना अर्थना वोधनी कृपा पंडित  
जेवाने पण न होय तो निर्दय एवो जे कामरूप चंडाल ते पंडितने  
पण पीडा कर्या विना रहे नहीं ॥ १५ ॥ जे परमऋषीश्वर छे ते  
अध्यात्मशास्त्ररूप दातरडे करीने मनरूपी बनने विषे वृद्धि पामती  
एहवी तृष्णारूप झेहरनी वेली तेने छेदी नाखे छे ॥ १६ ॥

वने वेठम धन दौस्ये तेजो ध्वाते जल मरौ ।

दुरापमाप्यते धन्यैः कलावध्यात्मवाङ्‌मय ॥१७॥

वेदान्यशास्त्रवित् रुलेङ रसमध्यात्मशास्त्रवित् ।

भाग्यभृद्भोगमाभोति वहते चदन ग्ररः ॥ १८ ॥

**अर्थ—**जेम वनने विषे घर, दरिद्रने धन, अधारामा उद्योत तथा मरुदेशने पिषे जे पाणी, ते दु रे पामगा योग्य छे, तेम ने धन्य प्राणी होय छे तेनेन अध्यात्मशास्त्र कलियुगने पिषे प्राप्त याय छे ॥ १७ ॥ वेदना जाण तथा बीजा शास्त्रना जाणनारा ते हेशना भोक्ता छे, अने रमना भोक्ता ते अध्यात्म-शास्त्रना जाणनारा छे ए रसनो भोग तो जे भाग्यत होय तेन पामे, अने जे गधेडो होय ते तो मात्र चदनना भारने उपाडे एट्लुज ॥ १८ ॥

भुजास्फालनहस्तास्यविकाराभिनया परे ।

अध्यात्मशास्त्रविजास्तु वदत्यविकृतेक्षणा ॥१९॥

अध्यात्मशास्त्रहेमाद्वि भयितादागमोदधे ॥

भूयामि गुणरत्नानि प्राप्यते विकुर्वन्नं किम्? ॥२०॥

**अर्थ—**भुजाना आम्होट करवे करीने, गली हाथने तपा मुग्नने पिळारे करीने, इत्यादिक नाटिक्ला अभिनय फरवे करीने मोगी पुस्त सुग करी माने छे, अने अध्यात्मशास्त्रना जाण जे पुस्त छे, त तो अमिकारी नेत्रना धर्णी इट्रियना निसार रहित छे ॥ १९ ॥ अध्यात्मशास्त्रम् जे हमाचल पर्वत तणे मध्यो छे आगमम् जे मुढ त थरी नीक्ल्या धणा गुणम् पीया जे रन ते तो रियुष जे पटित लोर तेओन पाम छे ॥ २० ॥

रसोभोगावधिः कामं सङ्गेष्ये भोजनावधिः ।

अध्यात्मशास्त्रसेवायां रसोनिरवधिः पुनः ॥२१॥

कुतक्यंयसर्वम् गर्वज्वरविकारिणा ।

एति दग्निमिलीभाव मध्यात्मग्रंयभेषजात् ॥२२॥

**अर्थ—**कामनो जे रस ते भोगवतां सुधी मधुर छे, भलां भोजननो जे रस ते जमवाना वखत सुधी मधुरपणे वर्ते छे, पण अध्यात्मशास्त्रनी सेवानो जे रस ते तो निरवधि छे केमके ते प्रारंभकालथी मांडीने सदा वधतो ज रहे छे, पण किवारे विरस न थाय ॥ २१ ॥ कुतक्यशास्त्रना सर्व रहस्यनो जे अहंकार, ते रूपी ताव तेहना विकारवाली यह एहवी जे दृष्टि ते अध्यात्मशास्त्ररूप औपधना योगथी निमलपणाने पासे छे ॥२२॥

धनिनां पुत्रदारादि यथा संसारवृद्धये ।

तथा पांडित्यदशानां शास्त्रमध्यात्मवर्जितं ॥२३॥

अधेतव्यं तदध्यात्मशास्त्रं भाव्यं पुनः पुनः ।

अनुष्ट्रेयस्तदर्थश्च देयो योग्यस्य कस्यचित् ॥२४॥

**अर्थ—**धनवंत जनने जेम पुत्र अने ही ते संसारनी वृद्धिनां कारण छे तेम अभिमाने भरायेला पंडित लोकने अध्यात्मशास्त्र विना मात्र संसारनी वृद्धि छे ॥ २३ ॥ ते माटे अध्यात्मशास्त्रने भण्डवुं, वली वारंवार हृदयने विषे भाववुं, एना अर्थनुं वारंवार चिंतन करवुं अने जे पुरुषो योग्य होय तेनेज शीखववुं—पुस्तक आपवुं ॥ २४ ॥ ए रीते अध्यात्मशास्त्रना महात्म्यनो पहलो अधिकार पूरो थयो.

## अथ अध्यात्म स्वरूप

---

भगवन ! कि तदध्यात्म यदिच्छमुपवर्णते ।

शृणु वत्स यथाशास्त्र वर्णयामि पुरस्तव ॥ १ ॥

गतमोहाधिकाराणामात्मानमविगृत्य या ।

प्रवर्तते क्रिया शुद्धा तदध्यात्म जगुर्जिनाः ॥ २ ॥

अर्थ—हवे शिष्ये पूछु के—हे भगवत ! अध्यात्म ते शु छे के जेनु तमे आपु र्णन करो छो ? त्यारे गुरु फहे छे कह शिष्य ! शास्त्रमर्यादाये तने कहु हु ते सामल ॥ १ ॥ जे मुनिराजनो मोहनो अधिकार नाश पाम्यो छे अने जे आत्माने आश्रीने शुद्ध क्रियाये अंतरआत्माने पिपे प्रवर्त्ते, तेनु नाम परमेश्वर अध्यात्म कह छे ॥ २ ॥

सामायिक यथासर्व चारित्रेष्वनुवृत्तिमत् ।

अध्यात्म सर्वयोगं पु तथानुगतमिष्यते ॥ ३ ॥

अपुनर्वधकान्नाचद्गुणस्यान चतुर्दश ।

क्रमशुद्धिमतो तावत् क्रियाध्यात्ममयो मता ॥४॥

अर्थ—सामायिक चारित्र जेम सर्व चारित्रने पिपे अनुगत कारणपणे वर्ते छे तेम सर्व जोगने पिपे जध्यात्म पण महचारीपणे वर्ते छे ॥ ३ ॥ अपुनर्वधी जे चोपु गुणठाणु त्याकी माडीने चोदमा गुणठाणा लगण अनुकमे जे आत्मानी पिशुद्धता प्रगट थाय ते सर्व अध्यात्म क्रिया जाणनी ॥ ४ ॥

आहरोपधिप्रजार्द्धि गौरवप्रतिनधत ।

भवाभिनदी या कुर्यात् क्रिया माध्यात्मवैरिणी॥५॥

क्षुद्रो लोभरतिर्दीनो मत्सरी भयवान् शठः ।  
अज्ञो भवाभिनंदीस्या निष्फलारंभसंगतः ॥६॥

अर्थ—अने जे आहारोपधिने अर्थे तथा पूजा पामवानी ऋद्धि तेनी गौरवताये वंधाणा थका भवाभिनंदी जे क्रिया करे ते सर्व अध्यात्म क्रियानी वैरिणी जाणवी ॥५॥ १ क्षुद्रता, २ लोभ, ३ रति, ४ दीनता, ५ मत्सरीपणु, ६ भय, ७ शठता, ८ अज्ञानताए भवाभिनंदिपणाना संगठकी जे क्रिया करे ते क्रियानो आरंभ निःफल थाय छे ॥६॥

शांतो दांतः सदागुसो मोक्षार्थी विश्ववत्सलः ।

निर्देभां यां क्रियां कुर्यात् साध्यात्मगुणवृद्धये ॥७॥

अत एव जनः पृच्छो त्पन्नसंज्ञः पिपृच्छिषुः ।

साधुपार्वे जिगमिषुर्धर्मं पृच्छन् क्रियास्थितः ॥८॥

अर्थ—१ शांतगुण, २ दांतगुण, ३ सदागुरुंदियपणु, ४ मोक्षार्थीपणु, ५ विश्वनुं वात्सल्यतापणु इत्यादिक गुणवालो निर्देभीयणे जे क्रिया करे ते क्रिया अध्यात्मगुणनी वृद्धिकर्ता थाय ॥७॥ ते माटे जेने तच्च पूछवानीं संज्ञा उपनी छे तथा पिपृच्छिषु कें० तच्च प्रते हवे पूछवाने सन्मुख थयो छे ते, साधुनी पासे तच्च सांभलवाने अर्थे जवानुशील छे जेनुं ते तथा क्रिया योगने विषे रह्यो थको धर्मना तच्चनं पूछे छे ते ॥८॥

प्रतिपित्सुः सृजन् पूर्वं प्रतिपन्नश्च दर्शनं ।

आद्वोयतिश्च त्रिविष्वोऽनंतांशक्षपकस्तथा ॥९॥

दृग्मोहक्षपको मोहशमकः शांतमोहकः ।

क्षपकः क्षीणमोहश्च जिनोऽयोगी च केवली ॥१०॥

अर्थ—वली तच्चने अगीकार करता यका पूर्वे प्रतिपन्न थयु छे सम्यक्त्वदर्शन जेने एवा शानकु तथा यति ते पण प्रकारना १ उपशमममकिती, २ क्षयोपशमसमकिती, ३ क्षायकममकिती ते अनतानुमधीनो यश रपाव्यो छे जेणे ॥१॥ वली जेणे दर्शनमोहनीय रपावी छे अथवा मोहनीयने उपशमावी छे एहवा जे उपशातमोही तथा क्षपकथेणिने पिपे नर्ते छे तथा जेणे मोहनो क्षय कर्यो छे ते सयोगीकेमली तथा अयोगीकेमली भगवत जाणवा ॥१०॥ यथाक्रमममी प्रोक्ता असख्यगुणनिर्जरा ॥

यतितत्त्वमतो अथात्मवृद्धये कलयापि हि ॥ ११ ॥  
ज्ञान शुद्ध किया शुद्धेत्यठाँ द्वाविह मगतौ ॥

चक्रे महारथस्येव पक्षाविव पतन्त्रिण. ॥ १२ ॥

अर्थ—ए अनुकमे जे नक्षा त मवला एक एक यकी अमरायातगुणी निर्जराना कर्ता ने, माटे एक कलाए करीने पण अध्यात्मनी वृद्धिने अर्ये उद्यम कल्यो एहीज हेतु छे ॥ ११ ॥ जेम रथना ने चक्र ते रथनी माये सत्स्वनन ने, तथा पक्षीनी ने पासो ते पक्षीनी साये मलग्रज ते, तेम एक शुद्ध ज्ञान अने रीनी शुद्ध किया ए ने यश ते अध्यात्मनी माये मलगन छे ॥१२॥

तत्पचमगुणस्यानादारभ्यैतदिच्छति ॥

निश्चयोऽव्यवहारस्तु पूर्वमप्युपचारत ॥ १३ ॥  
चतुर्युक्तिपि गुणस्याने शुद्धपात्रा क्रियोचिता ॥

अप्राप्तस्वर्णभूपाणा रजताभूपण यथा ॥ १४ ॥

अर्थ—पूर्व पण निश्चयनय अने व्यवहारनयनु बारोपण

उपचारथी छे, पण पांचमा गुणठाणाथी मांडीने ए नय इच्छे शे ॥ १३ ॥ अने चोथे गुणठाणे पण शुश्रूपादिक क्रिया ते उचित छे; जेम कोइने सोनानां घरेणां न मलतां होय तेने रूपानां मले ते पण रुडां मनाय ॥ १४ ॥

अपुनर्वधकस्यापि या क्रिया शामसंयुता ॥

चित्रादर्शनभेदेन धर्मविग्रहक्षयाय सा ॥ १५ ॥  
अशुद्धा पि हिशुद्धाया; क्रियाहेतुः सदाशयात् ॥  
ताम्रं रसानुवेधेन स्वर्णत्वमधिगच्छति ॥ १६ ॥

**अर्थ—**समभावे करीने सहित, दर्शन भेदे करीने विचित्र प्रकारानुं अपुनर्वध जे चोथुं गुणठाणुं तेहनी क्रिया पण धर्मना विभन्ने क्षय करनारी छे ॥ १५ ॥ तो पण भला आश्रय-थकी अशुद्ध क्रिया करे ते पण शुद्ध कहेवाय. जेम त्रांबु जे छे तेने गाली तेमां रसानुवेध कर्याथी ( रसायन मेव्ववाथी ) सोनुं थइ जाय छे तेम ॥ १६ ॥

अतो मार्गप्रवेशाय व्रतं मिथ्यादशामपि ॥

द्रव्यसम्यक्त्वमारोप्य ददते धीरबुद्धयः ॥ १७ ॥  
यो बुध्वा भवनैर्गुणं धीरः स्याद् व्रतपालने ॥  
सयोग्यो भावभेदस्तु दुर्लक्ष्योनोपयुज्यते ॥ १८ ॥

**अर्थ—**ए ज कारण माटे धीरबुद्धिना धणी रल्नत्रयना मार्गने विषे प्रवेशवाने मिथ्यादप्तिवालाने पण द्रव्य समकितनो आरोप करीने चारित्र आपे छे ॥ १७ ॥ जे प्राणी संसारानुं निर्गुणपणुं जाणीने व्रत पालवाने विषे धीर थाय ते प्राणी धर्मने योग्य जाणवो अने अंतरंगभावनो भेद तो दुःखे करीने समजाय छे, माटे ते उपयोगमां न आणवो ॥ १८ ॥

नोचेद्वावापरिज्ञानातिसद्यसिद्धोपराहते ॥

दीक्षाऽदानेन भव्याना मार्गोच्छेदः प्रसज्यते ॥१९॥

अशुद्धानादरेभ्यासाद्योगान्नो दर्शनाद्यपि ॥

सिद्धिनैसर्गिकोमुक्ता तदप्यभ्यासिक यतः ॥२०॥

**अर्थ—** कदापि कोइ एम कहेये जे भाव जाप्या विना चारित्र देवाथी सिद्धि असिद्धि सर्व हणाइ जाय, ते घारे भव्यने पण दीक्षा न आपरी केम के तेने अतरंगनी रमर नथी, अने ए रीते दीक्षा न आपाथी तो सम्यग्मार्गनो उच्छेद थाय ॥१९॥ एम अशुद्धनो अनादर करे अने शुद्ध जोगनो अभ्यास न करे त्यारे दर्शन जे समकित ते पण शुद्ध न याय, केम के एक निसर्ग समकित टालीने शुद्ध कर्खु ते पण अभ्यासथी ज थइ शके ॥ २० ॥

शुद्धमार्गनुरागेणाशठाना यातु शुद्धता ॥

गुणवत्परतत्राणा सानकापि विहन्यते ॥ २१ ॥

विषयात्मानुबधैर्हि त्रिधाशुद्ध यथोत्तर ॥

ब्रुवते कर्म तत्राद्य मुक्त्यर्थपतनाद्यपि ॥ २२ ॥

**अर्थ—** शुद्धमार्गने अनुरागे करीने अशठता भावे जो आत्मानी शुद्धता के० निर्मलताये गुणत प्राणीने आधीन थड्ने वर्ते, तो ते प्रवृत्ति कोइ ठेकाणे हणाय नहीं ॥२१॥ निषये करीने, आत्माये करीने अने अनुबधे करीने ए त्रण प्रकारनी निशुद्धि छे ते एकेरुथी निर्मल छे ए त्रणे कर्म छे, तेमा जे दुखथी पोताना आत्माने मूकामनाने शपापात प्रमुख करे तेहने निषयशुद्धि कहिये ॥ २२ ॥

अज्ञानीनां द्वितीयं तु लोकदृष्ट्यागमादिकं ॥

तृतीयं शांतवृत्त्यातत्त्वसंबेदनानुगं ॥ २३ ॥

आग्रानाज्ञानवाहुल्यान्मोक्षवाधकवाधनं ॥

सद्भावाशयलेशोनोचितं जन्मपरे जगुः ॥ २४ ॥

**अर्थ—**अज्ञानीने आत्मशुद्धि नामे वीजी शुद्धि थाय, ते लोकदृष्टिये पांच यम नियम प्रमुख पाले छे-ए वीजो भेद, त्रीजो आत्मातुवंध ते कहिये, जे शांत वृत्तिये तच्चनुं संबेदन करे, चितन करे ॥ २३ ॥ पहेली शुद्धिमां अज्ञानी वहुलता छे, जेणे करीने मोक्षना वाधकने वाध न करे अने तेना सद्भावथकी शुभाशयनो लेशमात्र होय, तो तेथी जन्म-मरणनी परंपरा काँइ त्रुटे नही एह्युं योगाभ्यासी पुरुष कहे छे ॥ २४ ॥

द्वितीयादोपहानिः स्यात्क्वचिन्मंडूकचूर्णवित् ॥

आत्यंतिकी तृतीया तु गुरुलाघवचिंतया ॥ २५ ॥

अपिस्वरूपतःशुद्धाक्रिया तस्माद्विशुद्धिकृत् ॥

मौनींद्रव्यवहोरण मार्गवोजं दढादरात् ॥ २६ ॥

**अर्थ—**आत्मशुद्धि नामे वीजा जोगथकी काँइक लव-लेश मात्र दोपनी हानि तो थाय, पण परंपराये वणा दोप थयेला ते देडकाना चूर्णनी पेठे एक देडकानो नाश थाय, पण तेथी वीजा वणा देडका उत्पन्न थाय. त्रीजी शुद्धि आत्यंतिक छे, तेथी कर्मनी हानि थाय केस के ते गुरुताभाव अने लधुताभावनी विचारणा करवाथी प्रगटे एवी छे ॥ २५ ॥ स्वरूप थकी जे क्रिया शुद्ध छे ते ज निश्चयपणे आत्माने विशुद्धतानी करनारी छे, ते माटे शुद्धक्रिया करवी. मुर्नींद्र जे परमेश्वर तेणे वताव्यो जे

व्यवहार तेनु सेवन करवे फरीने घणा आदर महित क्रिया फरे,  
तो मार्ग जे रत्नपर्यायी तेनु पीज प्रगट याय छे ॥ २६ ॥

गुर्वाङ्गापारतव्येण द्रव्यदीक्षायहादपि ॥

बीयोङ्गासक्रमात्प्राप्ता वहव, परम पद ॥ २७ ॥

अध्यात्माभ्यामकालेपि क्रिया काप्येवमस्ति हि ॥

शुभौघसज्जानुगत ज्ञानमप्यस्ति किंचन ॥ २८ ॥

अर्थ—गुरुनी आज्ञाने आधीन रहेवाथी द्रव्यदीक्षा  
लीधी होय तो पण वीयोङ्गामनी अनुक्रमे वृद्धि करीने घणा जीप  
परमपदने पाम्या छे ॥ २७ ॥ ए रीते अध्यात्मना अभ्यास-  
कालने पिये पण क्रिया काइक लेशमात्र निव्रे वर्तेज छे, अने  
शुभकारी ओव भज्ञाने सहचारीपणे तिहा ज्ञान पण काइक  
वर्ते छे ॥ २८ ॥

अतो ज्ञानक्रियारूपमध्यात्म व्यवतिष्ठते ॥

एतत्प्रवर्द्धमान स्पान्निर्दभाचारशालिना ॥ २९ ॥

अर्थ—ए ज कारण माटे ज्ञानने क्रियारूप ते अध्यात्म-  
पणु वर्ते छे, जे ज्ञान क्रियारूप ते अध्यात्म छे ए ज ज्ञानक्रिया  
निर्दभाचारे करीने मनोहर एहो जे प्राणी तेने पिये उत्तरोत्तर  
वृद्धने पामे छे ॥ २९ ॥ ए वीजो अध्यात्मना स्वरूपनो अधिकार  
सपूर्ण थयो ॥

दभो मुक्तिलतावहिर्भो रात्, क्रियाविधो ॥

दैर्भग्यकारण दभो दभोध्यात्मसुखार्गला ॥ १ ॥

दभो ज्ञानाद्विदभोलिर्दभ कामानलेटवि ॥

व्यसनाना सुहृदभो दभश्वौरो व्रतश्रियं ॥ २ ॥

दंभेन व्रतमास्याय यो वांच्छति परमं पदं ॥

लोहनावं समारुद्धसोव्येः पारं यियासति ॥ ३ ॥

**अर्थ—**मुक्तिरूप वेलीने दहन करवामां कपट ते अग्नि समान छे; ने क्रियारूप चंद्रनो ग्रास करवाने कपट ते राहु छे; अग्ने कपट ज दुर्भाग्यतुं कारण छे; अध्यात्मसुखनी ग्रासिमां अर्गलारूप छे ॥ १ ॥ ज्ञानरूप पर्वतने तोडवाने कपट ते वज्र समान छे; कामरूपी अग्निनी बृद्धि करवाने घृत जोड्ये ते पण कपट छे, व्यसननो मित्र ते कपट छे; अने व्रतरूप लक्ष्मीनो चोर पण दंभज छे ॥ २ ॥ कपट राखी व्रतने विषे रही जे प्राणी परम पद जे मोक्ष तेनी वांच्छना करे छे, ते प्राणी लोढानी नावमां वेसी समुद्र तरवानी इच्छा राखे छे ॥ ३ ॥

किं व्रतेन तपोभिर्वा दंभश्चेन्न निराकृतः ॥

किमादर्शेन किं दीपैर्यद्यांध्यं न दृशोर्गतं ॥ ४ ॥

कैशलोचधराशस्या भिक्षाब्रह्मव्रतादिकं ॥

दंभेन दुष्यते सर्वं त्रासेनैव महामणिः ॥ ५ ॥

**अर्थ—**ते तये पण शुं ? ते व्रते पण शुं ? जो कपट दिशाने तजी नहीं तो ते सर्व निष्फल छे, ते आरसीए पण शुं ? अने दीवे पण शुं ? जो दृष्टीए अंध छे तो तेहने सर्व ठेकाणे अंधकारज रहेशे ॥ ४ ॥ कैश लोच करवो, भुमि उपर शयन करवुं, भिक्षा मागवी, शीलव्रतादिक पालवां, ए सर्व धर्मकरणी कपटे करीने दुपाइ जाय छे, जेम सुंदर मणि होय ते उपर एक डाव लागवाथी तेनी कांति मंद थाय छे तेहनी परे जाणवुं ॥ ५ ॥

सुत्यज रसलापट्ट शुत्यज देहभूपण ॥

सुत्यजाः कामभोगाश्च दुस्त्यज दभसेवन ॥ ६ ॥

स्वदोषनिन्हवो लोक पूजा स्याद् गौरव तथा ॥

इयतैव कदर्घ्यते दभेन वत वालिशाः ॥ ७ ॥

अर्थ—रसनु लोलपीपणु ते सुखे तजी शकाय, देहनी शोभा पण सुखे तजी शकाय, कामभोगादिने पण सुखे तजाय, पण कपटनो त्याग करतो धणो ज मिकट छे ॥ ६ ॥ पोताना दोपने ढासी राखे तेथी लोकमा पूजना याय, तथा मोटाइ थाय, एहि ज पूजा ग्रमुखनी लालच माटे पोताना आत्माने मूर्ख ग्राणी कदर्घ्यना उपजावे छे ! ॥ ७ ॥

असतीना यथा शीलमशीलस्यैव वृद्धये ॥

दभेनावत वृद्धर्घ्य व्रत वेषभृता तथा ॥ ८ ॥

जानानाअपि दभस्य स्फुरित वालिशाजना ॥

तत्रैव धृतविश्वासाः प्रस्वलति पदे पदे ॥ ९ ॥

अर्थ—जेम कुलटा नारीनु शील जे आचारते कुशीलनी वृद्धिने अर्थे ज होय, तेम कपटे वेप धरनार ग्रतमताने भमनी वृद्धि याय, ते अग्रतनी वृद्धिने अर्थे ज थाय ॥ ८ ॥ कपटना विपासने जाणता यका पण मूर्ख अज्ञानी ग्राणी ते ज रुपटने विपे विश्वाम करता यका पगले पगले स्पुलना पास छे ॥ ९ ॥

अहो मोहस्य माहात्म्य दीक्षा भागवतीमपि ॥

दभेन यद्विलुपति कञ्जलेनेव रूपक ॥ १० ॥

अबजे हिम तनाँ रोगो वने वहिर्दिने निशा ॥

अथे मौरत्य कलि सौख्ये धर्म दभउपमृवः ॥ ११ ॥

अर्थ—अहो इति खेदे ज्ञानो ! मोहराजानो महिमा !  
जे भगवंत् गंवंधी दीक्षा ते पण जेम काजले करीने चित्रामणनुं  
लोप थाय छे, तेहनी परे कपटे करीने लोपी नाखे छे, जेम  
कमलने विषे हिम, शरीरने विषे रोग, बनने विषे अग्नि, दिवसने  
विषे रात्री, ग्रंथने विषे मूर्खता, मुखने विषे कुँश, ते उपद्रवना  
करता छे तेम धर्मने विषे कपट ते दुःखकर्ता छे ॥ १०-११ ॥  
अतएव नयो धर्तुं सूत्योत्तरणुणानलं ॥

युक्ता सुआद्धना तस्य न तु दंभेन जीवनं ॥ १२ ॥  
परिहर्तुं न यो लिंगमप्यलं दृढरागवान् ॥  
संविजपादिकः सस्यान्तिर्दभः साधुसेवकः ॥ १३ ॥

अर्थ—एहिज हेतु माटे मूलगुण पञ्चमहाव्रत अने उत्तर-  
गुण करणसित्तरी प्रमुख धरवाने जे प्राणी समर्थ न होय, तेणे  
श्रावकनां व्रत पालवां ते युक्त ज छे, पण कपट चारित्रं जीववुं  
ते रुडं नथी ॥ १२ ॥ हवे जे प्राणी व्रतने मृकवाने समर्थ नथी  
केमके जेने व्रत उपर दृढराग लाघो होय ते सूकी शके नहीं तो  
तेणे संविजपक्ष अंगिकार करवो ऐष्टु छे. केमके निर्दभी साधुनी  
सेवना करवाथी वणो गुण थाय छे ॥ १३ ॥

निर्दभस्यावसन्नस्याप्यस्य शुद्धार्थभाधिणः ॥

निर्जरां यतनादत्ते स्वल्पापि गुणरागिणः ॥ १४ ॥

ब्रतभारासहत्वं ये विदंतोप्यात्मनः स्फूर्दं ॥

दंभावतित्वमाख्यांति तेपां नामापि पाप्मने ॥ १५ ॥

अर्थ—निष्कपटी होय, शुद्ध सिद्धांतना अर्थना भाषक  
होय, ते गुणे करीने ते उसन्नाप्रमुख साधु जो थोडी पण जतना

करे छे, तो पण ते गुणना रागीपणायी वर्तता थका तेने निर्जरा थाय छे ॥ १४ ॥ पोतायी प्रवनो भार नयी उपटतो, एवु जोण्या उत्ता पण जे पोताना आत्माने प्रगट रीते कपटे करीने यतिपणु उरावे छे, सयमीपणु स्थापे छे ते लिंगीनु नाम लेता पण पाप याय तो तर्नी सेवना तो पापकारी थाय ज तेमा शु कहेहु ? ॥ १५ ॥

**कुर्वते ये न यतना सम्यगालोचितानपि ॥**

तैरहो यतिनाम्नैव दाभिकैर्वच्यते जगत् ॥ १६ ॥  
धर्मातिख्यातिलाभेन प्रच्छदितनिजाश्रवः ॥

**तृणायमन्यते विश्व हीनोऽपि धृतकैतवः ॥ १७ ॥**

अर्थ—जे लिंगी भली रीते द्रव्य, क्षेत्र, काल, भास जोईने यत्ना नयी करता, ते लिंगी यति एवे नाम करीने कपटी यद्द लोकने उगता फर छे ॥ १६ ॥ जे हीनाचारी थको कपटनो धरनारो लिंगी होय अने ते यतिवर्मी छ एसी प्रसिद्धि यह, तेना लाभे करीने पोताना आश्रमने दास्या होय एवा जे यति ते समग्र जगत्ने तुण तुल्य जाणे छे ॥ १७ ॥

**आत्मोत्कर्पात्ततो दभात्परेपा चापवादतः ॥**

वध्नाति कठिन कर्म वाधक योगजन्मन् ॥ १८ ॥  
आत्मार्थिना ततस्त्याज्यो दभोऽनर्थनिवधन ॥

**श्रुद्धि स्याद्भुतस्येत्यागमेप्रतिपादित ॥ १९ ॥**

अर्थ—पोताना आत्मानी उडाड कर, घणु कपट धर अने पारका अर्णवाद बोले तेथी करीने कठिन कर्म वाधे छे,

तेवा पुरुषो ते योगीना जन्मने वाधक करनारा छे; ते शुद्ध  
चारित्रने पासी शके नहीं ॥ १८ ॥ माटे अनर्थनुं कारण जे  
कपट तेने धर्मार्थी प्राणीए तजबुं, केमके आत्मानी शुद्धि तो  
सरलताभावे थाय छे, एबुं आगमने विषे कहुं छे ॥ १९ ॥

जैनैर्नानुमतं किंचिन्निपिद्धं वा न सर्वथा ॥

कार्यभाव्यमदंभेनेत्येषाज्ञा पारमेश्वरी ॥ २० ॥  
अध्यात्मरत्चित्तानां दंभः स्वल्पोऽपि नोचितः ॥

छिद्रलेशोऽपि पोतस्य सिंधुं लंघयतामिव ॥ २१ ॥

**अर्थ—**तीर्थकरे एकांते आज्ञा पण नथी करी, तेम  
सर्वथा निषेध पण नथी कीयो, तोपण जे कार्य करबुं ते कपट  
रहित करबुं एही ज परमेश्वरनी आज्ञा छे ॥ २० ॥ जेम वहा-  
णमां छिद्रनो लेश होय ते पण समुद्र तरवामां योग्य नथी, तेम  
अध्यात्मने विषे जेनुं मन रंगायुं छे, तेने जरापण कपट करबुं  
ते योग्य नथी ॥ २१ ॥

दंभलेशोऽपि मल्ल्यादेः स्त्रीत्वानर्थनिवंधनं ॥

अतस्तत्परिहाराय यतितव्यं महात्मना ॥ २२ ॥

**अर्थ—**जेम महिनाथजीने कपटनो लेश पण स्त्रीवेदनो  
कारिणक थयो, माटे महान् पुरुषे कपट तजवाने घणो यत्न  
करवो ॥ २२ ॥ इति श्रीअध्यात्मसार ग्रंथने विषे दंभत्याग  
नामा त्रीजो अधिकार समाप्त थयो ॥



## भवस्वरूपचिन्ताधिकार

---

तदेव निर्दमाचरणपटुता चेतमि भव-  
स्वरूप सचिन्त्य क्षणमपि ममा गाय सुधिया ॥  
इय चिताऽध्यात्मप्रसरसरसी तीरलहरो  
सता वैराग्यायप्रियपवनपीना सुखकृते ॥ १ ॥

**अर्थ—**एटला माटे निर्दम आचरण करयाने ह चेतन !  
तु सामग्रान था ! आत्मस्वरूपसु चितन कर ! केमके क्षण  
मात्र पण भद्रबुद्धि हदयमा धरीने आत्मस्वरूपनी चिता करवी  
तेही ज आत्मदिशास्वरूप मगोमरनी लहरी छे ते शीतलता कर  
एवी छे, एही ज मज्जन लोकने वैराग्यदिशास्वरूप पन पूर्ण  
पुष्टाकारी छे, माटे ते आत्मिकमुखने अर्थे माघनी ॥ १ ॥

इतः कामौर्धार्दिनज्वलति परितोदुमद्द इत  
पतति ग्रावाणो विषयगिरिकुटाद्विघटिता ॥  
इतः कोधावर्ता विफूलितटिनी मगमकृतः  
समुद्रे समारे तदित न भय कस्य भवति ॥ २ ॥

**अर्थ—**एक तरफ कामस्वरूप बडगानलनो अग्नि वली  
ख्यो छे ते दुरे महन याय एओ छे, अने एक तरफ पच-  
प्रकारना विषयस्वरूप पर्वत, तेहथी पत्त्वा जे उन्मादस्वरूप पथरा,  
तणे रुग्नी भयरु, वली एक तरफ विकारदिशास्वरूप नदीना मग-  
यकी ग्रोधना जामर्त्तपट्टा छे, एवो जे आ ससार-समुद्र तेने विष  
कहा क्या ठेकाणे प्राणीने भय नवी ? सर्वत्र भय ज वर्ते छे ॥२॥

प्रिया ज्वाला यत्रोद्भुमति रतिसंतापतरला  
 कटाक्षान् धूमौवान् कुवलयदलश्यामलरुचीन् ॥  
 अथांगान्यंगारा कृतवहुविकाराश्च विषया  
 दहंत्यस्मिन्वहौ भववपुषि शर्म वव सुलभं ? ॥३॥

अर्थ—जे संसारने विषे रतिना संतापे करीने तरला के०  
 चपल एवी जे प्रिया के० भार्या ते कटुकज्वाला वर्ते छे, वली  
 नीलकमल दलना सरखी जेनी कांति छे एहवा नेवना त्रिकोण-  
 मांथी जे जोबुं तेनुं नाम कटाक्ष ते रूप धूम्रना समूह चाले  
 छे, तथा स्त्रीनां अंग ते अंगारा समान छे, जे अंगवडे वणा  
 प्रकारना विकार प्रगट थाय छे, ते माटे संसाररूप अग्रिमां वली  
 रह्या जे प्राणी तेने भवमां पण सुख नथी तेमज शरीरमां पण  
 कई ज सुख नथी ॥ ३ ॥

गले दत्वा पाढ़ां तनयवनितास्नेहघटितं  
 निषीड्यांते यत्र प्रकृतिकृपणः प्राणिपश्वः ॥  
 नितांतं दुःखात्ता विषमविषयैर्वातिकभट्ट-  
 भवः सूनास्थानं तदहह महासाध्वसकरं ॥ ४ ॥

अर्थ—जेना गलाने विषे पुत्र तथा स्त्रीरूप स्नेहनो फांसो  
 नखायो छे, तेना स्नेहपादमां पड्या तुच्छ स्वभावना धणी ते  
 अतिशयपणे पीडा पासे छे, आकरा विषयरूप जे घातकी  
 सुभट तेणे करीने संसार ते खाटकीनुं स्थानक छे; माटे हाहा  
 संसार ते केवल दुःखनुं मूल छे ॥ ४ ॥

अविद्यायां रात्रौ चरति वहते मूर्ध्नि विषमं  
 कपायव्यालौघं द्विपति विषयास्थीनि च गले ॥

मटादोपान दतानु प्रकटयति वक्रस्मरमुखो

न विश्वासाहींय भवति भवनक्त्वर इति ॥ ५ ॥

**अर्थ—** अज्ञानदिशारूप रागिनो चालनार जेना माथा उपर निष्पक्षपायरूप सर्वनो ममूह रहो छे, जेना गलाने पिपे प्रिष्ठरूप हाडका बाधा छे, जे महोटा दोपरूप दात प्रकट करे छे, जेनु मुस झामनी चेष्टा करे छे, एवो भेसागर्खो गक्षम ते विश्वास कर्वाने योग्य नथी ॥ ५ ॥

जना लब्ध्वा धर्मद्विषलवभिक्षा कथमपि

प्रयातोबामाक्षीस्तनविषमदुर्गस्तितिमृता ॥

विलुद्यते यस्था कुसुमशरभिल्लेन वलिना

भगाटव्या नास्यासुचितमसहायस्थ गमन ॥ ६ ॥

**अर्थ—** जे प्राणी धर्मरूप धनना लग्लेशने पाय्यो छे, तेणे भिक्षा मागदाने एकला पिचग्गु नहि, केमके भगाटवीने विपे बलपत्र भील एँगो जे भाम ते खीना स्तनरूप पिष्ठी कोटमा रहीने ते प्राणीमात्रना धर्मरूप वनने लुटी ले ने, माटे सहाय निना ते प्राणीए एकलुं पिचखु ( चालगु ) योग्य नथी ॥ ६ ॥

धन मे गेट मे मम सुतकलब्रादिकमतो

विषर्गमादामादितप्रिततदु खा अषि मुहु ।

जना यस्मिन भिष्यासुरमदभृत कुटधटना-

मयो य ममारस्तदित न विपेक्षी प्रभजति ॥ ७ ॥

**अर्थ—** वन, घर, पुत्र ने खी आदि भर्त वस्तु मारी छे,

एवा विपर्यासपणाथी विशेष प्रसिद्ध दुःखज छे, माटे जे प्राणी वारंवार सुखने मदे भया यका सुख माने छे, ते फोकट छे. ए संसार तां केवल कपट रचनाथी भयों छे, तेने विषे विवेकी प्राणीए ग्रीति कर्बी नही ॥ ७ ॥

प्रियास्नेहो यस्मिन्निगडमदृशो यामिकभटो-  
पमः स्वीयो वर्गो धनमभिनवं वंधनमिव ॥  
महामेध्यापूर्णं व्यसनविलसंमर्गविपमं  
भवः कारागेहं तदिह न रतिः कापि विदुषां ॥ ८ ॥

अर्थ—स्त्रीनो स्नेह ते वेदी ममान छे, वीजा सगासंवंधी लोक ते पोरियात ममान छे, धनसंपत्ति ते नवा वंधन सरखी छे अने महा अमंध्येकरी सहित छे, सात प्रकारना व्यसनरूप विल्ले सहित छे; द्वंकामां कहिये तो आ मंसार ते वंदिखाना जेवो छे माटे पंडित लोकने ए वस्तुमाहेनी एके वस्तु उपर रति के० मरजी थती नथी ॥ ८ ॥

महाक्रोधोगृष्णोऽनुपरतिशृगाली च चपला  
स्मरोल्को यत्र प्रकटकहुशब्दः प्रचरति ॥  
प्रदीपः शोकाग्निस्ततमपयद्गोभस्म परितः  
स्मशानं संसारस्तदतिरमणीयत्वमिह किं ? ९ ॥

अर्थ—जे पंडित लोक ते आ संसारने स्मशान सरखो कहे छे, केमके स्मशानमां रहेनारी चीजो सर्वं संसारमां छे, ते कही बतावे छे. जेम स्मशानमां गिध पक्षी छे तेम संसारमां महाक्रोध ते गीव पक्षी छे, अरतिरूप घणी चपल शियाळणी छे; घुवड पक्षीरूप काम छे, ते ग्रगटपणे कडवा शब्दथी रुदन करे छे,

देदीप्यमान शोकरूपी अयि प्रज्वले छे, निरतर अपयशस्य रास  
छे, माटे ससार ते स्मशान छे, एमा रमणीक चीज कोई नथी॥९॥

धनाशा यच्छ्रायाप्यति विषममृत्ति प्रणयिनी

विलामो नारीणा गुरुचिकृतये यत्सुमरसः ॥

फलास्त्रादो यस्य प्रसरनरकव्याविनिवह-

स्तदास्था नो युक्तता भव विषतरावत्र सुधिया॥१०॥

अर्थ—धननी जे डच्छा ते अतिशय मिष्यस्य निषम  
मृच्छने पिस्तारनारी छे, स्त्रीयोनो मिलास ते गहापिकारकारी  
कुसुमनो रस छे, जेना फलनो स्वाद निस्तार पामतो नर्कनी  
पीडाना समूह तुल्य याय, एवु समारस्य निष्यवृक्ष छे, एनी  
हठल निश्राम कर्तो युक्त नथी ॥ १० ॥

कचित् प्राज्य राज्य कचन धनलेशोप्यसुलभ-

कनिजातिस्फाति कचिदपि च नीचत्वकुयश ॥

कचित्प्राप्यश्रीरतिशयगती कापि न घपु

स्यस्य तैपम्य रतिकरमिद कस्य तु भवे ॥ ११ ॥

अर्थ—काङ्ने ता मित्तारनालु राज्य छे, काङ्ने धननो लेश  
पण दाहलो ने, कोइनी उचम जाति छे, कोइनी नीच जाती छे,  
कोइने अपयश छे, कोइने लापण्यलीलानी लक्ष्मी पणी छे,  
कोइनु शरीर पण रुदु नथी, एवु ममाग्नु स्यस्य निषम छे, ते  
कोने रतिकारी याय ? ॥ ११ ॥

इर्दोहाम काम गमति परिपथि गुणमर्ती-

मविश्राम पार्वतियतकृपरिणामस्य कलहः ॥

विलात्यंतः क्रामन्मदकणभृतां पामरमतं  
वदामः किं नाम प्रकटभवधामस्थितिसुखं ॥ १२ ॥

अर्थ—इहां उदाम् काम दिशा छे; ते ज परिपंथी के० शत्रु छे, ते गुणरूप जे मही के० पृथ्वी तेने खणे छे अने पासे रहो जे कुपरिणाम ते विश्राम लीथा विना निरंतर क्लेश करे छे, ए क्लेशबडे खरडाया एवा जे प्राणी ते अष्ट मदरूप सर्प तेणे करी युक्त छे. एवुं पामर लोकने मानवा योग्य आ संसाररूप जे घर तेनुं शुं सुख कहीए ? ॥ १२ ॥

तृष्णात्तर्त्त्वाः स्त्रियन्ते विषयविवशा यत्र भविनः  
करालक्रोधाकार्च्छमस्तरसि शोषं गतवाति ॥  
स्मरस्वेदक्लेदग्लपितगुणमेदस्पनुदिनं  
भवग्रीष्मे भीष्मे किमिह शरणं तापहरणं ॥ १३ ॥

अर्थ—संसारने विषे प्राणी मात्र पुद्लनी तृष्णारूप तरसे करीने पीडाणा छे, अने विषयनी आशाए करी परवश थया छे, एहवा प्राणीयो विहामणा क्रोधे करी पीडाय छे; केमके तेमने माटे समतारूप सरोवर तो सुकाइ गयुं छे, अने काम-दिशारूप जे परस्वेद तेनी जे ग्लानता तेणे करी निरंतर गुण-मेदा खरडाय छे. ज्यां एहवो विहामणो आ संसाररूप उष्णकाल छे त्यां तेना तापने हरे एवो कोइ नथी ॥ १३ ॥

पिता माता भ्राताष्यभिलपितसिद्धावभिमतो  
गुणग्रामज्ञाता न खलु धनदाता च धनवान् ॥  
जनाः स्वार्थस्फातावनिशमवदा नाशयभृतः  
प्रमाता कः स्वाताविह भवसुखस्याशु रसिकः ॥ १४ ॥

अर्थ—आ ससारने निपे पिता, माता ने आता कें०  
भाइ आदि ते मर्द चित्तित अर्थनी अभिलापा पूरे त्या लगी  
अभिमतके० ममत करी माने, तवा गुणना मम्रहनो जाण  
एहनो धनपत्र प्राणी होय ते पण कृपणपणे करीने गुणी जनने वन  
देह शक नहीं, एम सर्वे प्राणी पोताना स्वार्थ माधन मरणाने  
सापधानपणे नर्ते छे, पण परमार्थी वेगला नसे छे, एवा भन  
सुखना रसिया जे जीव तेहना स्वरूपने रुहेगाने कोण समर्थ  
थड शके ? ॥ १४ ॥

पण, पाणि गृहणात्यहमहति स्वार्थ इह यान्

त्यजत्युच्चलाकस्तुणवदधृणस्तानपरथा ॥

विष स्ताते वर्त्तेऽमृतमिति च विवासद्वितीयृद्—  
भवादित्युद्गेगां यदि न गदितैः कितदधिकैः ॥ १५ ॥

अर्थ—एम स्वार्थने नश यईने प्राणी चढालनो हाय  
पकडी चाले छे ! अहो इति बाश्वर्य ! जे स्वार्थपणु ते एहबु छे,  
बली जे उत्तम कुलशी उपजेला तेहने तजे छे अन तरणा जेमो  
निर्लज्ज थईन हेयामा क्षेग भयु होय पण मोळ अमृत जेबु मीढु  
बोले ने एना अनेक प्रपञ्च स्वार्थ माट प्राणी करे छे ने विश्वा-  
सवाती याय छे, एवा प्राणी आ ससारमा नसे छे, ते जोईने  
पण आ ससारथी जेतु मन उड्डेग पामतु नयी तेने घण शु  
कहीए ? ॥ १५ ॥

दृशा प्रातैः काते कलयति मुद कोपरुलितै—

रमीभिः खिन्नः स्पाद्यनधननिधीनामपि गुणी ॥

**उपायैः स्तुत्यावैरपनयनि रोपं कथमपी-**

**त्यहो मोहस्यैवं भवभवनवैपम्यघटना ॥ १६ ॥**

**अर्थ—**स्त्रीनी दृष्टिना प्रांत के० खूणा ते मनोहर छे,  
माटे तेना जोवाथी हर्ष उपजे छे, अने स्त्रीनी कोपयुक्त दृष्टि  
खराव छे माटे ते देखीने खेद उपजे छे, तथा घणा धनवाला  
पुरुषने गुणीजनो स्तुति आदि करी रीजवे छे; ने कष्ट सहीने  
तेमनो रोप उतारे छे, ए सघलुं मोहथकी थाय छे; माटे जुओ  
मोहरूपी राजानुं केवुं विषमतापणुं छे, के जे तजवा योग्य छे तेनो  
आदर करावे छे अने जेनो आदर करवो जोड्ण तेनो त्याग  
करावे छे ॥ १६ ॥

**प्रिया प्रेक्षा पुत्रो विनय हह पुत्री गुणरति—**

**विवेकाख्यस्तातः परिणनिरनिंद्या च जननी ॥**

**विशुद्धस्य स्वस्य स्फुरति हि कुदुंबं स्फुटमिदं**

**भवे तन्मो दृष्टं तदपि वत संयोगसुखधीः ॥ १७ ॥**

**अर्थ—**जीवने तत्त्वविचारणा करवी ते स्त्री छे, विनय  
करवो ते पुत्र छे, गुणने विषे जे रति करवी ते पुत्री छे, स्याद्वा-  
दपणे स्वपर—विवेचन करवुं ते पिता छे, अनिंद्या जे पारकी  
निंदा तजवी ते आत्मानी माता छे, एवुं जे अंतरंग कुदुंब छे  
ते तो जे वारे आत्मा शुद्ध थाय ते वारे प्रगट रीते पेदा थाय;  
पण तेने जे पुरुष संयोगी सुखमां मग्य थह रह्यो छे ते तो क्यारे  
पण देखतो नथी ॥ १७ ॥

**पुरा प्रेमारंभे तदनुतद विच्छेदघटने,**

**तदुच्छेदै दुःखान्यय कठिनचेता विषहते ॥**

विपाकादापाकाहितकलशवत्तापथहुलात्,  
जनो यस्मिन्नस्मिन्कचिदपि सुखं हृतं न भवेऽ॥१८॥

**अर्थ—**प्रथम प्रेम करता हु से छे, ते पड़ी तेने निश्चल-  
पणे राखगाने पण वणु दुःख छे, गली ते प्रेमपात्रनो पिच्छेद  
थाय, मरण थाय अधरा प्रेम तुटे त्यारे मौथी बवारे दुःख उपजे,  
ने ते सहन करताने छाती वणी कठण रासवी फडे नीभाडाना  
पाकने पिये आरोपित कर्यो एओ जे घट तेना सरसी तापनी  
महुलता छे एवो जे आ ससारस्य नीभाडो तिहा सुय तो काढ  
ज नथी, समय दुःखसय ज ले ॥ १८ ॥

मृगाक्षीदृग्याणैरिति हि निहत धर्मकटकं,  
विलिप्ताहृदेशा हृष्टं च वहुलैरागरूधिरैः ॥  
अमत्यूर्ध्वं कूरा व्यसनशतगृधाश्च तदिय  
महामोहक्षोणीरमणरणभूमिः खलु भव ॥ १९ ॥

**अर्थ—**आ समारने पिये धर्मराजाना रुटकने तो मृगन-  
यनीना दृष्टिरुपी गाणे हणी नाख्यु छे, रागदिशारूप रुधीखडे  
लेपाह गया छे हृदयप्रदेश जेना ते उपर अनेक प्रकारना मन-  
तन समधी रुद्रम्पी गीधपक्षीयो भमी रहा छे, एओ महामोहरूप  
क्षोणीरमण जे राना तेनी रणभूमि समान आ समार छे ॥१९॥

हसति क्रीडति थणमय च खियति वहुधा,  
रुद्दति क्रदति थणमपि चिचाद चिदधते ॥  
पलायते मोद दधति परिवृत्यति चिचागा  
भवे मोहोन्माद कमपि तनुभाज परिगताः ॥२०॥

अर्थ—क्षणमां हसे, क्षणमां क्रीडा करे ( रसे ), क्षणमां खेद करे, क्षणमां वहु प्रकारे रहे, क्षणमां विलाप करे, क्षणमां अनेक प्रकारनो विवाद करे, क्षणमां नासी जाय, क्षणमां हर्षित थइ नाचवा मांडे इत्यादि उन्माद संगारने विषे देहशारी प्राणीयो करे छे, ते सर्व मोहराजाने आधीनथका करे छे ॥ २० ॥

अपूर्णा विश्रेव प्रकटखलमैत्रीव कुनय-

प्रणालीवास्याने विधववनितायौवनमिव ॥

अनिष्टाते पत्यौ मृगदश इव स्नेहलहरी

भवक्रीडा त्रीडा दहति हृदयं तात्त्विकदशाम् ॥२१॥

अर्थ—असंपूर्ण विद्या जेम पंडितने, तेमज खल माण-  
सनी मित्राई, वली गजमभामां अन्यायनी प्रणालिका एटले  
अन्यायनो मार्ग, तथा विधवा स्त्रीनुं यौवन, वली मूर्ख भरतारनी  
आगल स्त्रीना स्नेहनी लहरी ते जेम खेदने पात्र थाय छे तेमज  
संसारनी क्रीडा जे लजामणी छे तेथी तत्त्वदर्शी प्राणी दुःख  
पासे छे ॥ २१ ॥

प्रभाते संजाते भवति वितथा स्वापकलना,

द्विचंद्रज्ञानं वा तिमिरविरहे निर्मलदशां ॥

तथा मिथ्यास्त्वं स्फुरनि विदिते तत्त्वविषये,

भवोऽयं साधूनासु परतविकल्पस्थिरधियां ॥ २२॥

अर्थः—जेम प्रभात ममय स्वमनी रचना निष्कल थइ  
जाय छे, जेम कोइनी आंखमां जाकल आवी होय तेहने आका-  
शमां वे चंद्रमा भासे, पण निर्मलदृष्टि थतां वे चंद्रमानुं आंतिज्ञान  
मटी जाय छे तेम संसारथी न्यारा रहा एहवा जे स्थिर बुद्धि-

गाला तत्त्वनाने गमजेला साधु तेणे आ समार ते मिव्यारूप  
भासे हे ॥ २२ ॥

प्रियावाणीवीणाशयनतनुसवाधनसुर्वं-

र्मवोय पीयूषैर्वाटित इति पूर्व मतिरभ्रत् ॥

अकस्मादस्माक परिकलिततत्त्वोपनिषदा-

मिदानीमेतस्मिन्न रतिरपि तु स्पात्मनि रातिः ॥२३॥

अर्थ—स्त्रीनी गाणीयें करीने तथा गीणानादे करीने,  
शय्याये करीने, रली शगीरने चोलयु-चापयु तेणे रुग्नीने जे सुख  
उपजे हे, ते अमृते करीने घुटेलु होय तेनु हे एवु पूर्णे वाल  
काले वर्तायु हतु, पण हो यहमात्कारे अमने तन्वदिशाना रह-  
स्यनी परिकलना यड-जाणपण यथु, तेथी समारने यिषे तत्त्वरुचि  
वर्तती नथी, पण आत्मतत्त्वमा रुचि यड हे ॥ २३ ॥

दधाना काठिन्य निरवधिकमाविश्वकभव-

प्रपचा पाचालीकुचकुलशवन्नातिरतिदा ॥

गलत्यज्ञानाभ्ये प्रसूमरम्भापात्मनि विधौ

चिदानन्दस्पट सहज इति तेभ्योऽस्तु पिरतिः ॥२४॥

अर्थ—समारना समस्त प्रपच ते अतिशय कठि-  
णताने धरतायका हे, माटे मुजने झाए अने पापाणनी पुतलीना  
स्तननी पेरे रतिकारी नथी लागता, रेमके अनाननु वादल  
गली गयु हे अने आन्मिक ज्ञानस्य चटोटय ययो तेथी सहज  
चिदानन्द गमनी शीतलता प्रगटी तेणे करी यिष्य तापनी अरति  
मटी गइ ॥ २४ ॥

भवे या राज्यश्रीर्गजतुरगगोसंग्रहकृता  
 न सा ज्ञानध्यानप्रशमजनिता किं स्वभनसि ॥

बहिर्याः प्रेयस्यः किमु मनसि ता नात्मरतय  
 स्ततः स्वाधीनं कस्त्यजति सुखमिच्छत्यथ परं ॥२५॥

**अर्थः**—संसारने विषे हाथी, घोडा, बलद् प्रमुख जे राजलक्ष्मी छे, ते शुं अंतरंग आत्माने नथी ? अर्थात् छे. ज्ञान हाथी, ध्यान घोडा, समता ते बलद, ए लक्ष्मी आत्मानी छे; अने तुं जो मनवडे वाह्य साथे प्रेम करे छे तो पोताना आत्मा साथे रति केम करतो नथी ? आत्मिक सुख तजीने पौद्गलिक सुखने कोण इच्छे ? एवो मूर्ख कोण होय ? ॥ २५ ॥

पराधीनं शर्म्म क्षयि विषयकांक्षौघमलिनं  
 भवे भीति स्थानं तदपिकुमतिस्तत्र रमते ॥  
 बुधास्तु स्वाधीने उक्षयिणि करणौत्सुक्यरहिते  
 निलीनास्तिष्ठाति प्रगलितभयाध्यात्मिकसुखे ॥२६॥

**अर्थः**—पौद्गलिक सुख केवुं छे ? एक तो पराधीन छे; स्वभावे क्षय थवा लायक छे; विषयनी वांछनावडे मलिन छे; एम संसारने विषे भयनां स्थान घणां छे, ते छतां कुमतिना धणी संसारमां रमे छे अने पंडित लोक जे छे ते स्वाधीन सुखमां रमे छे. ते सुख केवुं छे ? के जे कोइ काले क्षय पामे नहीं; ईंद्रियोनी उत्सुकताये रहित छे. जे प्राणी आत्मज्ञानमां लय पाम्या थका छे ते प्राणी सकल भयदिशा रहित थका परमानंदने विषे मयपणे रहे छे ॥ २६ ॥

तदेतद्वायते जगदभयदान खलु भव-

स्वरूपानुध्यान शमसुखनिदान कृतधियः ॥

स्थिरीभूते ह्यस्मिन्चिभुकिरणकर्परविमला

यशःश्रीः प्राँढा स्याज्जिनसमयतत्त्वस्थितिविदाम् ॥२७॥

अर्थः—आ जगत् प्रत्ये पडित लोक एम कहे छे, जे  
पोताना आत्मभागना स्वरूपनु चितन ते ज समताना सुखनु  
कारण छे, अने जगतने अभयदाननु देवागालु छे जैषे कारकता  
भाव उद्दि करी तेने आत्मस्वरूपज्ञान स्थिर थय थके चद्र किरण  
कर्षूर सरीरी उञ्जल यशलक्ष्मी ते प्रोढपणे प्रिस्तार पामे,  
एवा तत्त्वज्ञानी त जिनश्वरग्रणीत सिद्धातना तत्त्वनी मर्यादाये  
रन्ते ॥ २७ ॥ इति भगव्यरूप चिताधिकार, चतुर्थ, समाप्तः ॥

इति श्री नवप्रिजयगणितिव्य श्री यशोप्रिजयेन प्रिचिते अध्यात्ममार  
प्रकरणे प्रथम प्रधान ॥ १ ॥



## वैराग्य संभवाधिकार

भवस्वस्पविज्ञानाद् द्रुपद्मर्गुणवद्धिजात ॥

तदिच्छांच्छेदस्य पंडाग् वैराग्यमुपजायते ॥ ? ॥  
सिङ्हचा विषयमांख्यस्य वैराग्यं घण्ठयन्ति ये ॥

मतं न युज्यन्ते नेपां याचदर्थप्रमिल्लितः ॥ ३ ॥

**अर्थः**—भवतुं स्वस्प जाप्या थकी, संसार उपर द्वेष थया थकी, संसारने निर्गुणपणे देखवा थकी शीघ्रपणे संसारना विच्छेदनो वैराग्य आन्माने विषे प्रगट थाय ॥ १ ॥ विषयमुखनी मिद्धि-निष्पत्ति-प्राप्ति नेवडे जे वैराग्यतुं वर्णन करे छे, तेसुं मत वटमान नथी, जिहां सुधी अर्थ केंद्र द्रव्य छे, तिहां सुधी विषय हे, एवी प्रसिद्धि छे, ‘‘ अर्थसत्त्वे विषयसत्त्वे ” । इति ॥ २ ॥

अप्राप्त्यव्यमादुच्चरवास्तेष्वप्यन्तंगः ॥

कामभोगपु मृहानां समीहा नोपशाम्यति ॥ ३ ॥

विषयैः श्रीथने कामो नेधेनरिच पावकः ॥

प्रत्युत प्रोल्लभक्तिर्भूय एवोपवर्धने ॥ ४ ॥

**अर्थः**—जे एम जाणे हे, जे हुं कोइ काले संसारने विषे आव्योज नथी, जो अनंती बार विषय सेव्या हे, ते छतां आ विषय नवा पाम्यो, एवो अम जेने उपजे हे, एवा जे कामभोगने विषे मुंझाइ रक्षा हे, तेनी अमिलापानो नाश थतोज नथी ॥ ३ ॥ जेम इंधनथी अग्नि बटे नहीं, पण उलटी वृद्धिज पामे, तेम विषय सेवतां कामभोग पण कदापि क्षय पामे नहीं, उलटी शक्ति उछास पामती जाय; वारंवार वधतीज जाए ॥ ४ ॥

सौम्यत्वमिच सिंहानां पञ्चगानामिच ध्रमा ॥

विषयेषु प्रवृत्तानां वैराग्यं खलु दुर्बिचं ॥ ५ ॥

अकृत्वा विषयत्याग थो वैराग्य दिधीर्घति ।

अपश्यमपरित्यज्य स गेगोचउद्भिच्छति ॥ ५ ॥

अर्थ—जेम सिंहने सोमपणु नथी, मर्फने जेम समता नयी तेम प्रियमा जे प्रगत्या तेमने वैराग्य ढोहिलो छे, पण सुगम नथी ॥ ५ ॥ जे प्रियनो न्याग कर्या पिना चित्तमा वैराग्यनी धारणा कर छे, ते बुपन्ध्य तज्या पिना गेग टालगानी इच्छा करे एबु छे ॥ ६ ॥

न चित्ते विषयासत्ते वैराग्य स्यातुमप्यल ॥

अयोधन हयोत्तसे निपतन्यन्दुरभस ॥ ७ ॥  
यदीदुः स्यात् कुहूरात्रौ फल यववकेशिनि ॥

तदा विषयममर्गिचित्ते वैराग्यमक्रम ॥ ८ ॥

अर्थ—जेम लोढानो घण तप्पा होय ते पाणीना रिंदुने शोषी जाय छे तेम जेनु चित्त प्रियामक्क छे तेना हृदयमा वैराग्य रही शुक्तो नयी ॥ ७ ॥ जा अमास्ना रात्रीए चढ उगे अने जो वाझीआ वृक्षने फल आने तो प्रियी जीना हृदयमा वैराग्य सक्रमे ॥ ८ ॥

भवदेतुपु तद्वेषाद्विषयेष्वप्रवत्तित ॥

वैराग्य स्यान्निरायाध भवनैर्गुण्यदर्शनात् ॥ ९ ॥  
चतुर्येऽपि गुणस्याने नन्देव तत् प्रमज्यते ॥

युक्त गलु प्रमातृणा भवनैर्गुण्यदर्शनम् ॥ १० ॥

अर्थ—भगवती पृद्विना हतु उपर जेने द्वेष हाय, प्रियने विषे लेनी प्रशृति न होय ते प्राणीने ममारनी निर्गुणताना चितनयकी निरायाधपण वैराग्य उपजे ॥ ९ ॥ चाँथा गुणठाणाने

विषे पण सम्यक्तत्वंत ज्ञातापुरुष निश्चयपणे संसारनी  
निर्गुणताज जुए छे, तो तेने वैराग्यनी प्राप्ति थाय छे ते  
युक्त ज छे ॥ १० ॥

सत्यं चारित्रमोहस्य महिमा कोप्यथं खलु ॥

यदन्यहेतुयोगेऽपि फलायोगोऽन्न दृश्यते ॥ ११ ॥  
दशाविशेषे तत्रापि न चेदं नास्ति सर्वथा ॥  
स्वच्यापारहृतासंगं तथा च स्तवभाषितम् ॥ १२ ॥

अर्थः—चारित्रमोहनीनो महिमा साचो छे. केसके  
निश्चयथकी अन्यजोग हेतुये पण फलनुं अयोग्यपणुं ते धकी  
जोवासां आवे छे ॥ ११ ॥ सम्यक्तत्वनी दशासां विशेषे  
करीने ते चोथे गुणठाणे पण सर्वथा वैराग्य न ज होय, एम न  
जाणुनुं, तिहाँ पण पोताना आत्मिक स्वभावनी रमणतायें कुसंग-  
पणुं हणाय छे, ए अर्थ वीतरागस्तोत्रने विषे श्रीहेमाचार्यजीए  
करेलो छे, माटे चोथे गुणठाणे वैराग्यपणुं होय ॥ १२ ॥

यदा मरुन्नरेद्वश्रीस्त्वया नाथोपभुज्यते ॥

यत्र तत्र रतिर्नाम विरक्ततत्वं तदापि ते ॥ १३ ॥  
भवेच्छा यस्य विच्छिन्ना प्रवृत्तिः कर्मभावजा ॥  
रतिस्तस्य विरक्तस्य सर्वत्र शुभवेद्यतः ॥ १४ ॥

अर्थ—जे काले देवताना राजानी लक्ष्मी हे नाथ !  
तमे भोगवी तिहाँ पण जिहाँ जिहाँ रतिमोहनी उपजे ते तमे  
करी नथी, त्यां पण तमे विरक्तपणुं ज कर्यु छे; पण रंगाया नथी  
॥ १३ ॥ माटे भवनी इच्छा जेहने विछेद थाय छे, तेने जे

अवश्य वेदवा योग्य भावकर्मनी प्रवृत्ति प्रमुख जे गिरक्त आत्माने  
रतिपणु छे ते सर्वत्र शुभ वेदनी ज वते छे ॥ १४ ॥

अतश्चाक्षेपकज्ञानात् काताया भोगसन्निधौ ॥

न शुद्धिप्रक्षयो यस्माद्वारिभद्रमिट वचः ॥ १५ ॥

मायाभस्तत्त्वतः पश्यन्नुद्विग्नस्ततोद्वृतः ॥

तन्मध्ये न प्रयात्येव यथा व्याघातवर्जित ॥ १६ ॥

**अर्थ—** एही ज कारण माटे स्वरूप ज्ञानना अभ्यासे  
करी अथवा अन्य पस्तुये करी अन्य वस्तुनु पूरबु ते क्षेपक वहे-  
गाय, ते क्षेपकपणु जेने नथी तेनु नाम अक्षेपक कहिये, एहां  
अक्षेपक ज्ञानगत निश्चय भावनु ग्रहण करनारो ते पुरुष जो काता  
जे स्त्री तेना भोगने सन्मुख प्रवर्त्ततो होय, तो पण तेहनी  
शुद्धिनो प्रकर्ष रीते क्षय न थाय, एंटले ज्ञानशुद्धि ते कर्मक्षयनु  
कारण छे एबु हरिभद्रशुरिनु वचन छे ॥ १५ ॥ परमार्थ दिशा-  
थकी सर्व ससारने ड्रजाल समान देखतो थको अनुद्वेग दशामा  
वत्तें, जेहने कामभोगमा उद्वेग नथी ने राग पण नथी ते तेणे  
करी तेमा तन्मयपणु न करे, ते निर्विमपणे यथायोग्ये मोक्षे ज  
जाय छे ॥ १६ ॥

भोगान् स्वरूपत पश्यस्तथा मायादिकोपमान् ॥

भुजानो पि त्यसग्ं मन्त्रप्रयात्येव पर पद ॥ १७ ॥

भोगतत्त्वस्य तु पुनर्न भवोदधिलघनम् ॥

मायोदकद्वावेशस्तेन यातीह कृ पया ॥ १८ ॥

**अर्थ—** जे प्राणी शन्दादिक भोगने परमार्थ दिशायें  
जोतो थको ड्रजाल समान जाणे ते निषयादिकने भोगवतो पण

तेमां लेपातो नथी, ते निश्चय परमपद जे मोक्ष तेने पाये हे ॥ १७ ॥ अने जे भवामिनंदी प्राणी ते संसारना भोगने ज तच्च करी माने हे, ते प्राणी संसार समुद्रने उलंघी न शके, केमके मायारूप उद्कना आवेगे ते प्राणी कुपंथने विषे जाय हे ॥ १८ ॥

स तत्रैव भवोद्विग्ने यथा तिष्ठत्यसंशयं ॥

मोक्षमार्गेऽपि हि तथा भोगजंवालमोहितः ॥ १९ ॥  
धर्मशक्तिं न हंत्यत्र भोगयोग वलीयसीं ॥

हंति दीपापहो वायुर्ज्वलतं न दावानलं ॥ २० ॥

अर्थ—ते प्राणी भोगनो जंवाल के० कलिमल तेणे मोहित थयो थको मोक्षमार्गना साधनने विषे पण भवोद्विग्नतापणे निश्चय थकी रहे हे ॥ १९ ॥ धर्मनी सामर्थताने कामभोगनो संयोग हणी शकतो नथी, केमके धर्मनी सामर्थता वणी वलवत्तर हे. दीपक समान अल्प धर्मने तो कदापि वायु समान विषय ओलवी नाखे, पण जाज्वल्यमान दावानल समान जे महाधर्मनी वासना तेने वायु नडी शकतो नथी ॥ २० ॥

वध्यते वाहमासक्तौ यथा श्लेष्मणि मक्षिका ॥

शुष्कगांलबद्धिष्ठो विषयेभ्यो न वध्यते ॥ २१ ॥  
वहूदोपनिरोधार्थमनिवृत्तिरपि कवित ॥

निवृत्तिरिव नो दुष्टा योगानुभवशालिनां ॥ २२ ॥

अर्थ—जेम श्लेष्मने विषे माखी लेपाइ फसाइ जाइ हे, तेम विषयते विषे गाढपणे आसक्त थतां प्राणी वंथाइ जाय हे. सुकी मृत्तिकाना गोलामां जेम माखी फसाती नथी तेम आसक्ति

रहित उदासीन एवा जे जीव ते प्रिप्यने पिषे वधाता नथी ॥ २१ ॥ जेम रोगने काढ़ाने औपधोनी जरूर छे तेम घणा दृप्णनो रोध करधाने अर्थे क्वचित् अनिवृत्तिपणु पण दुष्ट नथी. जेम कामभोगनी त्यागशुद्धि दुष्ट नथी, तेम अनुभवजीवे करीने सहित जे वर्ते तेने क्वचित् मात्र अनिवृत्ति छे ते पण निवृत्तिनी पर्यं ज दुष्ट नथी ॥ २२ ॥

यस्मिन्निषेच्यमाणेऽपि यस्याशुद्धिं कदाचिन् ।  
तेनैव तस्य शुद्धिं स्यात् कदाचिदिति हि श्रुतिः ॥ २३ ॥  
विषयाणा ततो वधजनने नियमोऽस्ति न ॥  
अज्ञानिना ततो नधो ज्ञानिना तु न कर्हिचित् ॥ २४ ॥

अर्थ—जेम शत्रुनी सेमना करनारो पुरुष दुखीयो यहाँने कालातरे सुखी थाय तेम रुदापि प्रिप्यने सेमनारो कर्म करीने तेहि ज प्रियादिकथी शुद्ध थाय, एवी पण कोडकनी श्रुती छे ॥ २३ ॥ जे प्रिप्य ते एकाते कर्मनधनु ज कारण छे, एवो एकात नियम नथी, पण जे अनानी ते तेने ज कर्मनधनु कारण छे, पण जे तत्त्वनानी समतारसमा मग्न छे, तेने नथी ॥ २४ ॥

मेवतेऽसेवमानोऽपि सेवमानो न सेवते ॥

कोऽपि पारजनो न स्याच्छयन् परजनानपि ॥ २५ ॥  
अत एव महापुण्यविषाकोपस्तितश्रियाम् ॥

गर्भादारभ्य तैराग्य नोक्तमाना विद्वन्यते ॥ २६ ॥

अर्थ—केटलाक प्राणी प्रिप्यने द्रव्यथी अणसेवता यका पण भावधी प्रिप्यने सेवे छे, केटलाक प्राणी द्रव्यथी सेवे ते पण भावधी नथी सेवता, पारकी सेमना करतो यक्तो पण तेहानो

परमार्थ पर प्रते न देतो थको एहबो जे ज्ञानी ते कर्मसमयी ज नथी थतो ॥ २५ ॥ ए माटे उत्तम पुरुषे महापुण्य विपाकना योगे प्राप्त करी एहबी जे तीर्थकरादिकनी लक्ष्मी तेने गर्भथकी मांडीने पण वैराग्यधारा त्रुटती नथी ॥ २६ ॥

**विषयेभ्यः प्रशांतानामथ्रांतं विमुखैकृतेः ॥**

**करणैश्चारुवैराग्यमेष राजपयः किल ॥ २७ ॥**

**स्वयं निवत्त्मानैस्तैरनुदोर्णेरथंत्रितैः ॥**

**तृत्पैज्ञानचतां तस्माद्सावेकपदी मता ॥ २८ ॥**

अर्थ—जेहने विषयथकी प्रशांत चित्त थयुं छे अने विश्राम रहित इंद्रियोना विषयने विमुख करवुं तेणे करीने मनोहर वैराग्य मार्ग सेवनानुं वने, अने विषयनो पण त्याग थाय, ते तो निश्चयथकी वैराग्य दिशानो राजमार्ग छे ॥ २७ ॥ अने जे इच्छा विना सहेजे कोइ कारणयोगे पोते इंद्रियविकारथकी निवत्ते छे, पण प्रशांतने अण उदीर्वे करीने अनियंत्रणायें करी एटले इंद्रियनो निरोध हजी कयों नथी, पण सहेज चारित्र प्रमुखना योगे इंद्रियनिरोध थयो छे एहबा तुसिवंत ज्ञानी पुरुष तेनो वैराग्य ते पूर्वोक्त राजमार्गना वैराग्यनी एकपदी छे, एटले एकदंडी छे. जेम गाडा चालवाना मार्गने तो महोटो मार्ग कहियें, पण माणसोने पगे चालवानो रस्तो न्हानो थाय छे, तेबो ते वैराग्य पण न्हानो कहिये ॥ २८ ॥

**बलेन प्रेर्यमाणानि करणानि वने भवत् ॥**

**न जातु वशतां यांति प्रत्युतानर्थवृद्धये ॥ २९ ।**

**पद्येयंति लज्जया नोर्चैर्द्वयानं च प्रयुंजते ॥**

**आत्मानं धार्मिकाभासाः क्षिपंति नरकावदे ॥३०॥**

अर्थ—प्रलात्कार प्रेया थका पण वनना हायीनी ऐठे  
इद्रियो कदापि यश थती नवी, उलटी अर्न्यनी वृद्धि करनारी  
थाय छे ॥ २५ ॥ लाजे करी नीचु जुए छे अने मनमा दुष्ट  
ध्यान धरे छे, एवा धर्मधुतारा प्राणी ते पोताना आत्माने  
नरकना कृपमा नासे छे ॥ ३० ॥

वचन करणाना तद्विरक्त, कर्तुमर्दति ॥

सद्ग्रावविनियोगेन मदा स्पान्यविभागवित् ॥ ३१ ॥  
प्रवृत्तेवर्वा निवृत्तेवर्वा न मकल्पो न च अमः ॥

विकारोहोयतेऽक्षाणामिति वैराग्यमद्भुत ॥ ३२ ॥

अर्थ—शुभ भाग्ने अर्पणं कर्गने सदा स्वपर निवेदन  
ज्ञानयुक्त भाग्नावाला ज्ञाता गिरक्त प्राणी डिद्रियोने ठगाने  
समर्थ थाय छे, पण वीजा नवी यता ॥ ३१ ॥ प्रवृत्तिने विषे  
अथगा निवृत्तिने विषे जेने सकल्प नवी अने धाक पण नवी,  
एवा समभावे वर्तनारना सर्व पिकार दूर थाय छे, अने एनु नाम  
अद्भुत वैराग्य पण छे ॥ ३२ ॥

दारुणवस्थपाचालीनुत्यतुल्या प्रवृत्तय ॥

योगिनो नैव वाधायै ज्ञानिनो लोकवर्तिनः ॥ ३३ ॥  
इय च योगमायेति प्रकट गीयते परैः ॥

लोकानुग्रहदेतुत्वान्नास्यामपि च दूषण ॥ ३४ ॥

अर्थ—जेम काएनी पुतलीने दोरीना सचारे करी  
नाचनारीना माफक नाचती जोड्हे ठीये, पण तेने कर्मवंघ नवी,  
तेम लोकिक व्यग्रारने निषे गर्ता ज्ञानी जे योगीद्वार पुल्य  
तेहने ससारनी प्रवृत्ति पीडा करती नवी ॥ ३३ ॥ ए वैराग्य

दशाने पर दर्शनी जोग मायाने नामे प्रगटपणे बोलावे छे, ए पण  
लोकने उपकारकर्ता छे. एने विषे दृष्टि नथी ॥ ३४ ॥

सिद्धांते श्रूयते चेयमपवादपदेष्वपि ॥

मृगपर्षत्परित्रासनिरासफलसंगता ॥ ३५ ॥

औदासीन्यफले ज्ञाने परिपाकमुपेयुषि ॥

चतुर्येऽपि गुणस्थाने तद्वैराग्यं व्यवस्थितं ॥ ३६ ॥

अर्थः—सिद्धांतमां पण सांभर्लीये छीये के, अपवादने विषे  
मृगला सरखी पर्षदाने पण निरास करवी एज वृपभ तुल्य  
गीतार्थनी शुद्ध ज्ञानदिशा जाणवी ॥ ३५ ॥ परिपक्व धड्यकी  
एवी जे ज्ञानदिशा अने जेसुं फल उदासीनता छे, ते थकी  
चोथे गुणस्थानके पण वैराग्यदिशा ग्राम थाय छे ॥ ३६ ॥

इति वैराग्यसंभवाधिकार पञ्चम समाप्त ॥



## वैराग्यभेदाधिकार

तद्वैराग्य स्मृत दुखमोहजानान्वयात्रिधा ॥

तन्नाय विपयाप्राप्तः समारोहेगलक्षण ॥ १ ॥

अन्नागमनसोः वेदो ज्ञानमव्यापक न यत् ॥

निजाभीप्सितलाभे च विनिपातोऽपि जायते ॥ २ ॥

**अर्थ—**—ते वैराग्य त्रण प्रकाशना छे दुखगमित, मोह गमित अने ज्ञानगमित तेमा प्रथम रुद्धो त निपयादिकने न पामगायकी ससारथी उद्देश पामगानु लक्षण छे, माट रेहने दुख-गमित वैराग्य कहिये ॥ १ ॥ देह समधी, मन समधी जे खेद तेयी उपज्यु जे ज्ञान ते अव्यापक के० वृद्धिकारी न याय, आत्मानी पुष्टिकर्त्ता न धाय, केमके रे प्राणी योतान जमिलाप कर्मया योग्य धनादिक वस्तुने पामीने तापमादिपणु त्रोडीने पातु गृहस्थपणु अगीकार कर ॥ २ ॥

दुखाद्विरक्ता प्रागेच्चउत्तिप्रत्यागते पद ॥

अधीरा छप मग्रामे प्रविडाता उनादिक ॥ ३ ॥

शुष्कनकादिक किञ्चिद्वैशकादिकमप्यहो ॥

पठति ते शमनदी न तु मिहानपहनि ॥ ४ ॥

**अर्थ—**—दुखयकी जे वैराग्य पाम छ त तो प्रथमवीज पाठा गृहस्थानामनी इच्छा फर त्रे, जे दुख टले तो घर जइये, जैम अधीर पुल्ल जे कायर ते मंग्रामने निष जतो वर्णे यननी गलीमा भराइ रेसानी इच्छा फर न्हे, नेहनी परे ॥ ३ ॥

प्राणीयो वादविवाद करवाने शुक्र तर्क ग्रंथ भणे छे, आजीविकाने अर्थे वैद्यक प्रमुखना ग्रंथ भणे छे; पण समता रसनी नदी एवी सिद्धांतनी जे पद्धति ते भणता नथी ॥ ४ ॥

ग्रंथपद्मव वोधेन गर्वोष्माणं च विभ्रति ॥

तत्त्वं ते नैव गच्छन्ति प्रशास्त्रामृतनिर्झरं ॥ ५ ॥  
वेष्मात्रभृतोऽप्येते गृहस्थान्नानिश्चरते ॥

न पूर्वोत्थायिनां यस्मान्नापि पश्चान्निपातिनः ॥ ६ ॥

अर्थः—जे समता—अमृतना झरणने पाम्या नथी, ते ग्रंथना पद्मवमात्रके० खंडखंडमात्रे करीने गर्वनी गरमीने धरीनेज वैत्ते छे, पण तत्त्वना रहस्यने पामताज नथी ॥ ५ ॥ जे साधुना वेष्मात्रे करीने पोतानुं जीवितव्यपणुं राखे छे, ते पण गृहस्थ-तुल्यज छे, पण गृहस्थी न्यारा नथी; जेणे आगल उच्छाह धयो नथी, जे गुण पामीने पडवाइ पण थया नथी, केमके गुण पामीने तजे ते तो पडवाइ कहेवाय; पण एतो कोइवारे पडवाइ पण थया नथी, एहवा जे छे ते तो गुणने पाम्याज नथी ॥ ६ ॥

गृहेऽन्नमात्रदौर्लभ्यं लभ्यंते मोदका व्रते ॥

वैराग्यस्थायमर्थां हि दुःखगर्भस्य लक्षणं ॥ ७ ॥  
कुशास्त्राभ्याससंभूतं भवनैर्गुण्यदर्शनात् ॥

मोहगर्भं तु वैराग्यं मतं वालतपस्विनां ॥ ८ ॥

अर्थः—अहो घरमां तां पूरुं अन्न पण नथी मलतुं, ने दीक्षा लीधा थकी तो लाडवा मले छे, ते माटे दीक्षा लेवामां शुं दुःख छे ? एवुं जाणीने जे दीक्षा लिये छे तेनुं नाम दुःखगर्भित वैराग्य जाणवुं ॥ ७ ॥ ए रीते प्रथम दुःखगर्भित वैराग्यपणुं

देसाद्यु हवे मोहगर्भित प्रगाय रहे कुशाखना अभ्यामथी  
प्रगटयु जे ससारनु निर्गुणीपणु तेथी मोहगर्भित प्रेराय थाय ठे  
ते वाल तपस्वी प्रमुख जाणवा ॥ ८ ॥

**मिद्धातसुपजीव्यापि ये विरुद्धार्थभाष्यिणः ॥**

तेपामप्येतदेऽवेष्टकुर्वतामोपि दुष्कर ॥ ९ ॥  
ममारमोचकादीना मिवैतेपा न तात्त्विकः ॥

**शुभोऽपि परिणामो यज्ञातानाजानकनिस्यतिः ॥ १० ॥**

अर्थ.—जे मिद्धातनु उपजीवन रुरीने पणाहून बिरोधि  
अर्थ कहे छे, ते ग्राणी जो दुष्कर करणी करे छे तोपण तेने एपो  
ज जाणवो ॥ ९ ॥ ममागना दुर्गथी मूकागाना हेतुयी जे  
मुसलमान ते घोडा प्रमुखने दुर्ही देसी दयाभावे करी मारी  
नासे छे, ते पण शुभ परिणामनी चुद्धि राखे छे ते छता परमार्थे  
पाप ज छे, तेम मोहगर्भितने परमार्थ बडे नहीं जो एनो परिणाम  
शुभ होय तोपण परमार्थ ज्ञाननी रुचि थाय नहीं ॥ १० ॥

**भमीपा प्रशासोप्युच्च दर्शपोपाय केवल ॥**

अतर्निलीनविषम ज्वरानुभवसन्निभ ॥ ११ ॥  
कुशाख्नार्थपु दक्षत्व इान्नार्थपु विषर्घय ॥

**स्वच्छदता कुतर्कार्थ गुणप्रत्यक्षस्तवोऽज्ञन ॥ १२ ॥**

अर्थ—जेम अतर्गगमा लीन धड रव्हा एहवो हाडपदी  
ज्वर दुरदायी थाय ठे, तम एने पण जे प्रगामादिक गुण थाय,  
ते पण धणु करीने केवल इपणभणीन थाय, पण गुणभणी नहींन  
थाय, केमके अतर्ग मिव्यात्व गया मिना प्रगाय ते दुरदायी  
ने ॥ ११ ॥ कुशाखना अर्थने मिं डावा थाय, ने शास्त्रना

विपरीत अर्थ करे, स्वछंदपणे वर्ते, कोइ साथे क्षमा राखे नहीं  
अने गुणीनी प्रशंसा न करे ॥ १२ ॥

आत्मोत्कर्षः परद्रोहः कलहो दंभजीवनं ॥

आश्रवाच्छादनं शक्तयुल्लंघनेन क्रियादरः ॥ १३ ॥  
गुणानुरागवैधुर्यमुपकारस्य विस्मृतिः ॥

अनुबंधाद्वचिंता च प्रणिधानस्य विच्छ्युति ॥ १४ ॥

**अर्थः**—जे पोतानी मोटाइ करे, पारको द्रोह करे, क्लेश  
कज्जीआ करे, कपट राखे, पोताना पाप ढांके, पोतानुं  
सामर्थ्य उलंघीने क्रियानो उद्यम करे, ते आर्तध्यानी कहेवाय  
॥ १३ ॥ वली जे गुणी पुरुषोनो रागी न होय, बीजाना करेला  
उपकारने विसरी जाय, तीव्र कर्मबंधनी चिंता सहित वर्ते, अने  
शुभ अध्यात्मना अध्यवसाय रहितपणे वर्ते ॥ १४ ॥

श्रद्धामृदुत्वमौद्धत्य माधुर्यमविवेकिता ॥

वैराग्यस्य द्वितीयस्य स्मृतेयं लक्षणावली ॥ १५ ॥  
ज्ञानगर्भं तु वैराग्यं सम्यकृतत्वपरिच्छिदः ॥

स्याद्वादिनः शिवोपायस्पर्शिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ १६ ॥

**अर्थः**—श्रद्धा, मृदुता, उद्धुतता, मधुरता, अविवेकपणुं ए  
मोहगर्भित वैराग्यनी परंपरा जाणवी ॥ १५ ॥ ए रीते मोहगर्भित  
वैराग्यनुं स्वरूप कहुं. हवे ज्ञानगर्भित वैराग्यनुं स्वरूप कहे छे.  
जे सम्यक्त्वे करी तत्त्वनी ओलखाण करे, स्याद्वाद दृष्टियें वर्ते,  
मोक्षनुं चिंतन करे, मोक्षना उपायने फरसे, अने तत्त्वदिशा देख-  
वानो अर्थी थाय; ते ज्ञानगर्भित वैराग्य जाणवो ॥ १६ ॥

मीमांसा मासला यस्य स्वपरागमगोचरा ॥

बुद्धिः स्यात्तस्य वैराग्यं ज्ञानगर्भसुदचति ॥ १७ ॥  
न स्वान्यशास्त्रव्यापारे प्राधान्यं यस्य कर्मणि ॥

नामौ निश्चयसञ्जुद्ध मार प्राप्नोति कर्मण् ॥ १८ ॥

अर्थः—जेहनो विचार पुष्टकारी होय अने स्वसिद्धात तथा पर-  
सिद्धात सबधी बुद्धि जेने होय तेने वैराग्यनी वात कहिये, अने  
एवानेज ज्ञानगर्भित वैराग्य ग्रगट याय ॥ १७ ॥ जेने स्वशास्त्र  
परशास्त्रना व्यापारनु प्राधान्यपणु नथी, तेमज क्रियाने विषे पण  
प्राधान्यता नथी, ते निश्च थकी क्रियानुं निर्मल सारभूत जे फल  
तेने क्यारे पण पामे नहीं ॥ १८ ॥

सम्यक्त्वमौनयो सूत्रे गतप्रत्यागते यतः ॥

नियमो दर्शितस्तस्मात् सार सम्यक्त्वमेव हि ॥ १९ ॥  
अनाश्रवफल ज्ञानमव्युत्थानमनाश्रव ॥

सम्यक्त्वं तदभिव्यक्तिरत्येकत्वविनिश्चय, ॥ २० ॥

अर्थः—जे सम्यक्त्व ते मौन चारित्र कहिये, अने  
चारित्र ते मोन समर्कित रहिये, एतु श्री आचाराग मध्ये गत-  
प्रत्यागत करीने कहु छे ॥ ज सम्म तिपासहा त मोण तिपासहा  
जम्मो ॥ ते माटे नियामकापणु जाणदु ॥ सिङ्गति चरण-  
रहिया दसणरहिया न मिङ्गति ॥ इति पचनात् ते माटे सम्यक्त्व  
ते सारभूत जाणदु ॥ १९ ॥ आश्रमनो त्याग ते ज्ञाननु फल छे  
अने अनाश्रमनु फल ते अभ्युत्थान एटले निषयमा उजमाल न  
याय, विषयनो त्यागी होय, एनु नाम निश्चय सम्यक्त्व कहिये  
कारक सम्यक्त्वीनी एवी दृष्टि होय, एटला माटे निश्चय नय-  
नीरति कें० प्रीति ते शुद्धचारित्रपतनेज होय ॥ २० ॥

वहिनिवृत्तिमात्रं स्याच्चारित्यादृच्यवहारिकात् ॥

अंतःप्रवृत्तिसारं तु सम्यक् प्रज्ञानमेव हि ॥ २१ ॥  
एकांतेन हि पट्टकायश्रद्धानेऽपि न शुद्धता ॥

संपूर्णपर्ययालाभाद् यन्न यायात्म्यनिश्चयः ॥ २२ ॥

**अर्थः**—धन, कण, कंचन, कामिनी प्रमुख वाह्य वस्तुनो जे त्यागी थाय, ए व्यवहार चाग्निना पालवाथी ते प्राणी व्यवहार दृष्टियेज चाले छे अने जेने सम्यक्त्व सहित ज्ञाननी प्रवृत्ति होय, तेहनेज अंतरंग प्रवृत्तिनो सार कहिये ॥ २१ ॥ ममस्त नयनी वामना गहित थका एकांते छकायनी रक्षानी श्रद्धा करता थका सम्यक्त्वनी शुद्धता न कहेवाय, पण संपूर्ण नयनो अपेक्षाये द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयना लाभ विना यथार्थपणानो लाभ नहीं ज थाय, माटे शुद्ध नयनी अपेक्षाये वर्त्तवुं ॥ २२ ॥

यावन्तः पर्यया वाचां यावन्तश्चार्थपर्ययाः ॥

मांप्रतानागतातोतास्ताचद्वच्यं किलैककं ॥ २३ ॥  
स्यात्मर्वभयमित्येवं युक्तं स्वपरपर्ययैः ॥

अनुवृत्तिकृतं स्वत्वं परत्वं व्यतिरेकजं ॥ २४ ॥

**अर्थ—**जेम जगत्मां वर्तमान, अनागत तथा अतीतकालना जेटला शब्द पर्याय बचनना छे, तथा पदार्थना जेटला अर्थपर्याय छे, ते सर्व पर्याय निश्चेष्ठी एकज द्रव्य छे ॥ २३ ॥ जे सत्त्व के० पदार्थ ते सर्वस्व परपर्यायमयी होय ते आधी रीते जे अनुवृत्ति सहजचारी गुणपणे स्वत्वं के० स्वपणं जाणवुं अने परपणं ते व्यतिरेकपणे करी जाणवुं ॥ २४ ॥

ये नाम परपर्याया, स्वास्तित्वायोगतो मता ॥  
 स्वकीया अप्यमी त्याग स्वपर्यायविशेषणात् ॥ २५ ॥  
 अतादात्म्येऽपि सबधव्यवहारोपयोगत, ॥  
 तेपा स्वत्वं धनस्येव व्यज्यते सृक्षमया धिया ॥ २६ ॥

अर्थ—जेटला परपर्याय छे ते सर्व पोतानी आस्तिक्य-  
 ताना अजोगथी जाणगा. ते यद्यपि पोताना छे, तो पण गतभाव  
 छे अने पोताना पर्याय तो सामान्यतापणे छे ॥ २५ ॥ परप-  
 र्याय जो पण तादात्म्यभावे नथी तोपण व्यवहारनयना जोगथी  
 तेहनो समध छे जेम वननो धणी अने धन ते जुदा जुदा छे,  
 तोपण मूक्षम उद्धिये चिचारता तेमनो समध जणाय छे ॥ २६ ॥

पर्याया स्युर्मुनेज्ञानदृष्टिचारित्रगोचरा, ।  
 यथा भिन्ना अपि तयोपयोगाद्वस्तुनो ल्लमी ॥ २७ ॥  
 नो चेदभावसमधान्येपणे का गतिर्भवेत् ॥  
 आधारप्रतियोगित्वे द्विष्टे न ति प्रयग् द्वयो ॥ २८ ॥

अर्थ—तेम अभिन्नपणे ज्ञानना तथा चारित्र समधी  
 पर्याय मुनिने पण हाय, जो पण त अभिन्न ते, ता पण उपयोग  
 पण विचारता निश्चयनये पोतपोताना ज ते, पण व्यवहार एक  
 आत्माना छे, एम कहाय ॥ २७ ॥ एम जो न कहीये अने  
 अभावना समधथी गयेपणा करिये तो केवी गति थाय ? आधा-  
 रातर निरूपकृताने भाँगे चिचारता, “ द्विष्टे विनष्टे द्वयात् ” एटले  
 पृथक्भावराना द्वेष करवाई चिणसे अने त वेहुथी आत्मा  
 भिस नयी ॥ २८ ॥

स्वान्यपर्यायसंश्लेषात् सूत्रोऽप्येवं विद्गिंतं ॥

सर्वमेकं विदन्वेद् सर्वं ज्ञानं तर्यककं ॥ २० ॥

आसत्तिपाटवाभ्यास स्वकार्यादिभिराश्रयन् ॥

पर्यायमेकमप्यर्थं वेन्नि भावाद् बुद्धोऽग्निलं ॥ ३० ॥

अर्थ—स्वपर्याय अने परपर्यायना संबंधयी सूत्रने विषेण पण एम देखाइयुं हे के सबलुं एकतामावे जाणहां, “एंआया,” इत्यादिक सबलुं ज्ञान ते नंग्रहनये करी एकज हे ॥ २९ ॥ माटे चित्तनी आमक्तिये अने बुद्धिनी पाठ्वताये अभ्यास करवायी पोताना कार्यपणादिकने आश्रयतां थकां पर्यायना एक अर्थने जाणीने पण बुद्ध जे पंडित ते सर्व भावने जाणे “जे एर्ग जाणइ से सबं जाणह” इति वचनात ॥ ३० ॥

अंतरा कैवलज्ञानं प्रतिव्यक्तितर्व यद्यपि ॥

कापि ग्रहणमेकांशद्वारं चातिप्रसक्तिमत् ॥ ३१ ॥

अनेकांतागमश्रद्धा तथाप्यस्वलिता सदा ॥

सम्यग्द्वद्वास्तर्यैव स्यात् संपूर्णार्थविवेचनं ॥ ३२ ॥

अर्थ—यद्यपि कैवलज्ञानने विषे तो कांइ पण प्रतिव्यक्ति नथी, तोपण कोइ ठेकाणे एक अंशनुंज ग्रहण कर्युं हे, ने कोइ स्थानके सर्वांश ग्रहण कीयो हे ॥ ३१ ॥ तो पण अनेकांत आगमनी श्रद्धा ते अस्वलितपणे सदा प्रवर्त्ते हे, माटे अनेकांत-पणुं अंगीकार करतां ज सम्यक्त्व हे; तथा उत्सर्ग, अपवाद, निश्चयव्यवहार तेना संपूर्ण अर्थनो निश्चय थाय हे ॥ ३२ ॥

आगमार्योपनयनाद् ज्ञानं प्राज्ञस्य सर्वगं ॥

कार्यदिव्यवहारस्तु लियतोङ्गेखद्वौखरः ॥ ३३ ॥

तदेकातेन यः कश्चिद्विरक्षस्यापि कुग्रहः ॥

शास्त्रार्थवाधनात्सोऽय जैनाभासस्य पापकृत् ॥ ३४ ॥

**अर्थ—**आगमना अर्थनु उपनयन जे थाप्तु ते थकी प्राण जे बुद्धिवत तेनु ज्ञान सर्वव्यापक्षणे प्रवर्त्ते कार्यादिक जे व्यवहार छे, ते तो निश्चयपणे चिन्मणनी रेसा सरिसो छे श्रेष्ठरूप करनाने जेम आलेखन करे ते सरिसो व्यवहार छे, अने समग्ररूप करवा समान ते निश्चयनय छे ॥ ३३ ॥ ते माटे एकात नय अगीकार करीने प्रवर्त्तनारा तेराग्रवतने पण कुग्रही कहिये, तो बीजा मात्र नाम वरापनार होय तेनी तो शी वार्ता ? एक नयगालो शास्त्रना अर्थनो वाधक जाणन्वो, ते जो जैनाभास छे तो पण पापकारी जाणन्वो ॥ ३४ ॥

उत्सर्गं चापवादेऽपि व्यवदारेऽय निश्चये ॥

जाने कर्मणि वाय चेन्न तदा ज्ञानगर्भता ॥ ३५ ॥  
स्वागमेऽन्यागमार्थाना शतस्येव परार्थके ॥

तावताप्यवुधत्व चेन्न तदा ज्ञानगर्भता ॥ ३६ ॥

**अर्थ—**उत्सर्गमार्गमा, अपगादमार्गमा, व्यवहारमार्गमा, निश्चयमार्गमा, ज्ञाननयने गिषे अने क्रियानयने गिषे जो कदाग्रह नयी, तो तेने ज्ञानगर्भितपणु छे अने ते ज्ञानी पण छे ॥ ३५ ॥ स्वसिद्धातना जाणगाथी अन्य शास्त्रनु जाणनु ते तेसा ज समाह जाय छे जेम परार्थ नाम उत्कृष्ट गणित (अक) छे, तेसा सोनु गणित (अक)पण समाह जाय छे, अने तेटलु ज्ञान पामीने पण जो अनानपणु रहे तो, तेने ज्ञानगर्भिता पिलकुल नथी एम जाणनु ॥ ३६ ॥

नयैषु 'स्वार्थसत्येषु मोघेषु परचालने ॥

माध्यस्थयं यदि नायातं न तदा ज्ञानगर्भता ॥३७॥

आज्ञागमिकार्थनां यौक्तिकानां च युक्तिः ॥

न स्याने योजकत्वं चेन्न तदा ज्ञानगर्भता ॥३८॥

अर्थ—पोतपोताना स्वार्थने विषे सघला नय सत्य छे, ने परमार्थनी चालने विषे निष्पल छे, अने ते नयना विवादमां जो मध्यस्थता न आवी तो तेने ज्ञानगर्भता छे ज नहीं ॥३७॥ जै आज्ञाग्राह्य अर्थने आज्ञाये ग्रहं नहीं, आगम प्रमाणे ग्रहवा योग्यने आगमे ग्रहे नहीं, अने युक्तिग्राह्यने युक्तिवडे ग्रहे नहीं, एम सहुने पोतपोताने ठेकाणे जोडी जाणे नहीं, तो तेने ज्ञान-गर्भिता मूलथी ज नथी एम जाणबु ॥ ३८ ॥

गीतार्थस्यैव वैराग्यं ज्ञानगर्भं ततः स्थितं ॥

उपचारादभितस्याप्यभीष्टं तस्य निश्रया ॥ ३९ ॥

सूक्ष्मेक्षिका च माध्यस्थयं सर्वत्र हितचिंतनं ॥

क्रियायामादरो भूयान् धर्मे लोकस्य योजनं ॥४०॥

अर्थ—उपर कहा मुजव तो गीतार्थने ज ज्ञानगर्भित वैराग्य छे, पण अज्ञानीने नथी एम ठर्युँ; तो पण तेना उपचारथकी अंगीतार्थने पण गीतार्थनी निश्राये ज्ञानगर्भित वैराग्य छे ॥३९॥ ते माटे सूक्ष्म दृष्टिये मध्यस्थपणुं अंगीकार करीने अने परदूपण तजीने वर्त्तबुं, सर्व जगत्रना जीवनुं हित चिंतवबुं, मैत्रीभाव धरखो, क्रियाने विषे वणो आदर करखो, उपयोग धरखो अने धर्मसार्गमां लोकने जोडबा एहि ज श्रेष्ठ छे ॥ ४० ॥

चेष्टा परस्य रुक्ताते मृकाध्यधिरोपमा ॥

उत्साहः स्वगुणाभ्यासे दु स्यस्येव धनार्जने ॥४१॥  
मदनोन्मादवमन मदसमर्द्दमर्द्दन ॥

असूयाततुविल्लेदः समतामृतमज्जन ॥ ४२ ॥

**अर्थ—**मुगा तथा आधला जने वेहरानी पेरे बोलगामा,  
देगमामा जने माभलगामा इत्यादिकं पारका वृत्तातने पिपे जेणे  
चेष्टा तजी छे, अने पोताना गुणना अभ्याम करनामा जे उत्सा-  
हनत छे; जेम दरिद्री धन कमागानो उद्यमी होय तेनी परे उज-  
माल यसो यसो ॥ ४१ ॥ कामना उन्मादनु भमन करनारा,  
मदना ममूठने टालनारा, ईर्पारूप ततुना तोडनारा अने समता-  
रूप अमृत कुडमा भज्जन करनारा ॥ ४२ ॥

स्यभावान्नैव चलन चिदानन्दमयात्सदा ॥

वैराग्यस्य तृतीयस्य स्मृतेय लक्षणावली ॥ ४३ ॥

ज्ञानगर्भमिद्दादेय द्वयोस्तुस्नोपमर्दत ॥

उपयोग कदाचित् स्यान्निजाध्यात्मप्रसादत् ॥ ४४ ॥

**अर्थ—**तथा चिदानन्दमयपणाना स्वभावी भर्दा  
चलायमान नहीं एहा र्त्तेणुक्तवत जे होय, ए त्रीना ज्ञानगर्भित  
वैराग्यना गुणनी लक्षणावली कही ॥ ४३ ॥ इहा नानगर्भित  
वैराग्य त ग्रन्था योग्य ते, जने मोहगर्भित वैराग्य तया दु खग-  
र्भित वैराग्यनु उपमर्दन करीने केडक पोताना अध्यात्मभागना  
प्रमाण्यसी कटाचित् ज्ञानगर्भित वैराग्यनां उपयोगी धाय ॥४४॥

इति श्रीवैराग्यभेदाधिकार पष्ठ समाप्त ॥

## वैराग्य विषयाधिकार-

विषयेषु गुणेषु च द्विधा भुवि वैराग्यमिदं प्रवर्त्तते ॥  
अपरं प्रथमं प्रकीर्तिं परमध्यात्मबुद्धिर्द्वितीयकं ॥ १ ॥

अर्थ—पृथ्वीने विषे विषयमां अने गुणमां ए बेहु प्रकारे वैराग्य प्रवर्त्ते छे. तेमां विषय वैराग्य तो अमुख्यपणे कह्यो छे. वीजो अध्यात्मभावयुक्त गुण वैराग्य ते मुख्यपणे जाण्यो ॥ १ ॥ विषयाउपलंभगोचरा अपि चानुश्रविकाविकारिणः ॥ न भवांति विरक्तचेतसां विषधारेव सुधासु मज्जतां ॥ २ ॥

अर्थ—जे विषय वैराग्य छे ते प्राप्तिगोचरपणे वर्त्ते छे, पण निश्चेथी ज्ञाता पुरुष ते रूपरसादिकने विषे आसक्ति करे नही. जे विरक्त चित्तवाला ते अविकारी थकाज होय, केमके जे अध्यात्मरूप अमृतधाराने विषे मज्जन करता होय तेहने विषनी धारा शुं करनार छे ? अर्थात तेहने कांड विषनी धारा पीडा करी शकती नथी ॥ २ ॥

सुविशालरसालमंजरीविचरत्कोकिलकाकलीभरैः ॥  
किसु मावति योगिनां मनो निभृतानाहतनादसादरं ॥ ३ ॥

अर्थ—जे योगीश्वर अनहद नादे सहित छे, ते योगमार्गे करीने सर्व देहंघपुरीने “ अहंपद ” अथवा “ सोहं ” पद अथवा अङ्कार ध्वनि मनमां धरे छे, तेनो ब्रह्मद्वारे जे नाद ऊठे छे तेनुं नाम अनहद नाद कहिये, तेणे करी जे युक्त छे तो तेवा योगीश्वरनुं मन भली विस्तारवंती आंवानी मंजरीने विषे विचरती जे कोकिला तेना मनोहर शब्द सांभलीने शुं मझ थशे ? अर्थात नहीं ज थशे ॥ ३ ॥

रमणीमद्दुपाणिकक्षणकणनाकर्णनपूर्णधूर्णना ॥  
अनुभूतनटीस्फुटीकृतप्रियमगीतरता न योगिन ॥४॥

अर्थ—स्त्रीना सुकोमल हाथमा रखा जे कक्षण तेनो  
शुद्ध सामलीने पूर्णपणे घुम्पा छे लोचन तेनी अनुभवन दिशास्प  
नाटक करनारी स्त्रीये प्रियकारी मगीतपथ नाटक कीपा तो पण  
तेमा योगीश्वरलु मन रगाय नहीं, एट्ले लोभाय नहीं ॥ ४ ॥  
स्वलनाय न शुद्धचेतना ललनापचमचारुघोलना ॥  
यदिय समतापदावलीमधुरालापरतेन रोचते ॥ ५ ॥

अर्थ—स्त्रीनी पचमरागनी घोलना ते समतापदनी  
प्रेणिना मधुर आलापनी रतिपाला शुद्ध चेतनापत योगीने स्वे  
नहीं, एट्ले शुद्ध चेतनापतने सलनाकागी न थाय ॥ ५ ॥  
सतत क्षयि शुक्लशोणितप्रभव स्वपमपि प्रिय न हि ॥  
अविनाशिनिसर्गनिर्मलप्रथमानस्तकस्वपदर्जिन, ॥६॥

अर्थ.—अमिनाशी महज निर्मल अने मिस्तार पामतु  
एहु जे पोतानु स्मृत तेहना जोनार योगीश्वर तेने तो जेनु  
निरतर शील क्षय थाय छे अने शीर्यसधिरवी उपनु एवु जे स्त्री  
आदिकनु स्प ते प्रियकागी लागतु नवी ॥ ६ ॥

परदृश्यमपायमकुल रिययो यत्पलु चर्मचशुप ॥  
न हि स्पमिद मुदे यया निरपायानुभवैकगोचर ॥७॥

अर्थ—जेगो निरपाय के० जेहो नाश नवी एहो  
अनुभवदिशाने जोगानो रम छे तेगो स्प त पग्पडार्य के०  
षीनान जोगा योग्य छे, वया नाशप्रत छे, अने चर्मचशुनो रिय

छे एहवो जे रूप ते जोवाथकी तेनो जे रस ते निश्चयनयथकी हर्षकारी न थाय ॥ ७ ॥

रतिविभ्रमहास्यचेष्टिते र्ललनानामिह मोदते ऽबुधः ॥  
सुकृताद्रिपविष्वमीषु नो विरतानां प्रसरंति दृष्टयः ॥ ८

अर्थ—रतिसुखने देखीने तथा स्त्रीना नेत्रविभ्रमनी घेष्टायें करीने अबुद्ध जे अज्ञानी प्राणी ते घणो हर्ष पासे छे, पण ए विभ्रम विलासादिक तो सुकृतरूप पर्वतने बज्र थह भेदे एवा छे माटे योगीश्वरनी दृष्टि तेमां रमती नथी ॥ ८ ॥

न मुदे मृगनाभिमल्लिकालवलीचंदनचंद्रसौरभं ॥  
विदुषां निरुपाधिवाधितस्मरशीलेन सुगंधिवर्षणां ९

अर्थः—कस्तूरी, मालतीना पुष्प, लवली के० एलची चंदन तथा चंद्र के० कर्पूरनी सुगंधी ते पंडित लोकोने मग्न करती नथी; तेमने तो निरुपाधिक अनुभवगोचर स्वरूप चिदादानंदने विषेच सग्रपणु वर्ते छे, पण रूपादिकने विषे मग्नतापणु नथी ॥ ९ ॥

उपयोगमुपैति यच्चिरं हरते यन्न विभावमारुतः ॥  
न ततः खलु शीलसौरभादपरस्मिन्निह युज्यते रतिः ॥ १०

अर्थः—जे घणा काल सुधी उपयोगमां आवे, जेनी सुगंधीने विभावदिशारूप वायु हरी शकतो नथी, एवी जे शील सुगंधी तेने मूकी योगीश्वरनुं चित्त अन्य सुगंधीमां लोभातुं नथी ॥ १० ॥

मधुरैर्न रसैरधीरता क्लचनाध्यात्मसुधालिहां सतां ॥  
अरसैः कुसुमैरिवालीनां प्रसरत्पञ्चपरागमोदिनां ॥ ११ ॥

**अर्थ—** जेम पिक्स्वर थता जे कमल तना स्वाद सुगध-युक्त रसे मग्न थया एवा जे भ्रमण ते निरस कुसुम उपर रति पामे नहीं, तेम अध्यात्मस्त्रूप अमृतरसना भोगी जे प्राणी तेने धीजा शर्करादिक मधुररसनी अधीरजता उपजती नथी, गृधतापण करे नहीं ॥ ११ ॥

विषमायतिभिर्नु कि रसै स्फुटमापातसु वैर्विकारिभिः  
नवमेऽनवमे रसे मनो यदि मग्न सतताविकारिणि ।१२।

**अर्थ—** जे आगल कडगा विपाक आपे एवा मधुररसे शु सारु ? वली प्रगटपणे राज्यरुद्धि, खीं विषयादिक सुख पाम्या अने ते पाछा जता रहे तेथी विक्रिया प्रगटे तो तेवा सुखथी शु सारु ? जो सदाय अविकारी एवो पूर्ण नम्रमो जे शातरम तने विषे मनमग्न छे, तो पूर्णे कला एवा रसे शु फायदो थाय ? अर्थात् काइज नहीं ॥ १२ ॥

मधुर रसमाप्य निःपतेद्रसनातो रसलोभिना जल ॥  
परिभाव्य विपाकसाध्वस विरताना तु ततो दृशोर्जल ॥३॥

**अर्थ—** एक अचरज जुगो, के रसना लालची जे प्राणी त मधुर रमने जोड्ने अयवा साधानी यात मामलीने कहे छे के मारा मुखमा पाणी भराय छे एटले जीभथी पाणी पडे छे, अने सर्वमिरति जे मुनिराज ते मासादिक मधुररस साधे आगल माठा विपाक आगजो, तेना भेयने विचारी वेउ आसे पाणी आणे छे, एटले आखोमायी आसु पाडे छे ॥ १३ ॥

इह ये गुणपुष्पङ्गरिते धृतिपत्नीमुपगुद्य शेरते ॥  
विमले सु विकल्पतल्पको क्षा वहि स्पर्शरता भवतु ते ॥४॥

**अर्थः—**इहां चरणकरणादिक जे गुण ते रूप फुलें पुरी एवी निर्मल जे सुविकल्प के० मनकुशलतारूप शब्द्या, तेहने विषे संतोषरूप स्त्रीने आलिगन देहने गृए हे, तेवा मुनिराज ते वाह्य स्त्रीना स्पर्श विषे रत केम थाय ॥ १४ ॥

हृदि निर्वृतिमेव विश्रन्तां न मुदे चंदनलेपनाविधिः ॥  
विमलत्वमुपेयुपां सदा सलिलस्नानकलापि निष्फला १५

**अर्थः—**हृदयने विषे निवृत्ति सुखने धरनारा जे प्राणी तेने वावनाचंदनना लेपनी विधि ते हर्ष आपती नथी, तथा सदैव निर्मलभावने धरता जे प्राणी तेने जलनी स्नानविधि ते निष्फल जाणवी ॥ १४ ॥

गणयांति जनुः स्वर्मर्यवत्सुरतोऽज्ञाससुखेन भोगिनः ॥  
मदनाहिविषोग्रमृद्धनामयतुल्यं तु तदेव योगिनः ॥ १६ ॥

**अर्थ—**भोगी प्राणी स्त्री साथे विलास सभोगना सुखे करी जन्मारो सफल माने हे, अने योगीश्वर पुरुष तो मदन जे काम तेनी चेष्टाने सर्पना विपनी आकरी मृच्छातुल्य माने हे ॥ १६ ॥ तदिमे विषयाः किलैहिका न मुदे केऽपि विरक्तचेतसां ॥ परलोकसुखेऽपि निःस्पृहाः परमानन्दरसालसा असी ॥ १७ ॥

**अर्थ—**वैरागी जीवने या भवमां क्षणिक सुख आपे एवा जे विषय ते निश्चयथकी कांइ पण हर्षकारी नथी, केमके त्यागी प्राणी तो परलोक जे स्वर्गादिकनां सुख तेने विषे पण निःस्पृही हे; ते तो मात्र सोक्षसुखनाज अभिलापी हे ॥ १७ ॥

मद्मोहविषादमत्सरज्वरवाधाविधुरा सुरा अपि ॥  
विषमिश्रितपायसान्नवत् सुखमेतेष्वपि नैति रम्यता ॥ १८ ॥

अर्थ—गर्व, अज्ञान, विषाद अने मत्सर ते रूपभासनी पीड़ाये रहित एवा जे देवता तेना जे निषयादिक सुख ते पण विष-मिश्रित दूधपाकना भोजननी परे मनोहरकारी नवी ॥ १८ ॥  
रमणीविरहेण वहिना बहुराष्ट्रानिलदीपितेन यत् ॥  
त्रिदृशैर्दिवि दु खमाप्यते घटते तत्र कथ सुखास्थिति. १९

अर्थ—केमके खीना पियोगरूप अग्नि ते आसुरूप गायरे करी देदीप्यमान यो एओ जे शोकरूप अग्नि प्रगट्यो, तेथी स्वर्गना देवताने पण पीडा थाय छे, तेहा ते स्वर्गमा देवताने पण सुखनी स्थिति छे, एहबु केम कहेनाय ? ॥ १९ ॥

प्रथमानविमानसपदा च्यवनस्यापि दिवो विचिन्तनात् ॥  
हृदय न हि यद्विदीर्यते युसदा तत्कुलिशाणुनिर्मित ॥ २० ॥

अर्थ—जेने निमान सपदा मोटी छे एवा देवताने पण च्यवन वेलाये जे दु स प्रगटे छे, ते दु साथी देवतानु हृदय भास फाटतु नवी, तेनु कारण जे तेमनु हृदय ते पञ्चना परमाणुये करी उत्पन्न थयेलु छे, तेवी घणु कठण छे, माटेज फाटतु नवी ॥ २० ॥

विषयेषु रति, शिवार्थिनो न गतिष्वस्ति किलाग्वि-  
लास्वपि ॥  
घननदनचदनार्थिनो गिरिभूमिष्वपरद्रुमेष्विव ॥ २१ ॥

अर्थः—जेम निविड नंदनवनना चंदनना विलेपनवालाने  
पर्वतनी भूमियें अथवा वीजा कोडण पृष्ठे रति थती नथी, तेम  
मोक्षार्थीने विषय उपर प्रीति थती नथी, तेमज मनुष्य तथा  
स्वर्गप्रमुख समग्र गतिने विषे पण प्रीति थती नथी ॥ २१ ॥

इति शुद्धसतिः स्थिरीकृता उपरचैराग्यरमस्य योगिनः ॥  
स्वगुणेषु वितृष्णतावहं परचैराग्यमपि प्रवर्त्तने ॥ २२ ॥

अर्थः—एम विचारी शुद्धबुद्धि स्थिर करीने जेने वीजा  
चैराग्यनो गुण प्रगाढ़ो छे तेवा योगीने आत्मगुणने वधारं एवी  
तृष्णाना आगमरूप परम चैराग्य प्रेगट थाय ॥ २२ ॥

विपुलर्द्धिपुलाकचारणप्रबलाशीविषमुख्यलब्धयः ॥  
न मदाय विरक्तचेतसामनुपंगोपनताः पलालवत् ॥ २३ ॥

अर्थः—विपुललब्धि, पुलाकलब्धि, चारणलब्धि, म-  
होटीआशीविषयलब्धि, प्रमुख अनेक स्तविधओ जो पण उपजे,  
तोपण ते चैरागी मुनिने अहंकार भणी थाय नहीं, मात्र एक  
मुक्तिसुख विना वीजां सुखने पलाल पुंजरूप ते माने छे ॥ २३ ॥

कलितातिशयोऽपि कोऽपि नो  
विदुधानां मदकृद्गुणव्रजः ॥  
अधिकं न विदन्त्यसी यतो  
निजभावे समुदंचाति स्वतः ॥ २४ ॥

अर्थः—पंडित ते कोइ मोटा अतिशयादि गुणना समूहे  
सहित होय, तोपण मद करे नहीं, तेथी कांइ अधिकता पण न  
गणे, मात्र पोताना शुद्ध स्वभावमांज आनंद पासे ॥ २४ ॥

हृदये न डिवेऽपि लुभ्यता मदनुष्ठानमसगमगति ।  
पुरुषस्य दण्डयमिष्यते महजानदतरगसगता ॥ २५ ॥

अर्थ—पोताना हृदयने पिपे मुक्तिसुख उपर पण  
हुन्यता नथी, एक मद्भानुष्ठानस्य सहजानदना कह्यांलने मलती  
अमगानुष्ठानस्य पुरुषनी जे दशा तेने वाहे छे, पाम छे ॥२५॥  
इति यस्य महामर्तिभयेदित्त वैराग्यविलासभृन्मनः ॥  
उपग्रहति चरीतुमुच्चक्षस्तमुदारप्रकृतिं यशःश्रिय ॥२६॥

अर्थ—वैराग्यविलासी पुरुषने एवी बुद्धि उपजे छे ने  
वेगा उदार प्रतिगालाने यशस्य जे लक्ष्मी ते हर्ष धरीने वरयाने  
इच्छे ते ॥ २६ ॥ इति श्री वैराग्य निष्याधिकार ममाप्त

इति द्वितीय प्रखंड ममाप्त ॥



## ममतात्यागाधिकारः

निर्भैमस्यैव वैराग्यं स्थिरत्वमवगाहते ॥

परित्यजेत्ततः प्राज्ञो ममतामत्यनर्थदां ॥ १ ॥

विषयैः किं परित्यक्तैर्जागिर्ति ममता यदि ॥

त्यागात्कञ्चुकमात्रस्य भुजंगो नहि निर्विषः ॥ २ ॥

अर्थः—ममता रहित प्राणीनेज वैराग्य स्थिरपणे रहे छे. ते माटे बुद्धिवंत प्राणिये अनर्थदायक जे ममता तेने तजवी ॥ १ ॥ जेम सर्प कांचली काढवाथी विष रहित थतो नथी, तेम जेने ममता जागे छे ते विषयनो त्याग करे तो पण त्यागी थतो नथी ॥ २ ॥

कष्टेन हि गुणग्रामं प्रगुणीकुरुते मुनिः ॥

ममंताराक्षसी सर्वं भक्षयत्येकहेलया ॥ ३ ॥

जंतुकांतं पशूकृत्य द्रागविद्यौषधीविलात् ॥

उपायैर्वहुभिः पत्नी ममता क्रीडयत्यहो ॥ ४ ॥

अर्थ—जे गुणसमूहने मुनिराज घणा कटे करी प्रगट करे छे, तेने ममतारूप राक्षसी एक कोलीये खाइ जाय छे ॥ ३ ॥ केवुं आश्रय छे के त्रियाराज्यनी पेरे ममतारूप स्त्री ते जीवरूप भर्तारने पशु जे मर्कट ते रूपे करीने शीघ्रपणे अज्ञानरूप जडी-बुटीना बलशकी घणे प्रकारे नचावीने रमाडे छे ॥ ४ ॥

एकः परभवे याति जायते चैक एव हि ॥

ममतोद्रेकतः सर्वं संबंधं कलयत्यथ ॥ ५ ॥

व्याप्रोति महती भूमि वटवीजावया वटः ॥  
तयैकममतावीजात्प्रपचस्यापि कल्पना ॥६॥

अर्थ—एकलो वेतन परभरे जाय छे अने एकलोज आ  
भवे आवे छे, पण ममताने यश बडने रत्नादेवीनी परे मिथ्या  
सगपण न्यात जात वगेरेनी कल्पना करे छे ॥ ५ ॥ जेम एक  
बडना वीजथकी घणी धरतीये बड व्यापीने मिस्तार पामे छे, तेम  
एक ममताना गीज थकी घणा प्रपचनी कल्पना उठे छे ॥ ६ ॥

माता पिता मे आता मे भगिनी वद्धभा च मे ॥

पुत्रा सुता मे मित्राणि जातयः सस्तुताश्च मे ॥७॥  
इत्येव ममताव्याधि वर्द्धमान प्रतिक्षण ॥

जन, शास्त्रनोति नोच्छेत्तु विना ज्ञानमहौपध ॥ ८ ॥

अर्थ—माता, पिता, भाई, बेन, स्त्री आ भर्त माहरा छे,  
पुत्र, पुरी, मित्र ए पण माहरा छे, न्याति परिचित ए माहरा छे  
॥ ७ ॥ ए प्रकारे ममतारूप रोग दिवसे दिवसे ग्रहतो जाय छे,  
तेने मटाडयाने कोड पण ज्ञानरूप ओपाप मिना ममर्थ  
यातो नवी ॥ ८ ॥

ममत्येन्द्रं नि शकमारभादो प्रमर्त्तते ॥

कालाकालमसुत्यार्थी धनलोभेन भावति ॥ ९ ॥  
स्वय येपा च पोपाय विश्रते ममतावदः ॥

इहासुत्र च ते न स्युन्नाणाय शरणाय वा ॥१०॥

अर्थ—जेम खेला व्हेला उठीने पिंप्र वे मामा सोनु  
लेगाने गयो, तेनी परे एक ममताये करीने नि शुकपणे आरभमा

प्रवर्त्ते छे; ममणशेठ परे धनने लोभे करी दांडे छे ॥ ९ ॥ पर-  
भवमां इहांनुं कुटुंब शरण आधार नथी, तो पण कुटुंबने पोपवानी  
ममतामां खेद पासे छे ॥ १० ॥

ममत्वेन वहन् लोकान् पुष्णात्येकोऽर्जितैर्धनैः ॥

सोढा नरकदुःखानां तीव्राणामेक एव तु ॥ ११ ॥

ममतान्धो हि यन्नास्ति तत्पद्यति न पद्यति ॥

जात्यंधस्तु यदस्त्येतद्देव इत्यनयोर्महान् ॥ १२ ॥

**अर्थ—**पोते एकलो धन मेलवीने ममत्वे करीने घणा  
लोकने पुष्टि करे छे, पण परभवमां आकरां नारकीनां दुःख  
आवशे तेवारे एकलोज भोगवशे ॥ ११ ॥ जीव आंधलो नथी,  
पण ममताये करी नास्तिक पदार्थने खरा करी माने छे, तेहने  
मिथ्याद्विष्ट अंध कहीये, केमके तेनी चर्मचक्षु छे, तो पण ते  
चक्षुए करी आत्मिक अर्थने नथी देखतो, माटे एने देखतो पण  
आंधलोज जाणवो; अने जे जातिअंध छे पण ज्ञानीने संयोगे  
आत्मार्थने जुए छे, माटे ए वे प्रकारना अंधमां घणो  
अंतर छे ॥ १२ ॥

प्राणाननित्यताध्यानात् प्रेमभूम्ना ततोऽधिकां ॥

प्राणापहां प्रियां मत्वा मोदते ममतावशः ॥ १३ ॥

कुंदान्यस्थीनि दशानान् सुखं श्लेषमगृहं विधुम् ॥

मांसग्रंथी कुचौ कुंभौ हेम्नो वेत्ति ममत्ववान् ॥ १४ ॥

**अर्थ—**राग दिशाये करीने प्राणने अनित्य माने पण  
प्राणनी लेनारी जे स्त्री तेने ममताने वश थइ बछुभ जाणीने हर्ष  
पासे छे ॥ १३ ॥ ते स्त्रीना दांत यद्यपि हाडकानां छे, तो पण

तेने कुदफुलनी कलिना जेगा जाणे, अने श्लेष्म जे लाळ तेणे  
करी भरेलुं मुख होय तेने चढ़तुल्य वसाणे छे, अने स्तन मासना  
गठा छे तेने सोनाना कलश ममान लेरे छे, ए वातो सर्व  
ममत्वने लीध थाय छे ॥ १४ ॥

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत् क्रियायामन्यदेव च ॥  
यस्यास्तामपि लोलाक्षी साध्वी वेत्ति ममत्ववान् ॥ १५ ॥  
या रोपयत्यकार्यजपि रागिण प्राणसशये ॥  
दुर्उत्ता च्छ्री ममत्वाधस्ता मुग्धामेव मन्यते ॥ १६ ॥

**अर्थ—** वली ते स्त्री केनी छे ? जेना मनमा कोइक होय  
अने नचनमा वली वीजो कोटक होय, अने भोग तो वली कोइ  
ग्रीनानी साथज कर एपी छे, तेने वैरागी पुरुष कह छे जे ए  
स्त्रीयकी सर्व सयुं एटले स्त्रीने सर्वया गुडी गणे छे, पण जे  
प्राणी ममताप्रत छे, ते तो एपी चचल नेत्रभाली स्त्रीने सती  
माने छे ॥ ५ ॥ स्त्री पोताना गगी धणीने मरण थाय एता  
काम भलाये, अने त पण समत्व आधलो पुरुष ते कार्य दुटाड-  
पीटाडने कर, वली स्त्री व्यभिचारिणी होय तो पण तेने भोली  
करी माने, ते उपर एक दृष्टात छे. “ लाली कहती नापडी  
अपला रेलमरेल, ज्याथी लाव्यो लाकडी त्यानी त्या  
जह मेल ” ॥ १६ ॥

चर्माच्छादितमासास्त्रियचिण्मृत्रपिठरीप्यपि ॥

उनितासु प्रियत्व यत्तन्ममत्व विजूभित ॥ १७ ॥  
लालयन वालक तातेल्येन ब्रूते ममत्ववान् ॥

वेत्ति च श्लेष्मणा पृणामगुलीममृताचिना ॥ १८ ॥

अर्थ—ममत्वनी चेष्टा ते धूललीला सरखी छे, तेने वश थड़ रह्यो एवो जे पुरुप ते हाड, मांस, विष्टा, मूत्र तथा चर्मथी मढेली हांडली जेवी स्त्री उपर प्रेम करे छे; ममत्व धरे छे ॥ १७ ॥ वली ममत्वे करीने पोताना पुत्रने रमाडे ते वस्ते तेने वाप वाप करी कहे, अने ते वालकना हाथनी आंगलीयो श्लेष्मथी भरी होय तेने अमृत समान जाणे ॥ १८ ॥

पंकार्द्धमपि निःशंका सुतमंकान्न सुंचति ॥

तद्मेध्येऽपि मध्यत्वं जानात्यंवा ममत्वतः ॥ १९ ॥

मातापित्रादिसंबंधोऽनियतोऽपि ममत्वतः ॥

दृढभूमिभ्रमचतां नैषत्येनावभासते ॥ २० ॥

अर्थ—मोहथकी वालकनी माता पोताना वालकने कादवे भयो होय, तो पण निःशंकपणे खोलामांथी मूकती नथी. घली विष्टाये अशुचि होय, तो पण ते वालकने तेनी माता मोहना वशथकी पवित्र गणे छे ॥ १९ ॥ जेम धरती शाश्वत दृढ छे, पण धतुराना फल भक्षण करनार प्राणीने फेर आवे छे, त्यारे तेने धरती फरती जणाय छे तेम मातापितादिकनो संबंध संसारमां अनादिनो शाश्वत छे; पण मोहवडे मुङ्गाणो प्राणी एम कहे छे जै, माता मरी गइ; हवे केम थशे? शी रीते चालशे? ॥ २० ॥

भिन्नाः प्रत्येकमात्मानो विभिन्नाः पुङ्गला अपि ॥

शून्यसंसर्ग इत्येवं यः पश्यति स पश्यति ॥ २१ ॥

अहंताममते स्वत्वस्वीयत्वभ्रमहेतुके ॥

भेदज्ञानात्पलायेते रज्जुज्ञानादिवाहिभिः ॥ २२ ॥

अर्थ—तेम प्रत्येक जीव पण जुदा जुदा छे, अने त कड गतिथी आव्या अने कड गतिये जशे ? तेम पुढूगल पण जुदा छे, तथा शरीरनो सग पण शून्य छे, ए रीते जे देखे छे, तेने देखतो जाणगो ॥ २१ ॥ जेम दोरटानु ज्ञान यसे सर्वनी भीति नाश पासे छे, तेम हु जने स्त्री बाटिक माहरी छे एनो ममन्य याय छे, ते अमहेतु छे. ते अम ज्ञानजरे जोगाथी नाश पासे ॥ २२ ॥

किमेतदिति जिज्ञासा तत्त्वाभिज्ञानसमुच्ची ॥  
 व्यासगमेव नोत्यातु दत्ते क ममतास्यिति ॥ २३ ॥  
 प्रियार्थिनः प्रियाप्राप्ति विना कापि यथा रतिः ॥  
 न तथा तत्त्वजिज्ञासोस्तत्त्वप्राप्ति विना कचित् ॥ २४ ॥

अर्थ—ए ससाग्नो समध शु छे ? एम जात्मतच्चने सन्मुख ओलखगानी इच्छा थड एटले ममता तरत नाश पासे आत्मनानी आगल ममता किहा रहे ? ॥ २३ ॥ जेम कामी पुरुष स्त्रीनो अर्धा थयो, ते स्त्री पाम्या मिना कोइ पण टेफाणे रति न पासे, तेम तत्त्वनो जाण पुरुष पण तत्त्व पाम्या मिना क्याय रति न पासे ॥ २४ ॥

अत एव हि जिज्ञासा विष्कम्भति ममत्यधीः ॥  
 विचित्राभिनयाप्नातः सभ्रात डब लक्ष्यते ॥ २५ ॥  
 धृतो योगो न ममता हता न ममताऽऽहता ॥  
 न च जिज्ञासित तत्त्व गत जन्म निरर्थकम् ॥ २६ ॥  
 जिज्ञासा च विषेकश्च ममतानाडकावुभो ॥  
 अनस्ताभ्या निश्चीयादेनामभ्यात्मैरिणि ॥ २७ ॥

अर्थ—ए कारण माटे तत्त्व जाणवानी इच्छाए करी  
 ममतानी बुद्धि जेणे दवावी छे ते प्राणी विचित्र प्रकारनी नय-  
 गम, भंग, रचनाये व्याप्यो थको संसारना सर्व पदार्थने संभ्रांत  
 जाणे, एटले इंद्रजालवत् जाणे ॥ २५ ॥ जेणे जोग पण धर्यो  
 नहीं, अने ममता पण हणी नही, तथा समता पण आदरी नही,  
 बली शास्त्र जाणवानी इच्छा पण न करी, तेनो नरजन्म निष्कल  
 गयो, एम जाणबुं ॥ २६ ॥ एक जाणवानी इच्छा अने वीजो विवेक  
 ए वे ममताने नाश करनारा छे. ते माटे ए वेहुथकी ममतानो  
 निग्रह करवो कारण के ममता ते अध्यात्मनी दुःखन छे ॥ २७ ॥

इति ममता त्यागाधिकारः अष्टम समाप्तः ॥



## समताधिकारः

त्यक्ताया ममताया च ममता प्रयते स्वत् ॥

स्फटिके गलितोपाधौ यथा निर्मलतागुणः ॥ १ ॥

प्रियाप्रियत्वयोर्यर्थव्यवहारस्य कल्पना ॥

निश्चयात्तद् व्युदासेन स्तैमित्य समतोच्यते ॥ २ ॥

अर्थ—ह्ये ममता आपनानो अधिकार कहे छे जेम स्फटिकने यिष उपाधिपणु टले, तेगारे निर्मलतापणु वधे छे, तेम जेवारे ममतानो त्याग थाय तेगारे पोतानी मेलेज समता मिस्तरे ॥ १ ॥ समारने यिषे पोताने अर्थे कोइ काम पडे तेगारे एम जाणे जे आ माहरो नहालो छे अने आ दुश्भन छे, पण ए सर्व व्यवहार कल्पना छे, निश्चयथकी तो ते व्यवहारनाशे करी मध्यस्थपणु पासे, तेगारेज समतापत कहेनाय ॥ २ ॥

तेष्वेव द्विष्टत् पुस्स्तेष्वेवार्थं पुरज्यत् ॥

निश्चयात्किञ्चिदिष्ट वाऽनिष्ट वा नैव विश्वते ॥ ३ ॥

एकस्य विषयो य स्यात्स्याभिप्रायेण पुष्टिः ॥

अन्यस्य द्वेष्यतामेति स एव मतिभेदत ॥ ४ ॥

अर्थ—व्यवहार कल्पनामालो तो जेने यिष छेय लावे तेनेज यिष पोताना अर्थ माघने फरी राजी याय, पण जो निश्चयथकी यिचारे तो एमा काढ टट नयी, तेम अनिष्ट पण नयी ॥ ३ ॥ एक यिषय जे एक कार्य छे ते एक जणने पोतानी रुचिये पुष्टकारी छे अने नीनाने तवीन छेय उपजे छे ए मति-कल्पनाना मेद छे एम जाणु ॥ ४ ॥

विकल्पकल्पतं तस्माद्द्रव्यमेतत्र तात्त्विकं ॥

विकल्पोपरमे तस्य द्वित्वादिवदुपक्षयः ॥ ५ ॥  
स्वप्रयोजनसंसिद्धिः स्वायत्ता भासते यदा ॥  
वहिर्येषु संकल्पस्तुत्यानं तदा हतं ॥ ६ ॥

अर्थ—इष्ट अनिष्ट ए विकल्पनी कल्पनाथकी छे, ए बेनेज रागद्वेष जाणवा. पण एमां काँइ तत्त्व नथी. जो मनथी विकल्प जाय तो रागद्वेष ए बेहु दूर थाय ॥ ५ ॥ पोताना प्रयोजननी सिद्धि जेवारें पोताने स्वाधीन थाय, तेवारें बाहरना अर्थसंकल्पनो उठाव नाश पासे ॥ ६ ॥

लब्धे स्वभावे कंठस्यस्वर्णन्यायाद्भ्रमक्षये ॥

रागद्वेषानुपस्थाने समता स्यादनाहता ॥ ७ ॥  
जगज्जीवेषु नो भाति द्वैविध्यं कर्मनिर्मितं ॥

यदा शुद्धनयस्यित्या तदा साम्यमनाहतं ॥ ८ ॥

अर्थ—जेम कंठ उपर रहेलुं सुर्वण साक्षात् देखाय छे तेम स्वाभाविक गुण पासे थके विभाविक अझणा दूर जाय, तेवारे रागद्वेष ऊठी दूर थाय अने समता विशेषे वधे ॥ ७ ॥ जगतना जीवने विषे कर्मनुं विचित्रपणुं छे, साटे ते विभावपणुं सारुं नरसुं कहेवाली रीते जेवारे न भासे तेवारे शुद्धनयनमां रहो थको प्रबल समताने पासे ॥ ८ ॥

स्वगुणेभ्योऽपि कौटस्या देकत्वाध्यवसायतः ॥

आत्मारामं मनो यस्य तस्य साम्यमनुत्तरं ॥ ९ ॥  
समतापरिपाकेस्याद्विषय ग्रहशून्यता ॥  
यस्या विशद्योगानां वासीचंदनतुल्यता ॥ १० ॥

अर्थ—पोताना गुणयकी पोतानो आत्मा सार्थी करीने  
एक शुद्ध अध्यमायथकी आत्माने पिषे जेनु मन रमे छे, तेनी  
समता अनुत्तर कहिये ॥ ९ ॥ एम जेने पाकी समता वड तेनु  
प्रियम्बद्ध घर सूनु थयु, एम जे मुनिने निर्मल समता योग प्रगट्यो,  
ते मुनिने कुठारे रुग्नी फाइ उदे वयसा चढने करी कोइ पूजे ते  
भेहु तुल्य छे ॥ १० ॥

कि स्तुमः समता साधौ या स्वार्थप्रगुणीकृता ॥

वेराणि नित्यवैराणामपि हृत्युपतस्तुपाम् ॥ ११ ॥

कि दानेन तपोभिर्वा यमेश्व नियमैश्व र्हिं ॥

एकव समता सेव्या तरी, ससारवारिधो ॥ १२ ॥

अर्थ—एवा साधुनी समताना शु वखाण करिये ? जेणे  
पाताना आत्मानी भिडि कल्पाने समता आदगी, एहा मुनि त  
समताल्प घरमा रहेता थमा आ भरना तथा आगला कडक भग  
ते सर्व भरना वेरभाग्ने टाली नारेये छे, जेम नित्य पासे वमता  
यका वृत्तग अने माजारी के० बिलाटी तेमना वेर पण शुभी जाय  
तद्दनी पेर जाणु ॥ ११ ॥ रुपटी वेश धारण झग्याथी शु वाय ?  
तथा घणी तपम्याय पण शु वाय ? बली मीन धारी अतीतनी  
पेर इट्रियदग्न कीधे शु वाय ? अने ग्रत धारणकर पण शु वाय ?  
मात्र एक समता जे समाल्प समुद्र तमामा नीक्का जेरी छे, तेनु-  
ज सेवन करु तेहि ज भ्रेष्ट छे ॥ १२ ॥

द्वेर स्वर्गसुग्र मुच्छिपदरी मा दरीयमी ॥

मन, मनिद्वित दृष्ट स्पष्ट तु समतासुग्र ॥ १३ ॥

दउं स्मरयिष शुण्येत प्रोभताप थय भ्रजेत ॥

आँहत्यमनाश, स्यात्ममतामृतमज्जनात ॥ १४ ॥

अर्थ—देवलोकनां सुख तो दूर हे. वली मोक्ष पदवी ते तो मोटी हे, अने भवस्थितिने हाथ हे, तेवारे मननी पासे प्रगटपणे देखीयें एवी समतानुं सुख ते शुं खोडुं हे ? ॥ १३ ॥ यमतारूप अमृतकुण्डमां स्नान करवाना प्रभावशी आंखयकी कंद-पूर्ण दर्पचुं विष सोपाह जाय हे; क्रोधलूप ताप नाश पासे हे; उद्धताह रूपी मेल ते पण दूर थाय हे. ॥ १४ ॥

जरामरणदावाग्रिज्वलिने भवकानने ॥

सुखाय समतैकैव पीयुपवनवृष्टिवत् ॥ १५ ॥  
आश्रित्य समतामेका निर्वृता भरताद्यः ॥  
न हि कष्ट मनुष्ठानमभूत्तेषां तु किंचन ॥ १६ ॥

अर्थ—जन्म, जरा, मरणरूप दावानले करी वलतुं एवुं संसाररूप वन तेमां समतानुं जे सुख हे ते अमृतना वर-साद सरखुं जाणवुं ॥ १५ ॥ चित्रशाली मध्ये एकज समताने अवलंघता भरतराजा आदि आठ पाट केवल पामीने सिढ थया पण तेमने कष्टक्रिया कांइ पण करवी पडी नही, एहवी ए समता हे ॥ १६ ॥

अर्गला नरकद्वारे मोक्षमार्गस्य दीपिका ॥

समता गुणरत्नानां संग्रहे रोहणावनिः ॥ १७ ॥  
मोहाच्छादितनेत्राणामात्मस्तपदश्यतां ॥  
दिव्यांजनशालाकैव समता दोषनाशकृत् ॥ १८ ॥

अर्थ—वली समता ते नरकने वारणे भोगल जेवी हे, अने मोक्षमार्गनी दीवि हे. वली गुणरूप रत्ननो संग्रह करवाने रोहणाचल पर्वतनी भूमिका सरिखी हे ॥ १७ ॥ जेसां नेत्र

मोहरडे ढकाया छे अने जे पोताना स्वरूपने जोड शक्ता नथी,  
तेने दिव्य अजन आजगाने समता ते शलाकास्प छे, अने अज्ञा-  
नना पडलने देदनारी छे ॥ १८ ॥

क्षण चेत, समाकृष्य समता यादि सेव्यते ॥  
स्थात्तदा सुखमप्यस्य यद्वक्तु नैव पार्यते ॥ १९ ॥  
कुमारी न यथा वेत्ति सुख दयितभोगज ॥  
न जानाति तथा लोको योगिना समतासुख ॥ २० ॥

अर्थ—जे प्राणी एक क्षणमात्र मनने सेचीने समताने सेवे,  
ते प्राणीने एहबु सुख प्रगटे, जेहनो मुखे कहता यका पार  
आवे नही ॥ १९ ॥ जेम कुमारिका भरतारना सुखने जाणती  
नथी तेम लोको पण मुनिराजनी समताना सुखने जाणता  
नयी ॥ २० ॥

नतिस्तुत्यादिकाश साशारस्तीत्र स्वर्मभित् ॥  
समतावर्भगुप्ताना नार्त्तिकृत्सोऽपि जायते ॥ २१ ॥  
प्रचितान्यपि कर्माणि जन्मना कोटिकोटिभिः ॥  
तमासीच प्रभा भानो क्षिणोति समता क्षणात् ॥ २२ ॥

अर्थ—जेणे समतानु घरतर पहर्यु छे तेने नमस्कार,  
स्तुति, पूजा, लाभ, पद्मव्यनी इच्छादिस्प जे पोतानान मर्मने  
लागनारा एहना जे तीक्ष्ण नाणा त पीडा करी शक्ता  
नयी ॥ २१ ॥ जेम स्वर्य किणना प्रकाश्यथी जघसार नाश  
पामे छे तेम कोटि कोटि मरना प्राणीना निनिटमचित जे  
पापकर्म छे ते समतामढे एक क्षणमा नाश पाम छे ॥ २२ ॥

अन्यलिंगादिसिद्धानामाधारः समर्तव हि ॥  
 रत्नत्रयफलप्राप्तेर्यथास्याद्ग्रावज्जनता ॥ २३ ॥  
 ज्ञानसाफल्यमेषैव नयस्यानावतारिणः ॥  
 चंदनं वहिनेव स्थात् कुण्डहेण तु भस्म तत् ॥ २४ ॥

अर्थ—जे अन्यलिंगी सिद्ध थया ते पण द्रव्यथी मोक्ष-फल साधता थका रत्नत्रयना फलनी प्राप्तिवडे भावथी जैनपणुं पाम्याः माटे ते अन्यलिंगीओने पण समता ते एक आधारभूत हती ॥ २३ ॥ जो नयस्थानके उत्तारी जोड़ियें तो, ए समताज ज्ञाननुं फल छे; ने जेम ज्ञानवडे भवताप शमे छे. तेम समतारूप चंदने करी भवताप शमी जाय छे; पण कुण्डह के० कदाग्रह अज्ञानरूप अग्रिवडे तो समतारूप चंदन बली भस्म थाय छे ॥२४॥

चारित्रपुरुषप्राणाः समतारूप्या गता यदि ॥  
 जनानुधावनावेशस्तदा तन्मरणोत्सवः ॥ २५ ॥  
 संत्यज्य समतामेकां स्याद्वत्कष्टमनुष्ठितं ॥  
 तदीपिसतकरं नैव वीजसुसमिवोषरे ॥ २६ ॥

अर्थ—आ संसाररूप गामने विषे सर्वे लोक क्रयविक्रय करता दोडादोड करे छे, ते शुं छे? ते कहे छे, के जैवारे चारित्ररूपी पुरुष मरण पाम्या, तेवारें समतारूपी प्राण पण जता रह्या. पछी तेना मृत व्यार्थनो उत्सव, पाथरणा, स्नानसूतक वगेरे करवाने जाणे ऐ लोको दोडादोड करे छे एम समजबुं ॥ २५ ॥ जेम उखर क्षेत्रमां वीज वाव्युं ते कष्टे करीने पण फले नही, तेम एक समताने छोड़ी जे प्राणी कष्ट क्रिया करे छे तेने रुँदूं फल आगल मलतुं नथी ॥ २६ ॥

उपायः समतैवेका मुक्तेरन्यः क्रियाभरः ॥  
 तत्तत्पुरुषभेदेन तस्या एव प्रसिद्धये ॥ २७ ॥  
 दिङ्मात्रदर्शने शास्त्रव्यापारं स्यान्न दूरगः ॥  
 अस्याः स्वानुभवं पारं सामर्थ्यार्थोऽवगाहते ॥ २८ ॥

अर्थ—मुक्तिनो उपाय तो एक समता छे नारी क्रिया कष्ट सर्व आड्चर छे, ते पुरुषने भेदेकरी एटले तप, जप सर्व समतानी प्रसिद्धि छे पुस्त्र भेद ते गृहस्थ अने मुनिने शीले छे, एटले क्रिया करवामा गृहस्थ तथा मुनिनो व्यग्रहार जुदो छे, पण ते वेउनी क्रिया समताये वराणी एवी शास्त्रनी आज्ञा छे ॥ २७ ॥ शास्त्रना उपदेश तो जेम कोड आगलीमडे मार्ग बतावे, पण पोते काड साथे आवे नही, तेम दिशिमात्रने नताने एमा छे, पण जे शास्त्र माभलीने पोताना अनुभवमा लारी पोताने सामर्थ्यं करी पथ अग्रगाहे, तेज भवाटबीनो पार पामे ॥ २८ ॥

परस्मात् परमेषा यन्निगृह तत्त्वमात्मन ॥  
 तदध्यात्मप्रसादेन कार्याऽस्यामेव निर्भर ॥ २९ ॥

अर्थ—परपुद्लादिक वस्तु ते आत्मानी नयी, अने देखायी आत्मा परम पवित्र छे, आत्माने पिये आत्मतत्त्व गुप्त छे, माटे अध्यात्मने प्रमादे करी समताने पिये हर्ष उद्घास करवो ॥ २९ ॥

॥ इति समताधिकारं नगमं समाप्तं ॥



## सदनुष्टानाधिकारः

परिश्रुतमनुष्टानं जायते समतान्वयात् ॥

कतकक्षांदसंकांतेः कल्पं मलिलं यथा ॥ ? ॥

विषं गरलाऽननुष्टानं तज्जेतुरमृतं परं ॥

गुरुसेवायनुष्टानमिति पञ्चविधं जगुः ॥ २ ॥

**अर्थः**—जेम कतकफलना चूर्णने योगं दोहलुं पाणी निर्मल थाय तेम समताना योगर्थी शुद्ध अनुष्टान प्रगट थाय छे ॥ १ ॥ विषानुष्टान, गरलानुष्टान, अन्योन्यानुष्टान, तज्जेतुरनुष्टान ने अमृतानुष्टान ए पांच अनुष्टान गुरुसेवादिक करणीमां कहां छे ॥ २ ॥

आहारोपधिपूजार्द्धिप्राभृत्याशंसया कृतं ॥

शीघ्रं सच्चित्तहन्तृत्वाद्विपानुष्टानमुच्यते ॥ ३ ॥

स्थावरं जंगमं चापि तत्क्षणं भक्षितं विषं ॥

यथा हंति तथेदं सच्चित्तमैहिकभोगतः ॥ ४ ॥

**अर्थः**—मिष्टान भोजननी लालचे, वस्त्रनी लालचे, पूजानी लालचे, दोलतनी इच्छाये, जे तप जप कर्त्रिया करे ते क्रिया पोताना शुभ चित्तनी हणनारी छे. एनुं नाम विषअनुष्टान जाणवुं ॥ ३ ॥ स्थावर विष ते सोमल जाणवुं अने जंगम विष सर्पादिकनुं जाणवुं; ए वेउमांथी एक विष खाधाथी तरत मरे छे तेम भोगाभिलाषे क्रिया करवी ते शुभ चित्तने हणे छे. ॥ ४ ॥

दिव्यभोगाभिलाषेण कालांतरपरिक्षयात् ॥

स्वादष्टफलसंपूर्णेरानुष्टानमुच्यते ॥ ५ ॥

यथा कुद्रव्यसयोगजनित गरसज्जितम् ॥

विष कालातरे हति तयेदभावि तत्त्वतः ॥ ५ ॥

अर्थ—जे देवेद्रादिकना सुख परभै पामगानी इच्छा करीने तपस्या करे ते प्राणी कालातरे नरकगति पामे, कष्ट करीने अणदीठा फलनी बाढ़छा करे तेने गरलानुष्टान कहेबु ॥ ५ ॥ जेम नगडी चृण प्रमुख निर्वल द्रव्यने सयोगे प्रगट यतु विष ते गरल-नामा विष कहियें, ते घणा दिवम कष्ट पमाडी मारे छे, तेम ए पण तत्त्वथी नर्क फलनी प्राप्ति करे छे ॥ ६ ॥

निषेधायानयोरेव विचित्रानर्थदायिनो ॥

सर्वत्रैवानिदानत्वं जिनेद्रेः प्रतिपादित ॥ ७ ॥

प्रणिधानायभावेन कम्मानिध्यवसायिनः ॥

समृच्छित्तमप्रवृत्ताभमननुष्ठानसुच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—अनेक प्रकारे महा अनर्थ उपजावे एवा ए पूर्वोक्त वे अनुष्टाननो निषेध करयाने समस्त तीर्थकरे नियाणु वर्जनानु कह्यु छे ॥ ७ ॥ प्रणिधानादिकने अभावे कर्म जे क्रिया तेमा अध्यवसाय रहित के० शून्यपणे समृच्छिमनी परे शून्य भननी प्रवृत्तिये अथवा देखादेखीये जे क्रिया करे ते अन्योन्यानुष्टान कहिये ॥ ८ ॥

ओघसज्जात्र सामान्यज्ञानस्पा नियधन ॥

लोकसज्जा च निर्दापसूत्रमार्गानपेक्षिणी ॥ ९ ॥

न लोक नापि सूत्र नो गुरुगाचमपेक्षते ॥

अनभ्यवसित फिचित्कुरुते चोपसज्जया ॥ १० ॥

अर्थ—इहा सामान्य प्रकार ज्ञानस्पनु कारण न गरेपे, ते ओघमना प्रगाहस्य कहिये, तेमी निर्दोष मृतना मार्गनी अपेक्षा

विना लोक देखादेखीये क्रिया करे अथवा उपयोगशून्य थका जे  
क्रिया करे ते अन्योन्यानुष्टान हो ॥ ९ ॥ एटले लोकनी रीत  
विना अने छूतनी तथा गुरुना वचननी अपेक्षा विना उपयोग-  
शून्यपणे जे काँड़ि करनु तेनु नाम ओवसंज्ञा हो ॥ १० ॥

शृङ्खस्यान्वेषणे तीर्थोच्छेदः स्यादितिवादिनां ॥

लोकाचारादरश्रद्धा लोकसंज्ञेति गीयते ॥ ११ ॥  
शिक्षितादिपदोपेतमध्यावश्यकमुच्यते ॥

द्रव्यतो भावनिर्मुक्तमशुङ्खस्य तु का कथा ? ॥ १२ ॥

**अर्थः**—जो अत्यंत शुङ्ख मार्ग खोलना जड़ए, तो तीर्थनो  
उच्छेद थाय, माटे लोकना आचार उपर आदर-श्रद्धा करवी,  
जेम चाले तेम चालवा दीजे, एहवां वचन खोलता जे लौकिक  
आचारे प्रवर्त्ते तेनु नाम लोकसंज्ञा हो ॥ ११ ॥ अने शिक्षा-  
ग्रहण, आसेवन तथा पदसंपदाये सहित भावशून्यपणे जे आव-  
श्यक करे ते पण द्रव्य आवश्यक कहुँ हो, तो जे अशुङ्खज करे  
तेनी तो शी बात कहिये ? ॥ १२ ॥

तीर्थोच्छेदभिया हंताविशुङ्खस्यैव चादरे ॥

सूत्रक्रियाविलोपः स्याद्वतानुगतिकत्वतः ॥ १३ ॥  
धर्मोच्यतेन कर्त्तव्यं कृतं वहुभिरंव चेत् ॥

तदा मिथ्यादृशां धर्मो न त्याज्यः स्यात्कदाचन ॥ १४ ॥

**अर्थः**—तीर्थनो उच्छेद थाय, तेना भयथी अशुङ्ख  
क्रियाने विषे गाढ़ीया प्रवाहनी पेरे गतानुगतिकपणे आदर  
करतां काँड़ि परमार्थ जाणे नहीं अने ज्ञानक्रियानो नाश करे  
॥ १३ ॥ वली धर्मना अर्थी थड़ने एम कहेशो के जे धर्मा जन

करे ते आपणे पण कर्बु, तो मिध्यात्वधर्मना घणा सेवनार छे,  
माटे ते पण कोड काले छडाशे नहीं एम ठर्यु ॥ १४ ॥

तस्माद्गतानुगत्या यत् क्रियते सूत्रवर्जित ॥

ओघतो लोकतो वा तदननुष्ठानमेव हि ॥ १५ ॥

अकामनिर्जरागत्व कायहेशादिदोटितम् ॥

सकामनिर्जरा तु स्यात् सोपयोगप्रवृत्तितः ॥ १६ ॥

अर्थः—माटे सूत्रनी शैली रहितपणे गतानुगतिकपणे  
ओघमजाये अथगा लोकसजाये जे कर्बु तेने अन्योन्यानुष्टान  
कहेहु ॥ १५ ॥ जे अनानपणे कायहेश करे तेने अकामनिर्जरा  
कहेनी, अने उपयोग सहित ज्ञानक्रिया करयी तेनु नाम सकाम-  
निर्जरा छे ॥ १६ ॥

सदनुष्ठानरागेण तद्देतुर्मार्गिगामिना ॥

एतच्च चरमादर्त्तं ऽनोपयोगादेविना भवेत् ॥ १७ ॥

धर्मयौवनकालोऽय भववालदशापरा ॥

अत्र स्यात्सक्रियारागोऽन्यत्र चासत्क्रियादर ॥ १८ ॥

अर्थः—मार्गानुमारीपुरुष शुद्ध क्रियानुष्टानने रागे करी  
जे करे ते तद्देतुअनुष्टान कहेनाय, ते जेगारे छेलु पुद्गल परापर्त्त  
रहे, तेगार जे क्रिया करे ते अनउपयोगे न करे माटे ए अनुष्टान  
पण तेगारेज होय ॥ १७ ॥ छेलु पुद्गल परापर्त्त जेगारे तद्देतु  
अनुष्टान प्रगटे तेगारे ए धर्मनो यौवनकाल प्रगट्यो, अने ससा-  
रमा वालशा हत्ती ते मटी गह एम जाणहु ए अनुष्टाने शुद्ध  
क्रियानो राग उपजे छे, अने पूर्णना त्रण अनुष्टाने अशुद्ध क्रियानो  
आदर उपजे छे ॥ १८ ॥

भोगरागाद् यथा यूनो वालक्रीडाऽखिला ह्रिये ॥

धर्मयूनस्तथा धर्मरागेणासत्क्रियाह्रिये ॥ १९ ॥

चतुर्थं चरमावत्ते तस्माद्धर्मानुरागतः ॥

अनुष्ठानं विनिर्दिष्टं वीजादिकमसंगतं ॥ २० ॥

अर्थ—जेम युवान् पुरुष भोगनो विलासी थाय छे ने वालक्रीडाथी लजवाय छे, तेम धर्म यौवनकालबंत पुरुष धर्मना रागे करी अशुद्ध क्रियाथी लजवाय छे ॥ १९ ॥ ते माटे ते धर्मना अनुरागथी चरम पुदल परावर्तेज तद्वेतु नासे चोथुं अनुष्ठान कहुं छे, पण वीजादिक जे समकित ते तो असंग कें अप्राप्त छे ॥ २० ॥

वीजं चेह जनान् दृष्ट्वा शुद्धानुष्ठानकारिणः ॥

वहुमानप्रशंसाभ्यां चिकीषा शुद्धगोचरा ॥ २१ ॥  
तस्या एवानुवंधश्चाकलंकः कीर्त्यते ५ङ्कुरः ॥

तद्वेत्वन्वेषणा चित्रा स्कंधकल्पा च वर्णितां ॥ २२ ॥

अर्थः—इहां समकितरूप वीज तो तेवारे थाय के जेवारे शुद्ध क्रिया करता जीवोने देखीने वहुमान प्रशंसा करे, अने आगमविधिरागे पोते पण ज्ञाने शुद्ध विधिगोचर होय तेवारे समकित उपजे छे ॥ २१ ॥ ए तद्वेतुअनुष्ठाननो अनुवंध जे शुद्ध परिणमन ते कलंक रहित अंकुर कहिये, अने तद्वेतुअनुष्ठाननी खोल करवी ते नाना प्रकारनो स्कंध कहिये ॥ २२ ॥

प्रवृत्तिस्तेषु चित्रा च पत्रादिसदृशी मता ॥

पुष्पं च गुरुयोगादिहेतुसंपत्तिलक्षणं ॥ २३ ॥

भावधर्मस्य संपत्तिर्या च सदेशनादिना ॥

फलं तदत्र विज्ञेयं नियमान्मोक्षसाधकं ॥ २४ ॥

अर्थ—ते मध्ये प्रर्त्तिवु ते रूप निचिर प्रकारना पान जाणना, अने सद्गुरुना योगदे स्वर्गमा सुखसपदा पामवी ते रूप फूल जाणना ॥ २३ ॥ जेवारे गुरु पासे देशना साभळीने भावधर्मरूप सपदा पामे ते फल कहिये, ते फल मोक्ष-साधनरूप छे एम जाणवु ॥ २४ ॥

सहजो भावधर्म हि शुद्धश्वदनगधवत् ॥

एतद्भैर्मनुष्ठानममृत सप्रचक्षयते ॥ २५ ॥

जैनीमाझा पुरस्कृत्य प्रवृत्त चित्तशुद्धित ॥

मर्वेगर्भमत्यतममृत तद्विदो विदु ॥ २६ ॥

अर्थ—सहज स्वाभाविक जे भावधर्म छे ते तो चदननी सुगव समान छे ते सहित जे अनुष्टान किया कर्त्तवी तेनु नाम अमृतानुष्टान छे ॥ २५ ॥ प्रभुनी आश्वापदे मनशुद्धिये प्रपत्ते अने अत्यतपणे सर्वेगमुणे सहित होय तेने गणधरादिक अमृतानुष्टान कहे छे ॥ २६ ॥

शास्त्रार्थालोचन सम्यक् प्रणिधान च कर्मणि ॥

कालायगाविपर्यासोऽमृतानुष्टानलक्षण ॥ २७ ॥

द्वय हि सदनुष्टान व्रथमत्रामदेव च ॥

तत्रापि चरम श्रेष्ठ मोहोयविपनाशनात् ॥ २८ ॥

अर्थ—भली गीते शास्त्रना अर्ध मिचारे, क्रिया मध्ये गीर्य उछास घरे, पचमफालना दोप न गणे, अथवा जे काले जे उचित क्रिया होय ते क्रिया कर, ए लक्षण अमृतानुष्टानना जाणना ॥ २७ ॥ ए पाच अनुष्टानमा छेत्रा वे अनुष्टान ए कडा छे अने प्रथमना त्रण अनुष्टान ते रुडा नवी, तेमा पण सर्वेया

थ्रेषु तो अमृतानुष्ठान जाणवुं; केमके मोह के० अज्ञान तेनुं आकरुं  
जे विष ते ए अनुष्ठानवडे नाश पासे छे ॥ २८ ॥

आदरः करणे प्रीतिरविग्रसंपदागमः ॥

जिज्ञासात् ज्ञासेवा च सद्गुष्ठानलक्षणं ॥ २९ ॥

भेदैर्भिन्नं भवेदिच्छाप्रवृत्तिस्थिरसिद्धिभिः ॥

चतुर्विधमिदं मोक्षयोजनाद्योगसंज्ञितं ॥ ३० ॥

अर्थ—क्रियाये आदर करतां राग धरे, तथा आगमने  
अति मोटी संपदानुं माने, वली जाणवानी इच्छा करे, जाणनो  
संग करे, ए शुद्ध क्रियानां लक्षण छे ॥ २९ ॥ तेना पण जुदा  
जुदा भेद छे, १ इच्छा, २ प्रवृत्ति, ३ स्थिरता, ४ सिद्धियोग. ए  
चार योग मोक्षने जोडे ( मोक्ष आपे ) माटे योग कहिये ॥ ३० ॥

इच्छा तत्वत्कथा प्रीतिर्युक्ता विपरिणामिनी ॥

प्रवृत्तिः पालनं सम्यक् सर्वत्रोपसमान्वितं ॥ ३१ ॥

सत्कथयोपशमोत्कर्पदतिचारादिचिंतया ॥

रहितं तु स्थिरं सिद्धिः परेषामर्थसाधकं ॥ ३२ ॥

अर्थ—जे गुरुनो उपदेश सांभली गुरु उपर अने कथा  
उपर परम प्रीति धरे—गुण परिणमे तेने पहेलो इच्छायोग कहियें.  
फछी गुरुना कहा प्रमाणे समताये सहित व्रत पाले, क्रियाये  
सहित प्रवर्त्त, ते त्रीजो प्रवृत्तियोग कहिये ॥ ३१ ॥ जे रुडा  
धयोपशमना उत्कर्पथी अतिचार न लगाडे अने मनस्थिरपणे  
प्रवर्त्त ए त्रीजो स्थिरयोग कहो, अने निरातिचार शुद्ध क्रियामां  
यीजा जीवोने भेलवीने तेनो पण अर्थ सधावे ते चोथो सिद्धि-  
योग जाणवो ॥ ३२ ॥

भेदा हमे विचित्राः स्यु. क्षयोपशमभेदतः ॥

अद्वाप्रीत्यादियोगेन भव्याना मार्गगामिनाम् ॥३३॥  
अनुकूपा च निर्वेदः सवेगः प्रशमस्तथा ॥

एतेषामनुभावाः स्युरिच्छादीना यथाकूमम् ॥३४॥

अर्थः—ए इच्छादिक योगना नली विचित्र भेद छे, ते क्षयोपशम भावना भेदथी छे ते अद्वा प्रीति प्रमुख योगे करीने मुक्तिमार्ग पामनार भव्यजीवने होय ॥ ३३ ॥ १ रुणा, २ वैराग्य, ३ सवेग, ४ उपशम ए अनुकूपे इच्छादिकूना चार प्रकार छे ॥ ३४ ॥

कायोत्सर्गादिसूक्ष्माणा अद्वामेधाटिभावतः ॥

इच्छादियोगसाफल्य देशमर्वव्रतस्पृशाम् ॥ ३५ ॥  
गुड्डवडादिमाधुर्यभेदघत् पुरुषातरे ॥

भेदेऽपीच्छादिभावना दोषो नायन्त्रियादिहा ॥३६॥

अर्थ—कायोत्सर्गादिक जाग्रशक सूक्ष्म अद्वापणु जो भावथी याय तो आमक तथा साधुने इच्छादिक योग सफल याय ॥३५॥ फोइने गोल मीठो लागे तेजने फोडने खाड मीठी लागे ते ए रीते मीठाशना स्वादमा जेम भिन्नता छे तेम ज पुरुषोनी प्रहृति भिन्न भिन्न, माट इच्छादिक योगना जे भाव तेना पण भेद छे, तो पण तमा काढ दूषण नथी, केमके जेम शर्करादिकनी मीठाश जुदी जुदी छे तो पण मीठाशनो अर्थ एकन छे, मिठाश गम तेनी होय, पण तेथी मीठाशनो अर्थ मर छे, तेमन इच्छादिक योगना भेद छे, तो पण ते थकी अर्थ जे फल त एरुन मले छे, माट दूषण नथी एम जाणु ॥ ३६ ॥

येषां नेच्छादिलेशोऽपि तेषां त्वेतत्समर्पणे ॥  
 स्फुटो महामृषावाद हत्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ३७ ॥  
 उन्मार्गोत्यापनं वाढमसमंजसकारणे ॥  
 भावनीयमिदं तत्त्वं जानानैर्योगविंशिकाम् ॥ ३८ ॥  
 त्रिधा तत्सदनुष्टानमादेयं शुद्धचेतसा ॥  
 ज्ञात्वा समयसङ्घावं लोकसंज्ञां विहाय च ॥ ३९ ॥

अर्थ—पण जेने शुद्ध अनुष्टानने विषे इच्छादि योगनो लेश पण नथी, तेवा अयोग्य नरने जे इच्छादि योग आपे तेने प्रगट मृषावादनुं पाप लागे छे, एबुं पूर्वाचार्य कहे छे ॥ ३७ ॥ जे अति असमंजस कारण छे, तेने विषे उन्मार्ग स्थापन थाय छे; माटे योगविंशिका ग्रंथना जाण पुरुषे ए तत्त्व चिंतवीने सद-अनुष्टान करबुं, एटले जेम तेम करीये तो उन्मार्गनुं स्थापन थइ जाय ॥ ३८ ॥ माटे शुद्ध चेतनाये, मन-वचन-कायाये करीने सदनुष्टान सेववां, सिद्धांतना सङ्घाव जाणी लोकसंज्ञा तजीने शुद्ध क्रिया करवी । ३९ ॥

इति सदनुष्टानाधिकारः दशमः ॥



# मनशुद्धिअधिकार.

उचितमाचरण शुभमिच्छता  
 प्रथमतो मनस. खलु शोधन ॥  
 गदवतामस्यकृते मलशोधने  
 कमुपयोगसुपैतु रसायन ॥ ? ॥

अर्थ—अध्यात्मनी शुद्धि रखा माटे प्रथमथी  
 उचितपणे शुभ आचरणनी इच्छा करवी ने मननी शुद्धता करवी  
 जेम रोगनत प्राणी मल-शोधन रखाने रेच लीधा मिना रसायन  
 गाय तो, तेथी तेने काढ गुण थाय नही, केमके मल जाय तेगार  
 पठी रसायन साय तो गुण करे, तेम प्रथम मनशुद्धि थड होय  
 तोन अध्यात्मनी शुद्धि थाय ॥ १ ॥

परजने प्रसभ किसु रज्यते  
 द्विपति वा स्वमनो यदि निर्मल ॥

विरहिणामरतेर्जगतो रते—  
 रपि च का विकृतिर्विमले विधौ ॥ २ ॥

अर्थ—हे चेतन ! जो तारु मन निर्मल छे तो लोक  
 वाहग उपर राग धरदो अथवा डेप करदो ते धकी ताहरे शु  
 चगाह धवानो छे ? जेम चंद्रमा निर्मल छे, पण तेना उदयथी  
 मिरही जीरो अथवा चोर लोकोने अरति उपजे छे, अन जगदना  
 चीना जीरोने तेरी आनद थाय छे, पण तेथी चंद्रमाने गुण  
 अथवा अगुण काढन धता नयी ॥ २ ॥

उचितमारुलयन्नुपस्थित  
 स्वमनमनं दि गोचति मानवः ॥

उपनते स्मयमानसुखः पुन-

र्भवति तत्र परस्य किमुच्यतां ॥ ३ ॥

**अर्थ**—रुडी वस्तु मनमां चिंतवी मनोरथ कीधो, अने ते मनोरथ निपनो नहीं, तेवारे ते ग्राणी पोताना मनमां शोक धरे छे, अने जेवारे ते धारेली वस्तु भले छे तेवारे खुशी थाय छे; ए हर्ष—शोकनो कर्त्ता आत्मा ने एक मनज छे; तो वीजाये महारुं सारुं—नरसुं कर्युं एम शुं कहेबुं? ॥ ३ ॥

चरणयोगघटान्प्रविलोठयन्

शमरसं सकलं विकिरत्यधः ॥

चपल एष मनः कपिरुच्चकै

रसवणिग् विदधातु मुनिस्तु किं ॥ ४ ॥

**अर्थ**—मन मांकडा जेबुं छे केमके ते चारित्रिना योग-रूप धृतना घडाने ऊंधा वाले छे, तथा समतारूपी अमृतरसना घडाने ढोली नाखे छे; एबुं ए चपल मन ते खरेखरुं वांदरुं छे. तेनी आगल मुनिरूप रस वाणिज्यनो करनार वाणीयो विचारो शुं करे? ॥ ४ ॥

सततकुट्टितसंयमभूतलो-

त्यितरजोनिकरैः प्रथयस्तमः ॥

अतिदृढैश्च मनस्तुरगोगुणै—

रपि नियंत्रित एष न तिष्ठति ॥ ५ ॥

**अर्थ**—वली मुनिये चारित्रे करी कर्मरूपी धूलने दाढ़ी नाखी हती, पण मनरूपी घोडाये नित्य कुदी कुदीने संयमरूप भूमिलुं तलिसुं उखेड़युं; तेथी कलुपतारूप रज ऊडी, तेहना सम्हाहे

करी अज्ञानरूप अधकार थयो, एवो अति आकरो ए मनरूप  
घोडो छे, ते श्रतरूपी दोरडे बधायो छतो तोफान करे छे, पण  
समो रहेतो नथी ॥ ५ ॥

**जिनवचोधनसारमलिम्लुच,**

**कुसुमसायकपावकदीपकः ॥**

अहह कोपि मनःपवनो वली

**शुभमतिद्वमसततिभगकृत् ॥ ६ ॥**

अर्थ—एक कौतुक जुगो के मनरूपी वायु महावलगान  
छे, केमके रुडी बुद्धिरूप वृक्षने भागी नाखे छे तथा जिन नचन-  
रूप वरामनो चोर छे, वली कर्दर्परूप अग्निनो दीपामनार छे ॥६॥

**चरणगोपुरभगपरः स्फुर-**

**त्समयबोधतरूपि पातयन् ॥**

अमति घश्चतिमत्तमनोगजः

**क कुञ्जल शिवराजपथे तदा ॥ ७ ॥**

अर्थ—वली मनरूप हाथी छे, ते चारिग्रंथ नगर्ना  
दरखाजा भागतो थको प्रसरे छे, मिद्रातना बोधरूपी वृक्षने पण  
पाढतो थको भमे छे, एवो गदान्मत्त मनरूपी हाथी दोडादोड  
करे छे, तेमारे साधुने मोक्षमार्गे जता कुशलता ते क्याथी  
होय ॥ ७ ॥

**व्रततरून प्रगुणीकुरुते जनो**

**दद्विति दुष्टमनोदहन उनः ॥**

ननु परिश्रिम एषविशेषवान् ।

**क भविता सुगुणोपवनोदये ॥ ७ ॥**

अर्थ—जे साधु छे ते व्रतरूपी वृक्षे फली वाडीने चेतन  
ज्ञान अमृतरसवडे सींचीने नवपहुँच करे छे; पण दुष्ट मनरूप जे  
अभिं ते वली वाडीने वाली नांखे छे; तो रुडा गुणरूप वाडीमां  
गुणरूप वायराने उद्यें मुनिनी महेनत ते केम करीने सफल  
थाय ? ॥ ८ ॥

अनिगृहीतमना विदधत्परां  
न वपुषा वचसा च शुभक्रियां ॥  
गुणसुपैति विराधनयाऽनया  
बत दुरतंभवभ्रममचाति ॥ ९ ॥

अर्थ—एक मननो निग्रह कर्या चिना वचने तथा कायाये  
जेटली शुभ क्रिया करे ते उपयोगशून्यताये—अविधिये करे, अने  
ते अविधिनो करनारो तो आवश्यकसूत्रने विषेछकायनो विराधक  
कह्यो छे; माटे ते गुण न करे. जे शून्य मने क्रिया करनारो ते  
विराधक छे, माटे शून्य क्रिया करतो विराधकपणे संसारने विषे  
घणा भव भमशे ॥ ९ ॥

अनिगृहीतमनाः कुविकल्पतो  
नरकसृच्छति तंदुलमत्स्यवत् ॥  
इयमभक्षणजा नहि जीर्णता—  
ञुपनतार्थविकल्पकदर्थना ॥ १० ॥

अर्थः—मन वश कीधा चिना जे तप—जप करे, वली  
मनमां कुविकल्प धणा थाय तेथी ते तंदुलमच्छनी परे नरके पडे,  
ए कुविकल्प करतो थको जो उपवास करे, तप करे, तेथी तेने  
मात्र अजीर्ण थाय; केमके अणपाम्या अर्थनो विकल्प करे तेनी  
कदर्थना अजीर्णञ्जुं कारण छे ॥ १० ॥

मनसि लोलतरे विपरीतता  
वचननेब्रकरेगितगोपना ॥

ब्रजति धूर्त्तया स्थनयाग्विल  
निविडदभपरंसुपित जगत् ॥ ११ ॥

अर्थ—जो मन चपळ छे तो वचनगुप्ति करे तथा नेवने गोपने, इगितआकार चैषा पिना काउस्मग्ग बने, ते सर्वे प्रिय रीत जाणु ते सर्व धूर्त्तापणाने पामे, अने एवी रीते धूर्त्तपणे कपट क्रियाना करनारा ते मोटा चोर छे जगत्ने लुटनारा छे ॥११॥

मनम एव तत परिशोधन  
नियमतो विदधीत महामनिः ॥

हृदमभेषजमपनन मुने  
परपुमर्थरतस्य शिवश्रिय ॥ १२ ॥

अर्थ—ते माटे मनने भली गीते निश्चयकी शोधन कर तज पडितने मनोशुद्धिस्य चूर्ण छे, अने परम पुरुषार्थने पिषे राता जे मुनि तने मुक्ति स्त्रीने गम्भ रग्नानु औपध छे ॥१२॥

प्रवचनाब्जविलामरविप्रभा  
प्रशामनीरतरगतगिणी ॥

हृदयशुहिम्दीर्णमिदज्जर—  
प्रमरनाशगिधी परमापध ॥ १३ ॥

अर्थ—मिद्वातम्प कमलने विकमित करनाने मनशुद्धि ते गृष्णना प्रसाशस्य छे, उपशमम्प जलमहोल वयाग्वाने मनशुद्धि त नदीस्य छे, रक्ती प्रमरतो वक्तो एहां मदस्य ले

ताप तेने टालवाने मनशुद्धि ते परम सुन्दर ( जडीबुद्धी )  
औपथ छे ॥ १३ ॥

अनुभवासृतकुंडमनुत्तर  
ब्रतमरालविलासपथोजिनी ॥  
सकलकर्मकलंकविनाशिनी  
मनस एव हि शुद्धिरुदाहृता ॥ १४ ॥

अर्थ—बली मनशुद्धि अनुभवनो मोटो असृतकुंड छे;  
तथा चारित्ररूप हंसने रमवाने कमलिनी छे, अने सर्व कर्मकलंक  
हरवाने अयि समान मन शुद्धिने कही छे ॥ १४ ॥

प्रथमतो व्यवहारनयस्थितोऽ—  
शुभविकल्पनिवृत्तिपरो भवेत् ॥  
शुभविकल्पमयव्रतसेवया  
हरति कंटक एव हि कंटकं ॥ १५ ॥

अर्थ—प्रथमथी व्यवहारनये रहो एहवो जे पुरुष ते  
अशुभ विकल्पनी निवृत्ति जे नाश करबु तेने विषे तत्पर शईने  
शुभ विकल्पमय जे ब्रत तेनी सेवा करे; तेथी अशुभपणु ठली  
जाय, जेम कांटा बडे कांटो नीकली जाय छे तेनी परे ॥ १५ ॥

विषमधीत्य पदानि शनैः शनै—  
हरति मंत्रपदावधि मांत्रिकः ॥  
भवति देशनिवृत्तिरपि स्फुटा  
शुणकरी प्रथमं मनसस्तथा ॥ १६ ॥

अर्थ—जेम मंत्रवादी पुरुष मंत्रपद समाप्ति सुधी मंत्रना  
शब्द धीमे धीमे मनमाँ भणे, पण विषने टाले; तेम जे

देशथी निवृत्ति करे ते पण प्रगटपणे प्रथम मनने गुणकारी थाय ॥ १६ ॥

स्फुटमसद्विपयव्यवसायतो  
लगति यत्र मनोऽधिकसौष्ठवात् ॥  
प्रतिकृतिः पद्मात्मवदेव चा  
तदवलग्नमत्र शुभ मत ॥ १७ ॥

अर्थ—जे देसताज नम्लो अने शुडो एहरो जे निष्य तेना व्यापारथी जे नरनु चित्त घणी चतुराईथी जे नस्तुने निषे लागे ते वस्तु आत्माने साथे जोटीये तेमारे तेनु प्रतिर्मिंश भासे, पण ते आत्मधर्म नहीं, तोपण अध्यात्म रीते तेनुज अपलग्न रुद्ध कहु छे ॥ १७ ॥

तदनु काचन निश्चयकल्पना  
विगलितव्यवहारपदापधि ॥  
न किमपीति विवेचनसमुग्मी  
भवति सर्वनिगृत्तिसमाधये ॥ १८ ॥

अर्थ—पछी काईक निश्चय कल्पना वड, अने व्यवहार पनी मर्यादा गलित थड “एगोह नत्यि मे झोई” एवी वहेचण घेतना सन्मुख थर्द तेमार सर्वनिगृत्तिम्य समाधि थाय ॥ १८ ॥

इह द्वि भर्त्तुर्हिर्विपयच्युत  
हृदयमात्मनि कंपलमागत ॥  
चरणदर्शनयोगपरपरा-  
परिचित प्रसरत्यविकृतपक्षम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जेवरे सर्व वाह्य विषयथी हृदय खस्युं तेवरे पोताना आत्माने विषे केवल एकज ज्ञान, दर्शन, चारित्रिना बोधनी परंपरा जे आत्मकुटुंब हे, तेनो मिलाप ते निर्विकल्पपणे प्रसरे, ओलखाण थाय एम जाणवुं ॥ १९ ॥

तदिदमन्यदुपैत्यधुनापि नो  
नियतवस्तुविलासयपि निश्चयात् ॥  
क्षणमसंगमुदीतनिसर्गधी—  
हतवहिर्ग्रहमंतरुदाहृतम् ॥ २० ॥

अर्थ—निश्चयनयथकी ए आत्मा ते खरी शुद्ध वस्तुनो विलासी हे, ते माटे हमणां अन्य जे रागद्वेषादि भाव तेने न पामे; वली क्षणमात्र पण जे परपुद्लादिकनो संग न करे, एवी स्वाभाविक बुद्धि थई तेथी वाह्य भाव हण्यो, अने अंतरंग उल्कृष्टभावने पाम्यो ॥ २० ॥

कृतकपायजयः सगभीरिम,  
प्रकृतिशांतमुदात्तमुदारधीः ॥  
स्वमनुगृह्य मनोऽनुभवत्यहो  
गलितमोहतमः परमं महः ॥ २१ ॥

अर्थ—एहो जे गंभीर स्वभाववालो, जेणे कपायनो जय मेलव्यो हे अने जेती बुद्धि मोटी हे, अने स्वभावे शांत हे, ते जो सम्यक्प्रकारे मननो निग्रह करे तो तेथी मोहांध-कारने गालीने परम महातेजस्विपणानो ते प्राणी जरूर अनुभव पामे ॥ २१ ॥

गलितदुप्रविकल्पपरंपरं  
धृतविशुद्धि मनो भवतीहशं ॥

धृतिमुपेत्य ततश्च मरामति-

ममधिगच्छति शुभ्रयश्च श्रिय ॥ २२ ॥

अर्थ—नेणे माठा पिक्लपनी ऐणि टाली छे अने मिशु-  
द्ववानु ग्रहण कीधु छे ते मनोशुद्विने पासे, अने पली सतोषी-  
पगाने पामीने ते पटित पुरुष उड्डल यशस्व लक्ष्मी अथवा  
यशशोभाने पासे ॥ २२ ॥ इति मनशुद्विनामाणकादशो-  
धिकार समाप्त ॥

इतिश्री पटित यशोरिनयेन मिरचितेऽध्यामगारप्रकरणे  
ठतीय प्रमध ॥



## सम्यकत्वाधिकारः

मनशुद्धिश्च सम्यकत्वे सत्येव परमार्थतः ॥  
 तद्विना मोहगर्भा सा प्रत्यपाप्यानुवंधिनी ॥१॥  
 सम्यकत्वसहिता एव शुद्धा दानादिकाः क्रियाः ॥  
 तासां मोक्षफले प्रोक्ता यदस्य सहकारिता ॥२॥

**अर्थ—**—ए पूर्वे मनशुद्धि कही ते जो सम्यकत्व गुण होय तो निश्चे मनशुद्धि कहेवाय, पण सम्यकत्व विना जे मनशुद्धि माने ते मोहगर्भित होय एटले अज्ञान सहित होय, ते तो ऊलटी कष्टवंधन करनारी छे माटे हवे सम्यकत्वनो अधिकार कहे छे ॥ १ ॥ दानादिक क्रिया पण सम्यकत्व सहित होय तोज शुद्ध छे; ते क्रिया मोक्षफल लेवाने सहायकारक छे ॥ २ ॥

कुर्वाणोऽपि क्रियां ज्ञातिधनभोगांस्त्यजन्नपि ॥  
 दुःखस्योरो ददानोऽपि नांधो जयति वैरिणं ॥ ३ ॥  
 कुर्वन्निर्वृत्तिमप्येवं कामभोगास्त्यजन्नपि ॥  
 दुःखस्योरो ददानोऽपि मिथ्यादृष्टिर्न सिध्याति ॥४॥

**अर्थ—**—जेम आंधलो वैरीने जीती शकतो नथी तेम क्रिया करे छे, न्याति धननो भोग तजे छे, दुःख सहे छे, कायाने कष्ट आपे छे; पण ए सर्व सम्यकत्व विना व्यर्थ जाय छे ॥ ३ ॥ जो संतोष धरे, कामभोग छोडे, कायाने कष्ट आपे, तो पण मिथ्यात्वी थको मुक्तिने पामे नही ॥ ४ ॥

कनीनिकेव नेत्रस्य कुसुमस्येव सौरभं ॥  
 सम्यकत्वमुच्यते सारः सर्वेषां धर्मकर्मणां ॥५॥

तत्त्वश्रद्धानमेतच गदित जिनशासने ॥

सर्व जीवा न कृतव्याः सूत्रे तत्त्वमितीष्यते ॥ ६ ॥

अर्थ—जेम आपमा कीकी सारभूत छे, फूलमा सुगध मारभूत छे तेम सर्व धर्मक्रियामा सम्यक्त्व ते सारभूत कहु छे ॥ ५ ॥ जिनशासने पिपे जे तत्त्वनी श्रद्धा कर्ती तेहने सम्यक्त्व कहु छे, अने कोई पण जीवने हणबो नही तेने सूत्रगा तत्त्व कहु छे ॥ ६ ॥

शुद्धो धर्माऽयमित्येतद्भर्मरूपात्मक स्थित ॥

शुद्धानामिदमन्यासा रुचीनामुपलक्षण ॥ ७ ॥

अथपेद यथा तत्त्वमाज्ञयैत्र तयाऽग्निल ॥

नयानामपि तत्त्वानामिति अहोदितार्थतः ॥ ८ ॥

अर्थ—जे शुद्ध धर्म ते ए धर्मरुची नामा सम्यक्त्वनेज कहिये अने ए मध्ये उपलक्षणयी रीजी पण शुद्ध पदार्थनी रुचीबो प्रगटे छे ॥ ७ ॥ अयसा ए मध्यस्त्र ते प्रभु आज्ञास्य तच्चे प्रगटे छे ते तत्त्व तो जीवादिक नय प्रकारे छे, तेनी जे श्रद्धा ते मध्यस्त्र जाण्यु ॥ ८ ॥

इत्यैव प्रोच्यते शुद्धाऽहिसा वा तत्त्वमित्यतः ॥

मध्यस्त्र दर्शित सूत्रप्रामाण्योपगमात्मक ॥ ९ ॥

शुद्धाऽहिसोक्तित सूत्रप्रामाण्य तत एव च ॥

अहिसाशुद्धीरंप्रमन्योऽन्याश्रयभीर्न तु ॥ १० ॥

अर्थ—यली इहा तत्त्व ते अहिसास्य शुद्ध तत्त्व ते गे तत्त्व शुद्धानार प्रमाणे विचारीण, तेगारे आत्माने अभिन्न-स्वरूपे मध्यस्त्र देगाउयू छे ॥ ९ ॥ अने शुद्ध अहिसा रुही ते

मृत्रे प्रमाण हे; एवंहुनी मात्र वचनेज जुदाई हे. ते माटे एक अहिंसा तथा शीजी तत्त्वशुद्धि एवंहुने मांहोमाहे मेलवतां दृष्टण नशी; एक स्वस्थे हे ॥ १० ॥

नैव यस्मादहिंसायां सर्वेषामेकवाक्यता ॥

तच्छुद्धताच्चांहश्च संभवादिविचारणात् ॥ ११ ॥

यथाऽहिंसादयः पञ्च व्रतधर्मयमादिभिः ॥

पदैः कुशलधर्माद्यैः करुणते स्वस्वदर्शने ॥ १२ ॥

**अर्थः**—केमके अहिंसाने विषे सर्वनी एकवाक्यता नशी, तो पण विचारी जोतां शुद्ध अवबोध जणाव हे ॥ ११ ॥ जेम अहिंसादिक पांच व्रत ने धर्म हे तेम धर्म पांतपोताना दर्शनने विषे कुशलयका धर्म आदे देह यमादिक पदे करीने व्रत कहे हे ॥ १२ ॥

प्राहुभागिवतास्तत्र व्रतोपव्रतपञ्चकम् ॥

यमांश्च नियमान् पाशुपतान् धर्मान् दशाभ्यधुः ॥१३॥

अहिंसा सत्यवचनमस्तैन्यं चाप्यकल्पना ॥

ब्रह्मचर्यं तथाऽक्रोधो ल्यार्जवं शोचमेव च ॥ १४ ॥

**अर्थः**—तेमां भागवत मतवाला एम बोले हे, के पांच व्रत अने पांच उपव्रत मलीने दश हे. एम पाशुपतमतवाला दश प्रकारे धर्मदिशा माने हे. ते यम-नियमादिक दश कही वतावे हे ॥ १३ ॥ दशा, सत्य वचन, अचोरी, अकल्पना अने ब्रह्मचर्य ए पांच यम तथा अक्रोध, सरलता, शोच, गतोप अने गुरुसंवाद, ए पांच नियम जाणवा ॥ १४ ॥

संतोषो गुरुशूदूपा इत्येते दश कीर्तिनाः ॥

निगद्यंते यमाः सांख्यै रपिव्यासानुसारिभिः ॥१५॥

अहिंसा सत्यमस्तैन्य ब्रह्मचर्यं तुरीयक ॥  
पञ्चमो व्यवहारश्चेत्येते पञ्च यमाः स्मृताः ॥ १६ ॥

अर्थः—ए दश धर्मदशा कहेनाय. हवे घेदव्यासना  
मतानुमारी सारप्रभतगाला पण यम नियम एम कहे छे ॥ १५ ॥  
दया, सत्य, अचोरी, नवचर्य, व्यवहार ए पाच यम जाणना ॥ १६ ॥  
अकोधो गुरुगुश्रूपा शौचमाटारलाघव ॥

अप्रमादश्च पञ्चेते नियमा परिकीर्तिताः ॥ १७ ॥  
बौद्धै कुशलधर्मश्च दशोप्यते यदुच्यते ॥  
हि सास्तेयान्यथाकाम पेशुन्य परमपानृत ॥ १८ ॥

अर्थ—जकोध, गुरुसेना, शौच, अल्पाहार, अप्रमाद-  
ए पाच नियम कहा छे ॥ १७ ॥ अने बौद्धदर्शनमा जे कुशल  
छे ते धर्मगाला पण दश प्रकारे कहे छे, तेम रहिये छीए, हिंसा,  
चौरी, कर्दपे, चाढी, कठोर वचन अने जूठु बोलतु ॥ १८ ॥  
सभिन्नालापव्यापाद मभिध्याद्वगविष्ठय ॥

पापर्मति दशाधा कायवाटमनमेस्त्यजेत् ॥ १९ ॥  
ब्रह्मादिपदवाच्यानि तान्याहुवेदिकादय ॥

अतः सर्वं रुद्धाऽप्यत्याहर्मशास्त्रमदोऽर्थक ॥ २० ॥

अर्थः—जेमतेम घरु, गारु, अन्न सेन्नु, दृष्टिपि  
र्याम, ए दश प्रकारे पापर्म ते मन, वचन अने काया ए प्रणे  
योगे करी त्यजना ॥ १९ ॥ अने वेदिकादिक मतगाला पण  
नवादिक पद बोले छे, जे सर्वत्र नवपद छे, एवी ए सर्व धर्म-  
गालाना एकमचन छे, माटे मार्यपृष्ण मर्ने धर्मशास्त्र  
वहिये ॥ २० ॥

क चैतत्संभवो युक्त इति चिंत्यं महात्मना ॥  
 शास्त्रं परीक्षमाणेना व्याकुलेनांतरात्मना ॥ २१ ॥  
 प्रमाणलक्षणादेस्तु नोपयोगोऽकश्चन ॥  
 तन्निश्चयेऽनवस्थानादन्यथार्थस्थितेर्यतः ॥ २२ ॥

**अर्थः**—ते माटे ए सर्वदर्शननो संभव किहाँ ठेकाणे छे, एम मोटा पुरुषे चितव्वुं, ते शास्त्रनी परीक्षावालाए विचारव्वुं, ते वली अव्याकुलपणे अंतरात्मावडे विचारव्वुं ॥ २१ ॥ इहां प्रमाणलक्षणादिकथकी कशोए उपयोग कार्यकारी नथी, जिहां अन्यथा अर्थ उपजे एटले ते धर्म जुदो थइ जाय अने धर्म तो एक स्वभावरूप छे ॥ २२ ॥

प्रसिद्धानि प्रमाणानि व्यवहारश्च तत्कृतः ॥  
 प्रमाणलक्षणस्योळ्कौ ज्ञायते न प्रयोजनं ॥ २३ ॥  
 तत्रात्मा नित्य एवेति येषामेकांतदर्शनं ॥  
 हिंसादयः कथं तेषां कथमप्यात्मनोव्ययात् ॥ २४ ॥

**अर्थः**—अने चार प्रमाण तो प्रसिद्ध छे, व्यवहार पण तेज कहो छे; माटे प्रमाण तथा लक्षणनी युक्ति विपे प्रयोजन जणातुं नथी ॥ २३ ॥ ते मध्ये वे नये करी आत्मा नित्यज छे, एव्वुं एकांत मतवालानुं कहेव्वुं छे. तेने मते तो हिंसादिक नथी. केमके आत्मा अविनाशी छे, ते कोइवारे मरे नहीं, अने मरे नहीं तेवारे हिंसा पण शानी ? ॥ २४ ॥

मनोयोगविशेषस्य धर्वंसो मरणमात्मनः ॥  
 हिंसा तच्चेत्त तत्त्वस्य सिद्धेरार्थसमाजतः ॥ २५ ॥  
 नैति बुद्धिगता दुःखोत्पादरूपेयमौचितिम् ॥  
 पुंसि भेदाग्रहात्तस्याः परमार्थोऽन्यवस्थितः ॥ २६ ॥

अर्थः—सबके मरणे मनोयोग नाश पाम छे तेगारे लोक  
कहे छे के जीव सुप्रो, पण आत्मा तो मरतो नवी, माटे तच्च-  
थकी आत्मानी हिंसा नवी ए अर्थ घटमान छे एम कहे छे  
॥ २५ ॥ कोई जाणदो जे आगल दुख उपजापानी जे उद्धि  
तेहने हिंसा कहिये, पण ए ग्रात योग्य नवी, केमरु तमे उद्धिने  
तो पुरुषभेद आग्रहयकी आत्मायी भिन्न मानो छो, तेवी पण  
आत्मानी हिंसा न वड केमरु परमार्थे उद्धिने आत्मा साथे  
व्यग्रस्था नवी ॥ २६ ॥

न च हिंसापद नाशपर्याय कथमप्यहो ॥

जीवस्येकातनित्यत्वेऽनुभवायाधरु भवेत् ॥ २७ ॥  
शरीरणापि सवधो न तशोगाविचंचनात् ॥  
विभुत्वेनेव ममार कल्पित स्यादसशय ॥ २८ ॥

अर्थ —एकाते नित्यपणे जीवनो नाश यानो जे पर्याय  
ते हिंसा पद कहाय, तेहने अदो इति आर्थ ! अनुभव अमा  
धपणे न हाय शु ? होयन इति काकोक्ति ॥ २७ ॥ नित्य  
पणे शरीर कीने पण मनव नवी, केमरु तजा योगनी नहचण  
नवी, माट गण्य भतिपणे ईथरभड कीमेष ईनमत्ता  
इत्यादिक समार वाप्ता ते ॥ २८ ॥

आत्मप्रिया चिना च स्यान्मितानुग्रहण रुय ? ॥

कथ मयोगभेदादिरुपना चापि युज्यते ॥ २९ ॥

अदृष्टादेदमयोग स्यादन्यतररुम्र्ज ॥

इत्य जन्मोपपत्तिथेत्र तशोगाविचनात् ॥ ३० ॥

अर्थ —एक वागादिया चिना एट्टे जासाना व्या-

पार विना-परिसित परमाणुनुं ग्रहण केम थाय ? वली संयोग-वियोगादिकनी कल्पना पण केम वटे ? ॥ २९ ॥ एम सांभलीने कोई बोल्यो के- हरकोई कर्मथी पूर्व संस्कार दिठा विना शरीरनो संयोग थाय छे, तेनो उत्तर आपे छे. एम जन्मनी उत्पत्ति ते जीवना व्यापार विना-वेंचण विना थाय नही, इति भावार्थः ॥ ३० ॥

**कथंचिन्मूर्त्ततापैतिर्धिना वपुरसंक्रमात् ॥**

**व्यापारयोगतश्चैव यत्किञ्चित्तदिदं जगुः ॥ ३१ ॥**  
निःक्रियोऽसौ ततो हांति हन्यते वा न जातुचित् ॥  
**किञ्चित्केनचिदित्येवं न हिंसाऽस्योपपवते ॥ ३२ ॥**

अर्थः—शरीरने संयोगे तो जीव कांड्क रूपीपणुं पासे छे. जो शरीरनो संक्रम न होय तो जे कांड्हे छे ते इहां कहे छे ॥ ३१ ॥ जेणे आत्मा त्यागी कीधो छे ते एम कहे छे के आत्मा क्रिया रहित छे, माटे कोइने हणतो नथी तेम कोइ काले कोइथी हणातो पण नथी; एवुं जेना चित्तमां छे ते हिंसा नहीं माने ॥ ३२ ॥

**अनित्यैकांतपक्षेऽपि हिंसादीनामसंभवः ।**

**नाशहेतोरयोगेन क्षणिकत्वस्य साधनात् ॥ ३३ ॥**  
न च संतानभेदस्य जनको हिंसको भवेत् ॥  
**सांबृतत्वादजन्यत्वाद् भावत्वनियतं हि तत् ॥ ३४ ॥**

अर्थः—एम एकांते अनित्यवादीने पक्षे हिंसा नथी मनाती, केमके ते सर्व पदार्थ क्षणरूप माने छे; माटे आत्मा क्षणमां नाशरूप छे, ते पोतानी मेलेज मरे छे तेवारे मार्नार-

हेतु कोई नथी माटे हिंमा नथीज ॥ ३३ ॥ पुत्र-पुत्री प्रसुतनो  
कोड चाप नथी तेम कोड मारनार पण नयी, ए जगत मर्म लणिक  
भागनो नियम छे, अनित्य छे, माटे कोड प्रगट करनार नयी  
तेवारे पिता कोनो अने पुत्र कोनो ? ॥ ३४ ॥

**नरादिः क्षणहेतुश्च शूकरादेन्हि सकः ॥**

**शूकरात्यक्षणेनैव व्यभिचारप्रसगतः ॥ ३५ ॥**  
अनतरक्षणोत्पादे वुद्धलुब्धकयोस्तुला ॥

**नैव तद्विरति कापि ततः गान्ध्रायसगतिः ॥ ३६ ॥**

**अर्थः—**मनुष्य क्षणमात्र छे अने पछी सुअरना मरणने  
अतकालना क्षणमा ते मनुष्य नयी, माटे सुअरने मार-  
नार कोण छे ? एहापा नोलनारने पण प्रसगयी व्यभिचार आये  
छे ॥ ३५ ॥ तथा सुअरने मायुं अने मरणने रीजे समये ज्ञानी  
तथा आहेडी ए वे मरिखा छे सुअर मरण पाम्यु ते ए वे जणे  
जाण्यु, माटे हवे ए नेमाथी कोडने मारपानी मति नयी. ते माटे  
मारनार तथा मरनार सर्वना लणे क्षणे उत्पत्ति तथा मरण छे,  
पण कोड लणे काढ पिरति नयी, एम कहे छे ए मतभालाना  
शास्त्र पण जृठा छे ॥ ३६ ॥

**घटन्ते न विनार्हिंसा सत्यादीन्यपि तच्चत ॥**

**एतस्यागृत्तिभूतानि तानि यद्गवान् जगौ ॥ ३७ ॥**  
मौनीहे च प्रवचने युज्यते सर्वेऽमेव हि ॥

**नित्यानित्ये स्फुट देटाज्जिन्नाभिन्ने तथात्मनि ॥ ३८ ॥**

**अर्थः—**केमके अहिंसा पिना सत्यादिक धर्म पण घटे  
नहीं अने सत्यादिक वर्म जे छे ते जीवदयाह्य क्षेत्रनी गाड

छे, एवुं केवली कहे छे ॥ ३७ ॥ जिनशासनने विषे तो ए सर्व घटमान छे, शरीरथी प्रगटपणे नित्य छे, वली अनित्य पण छे; तेमज मिन्नाभिन्नपणुं छे; तथा एकपणुं छे अने अनेकपणुं पण छे: वली आत्माने विषे पण तेमज कहेयुं ॥ ३८ ॥

आत्मा द्रव्यार्थतो नित्यः पर्यायार्थाद्विनश्वरः ॥

हिनस्ति हन्यते तत्तत्फलान्यप्यधिगच्छति ॥ ३९ ॥  
इह चानुभवः साक्षी व्यावृत्यान्वयगोचरः ॥

एकांतपक्षपातिन्यो युक्त्यस्तु मियो हताः ॥ ४० ॥

अर्थ—आत्मा द्रव्यार्थिकनये नित्य छे अने पर्यायार्थिकनये अनित्य छे; ए जीव कोइने हणे छे, अथवा कोइ ए जीवने हणे छे, तेनां फल परभवमां आत्मा भोगवे छे ॥ ३९ ॥ ए जैननी शैलीये अन्वय अने व्यतिरेक ए वे गुणे सहित एवो जे अनुभव ते साक्षी करतां थकां एकांत मतवालानी युक्तियो माहोमांहे हणाइ जाय छे ॥ ४० ॥

पीडाकर्तृत्वतो देहव्यापत्त्या दुष्टभावतः ॥

त्रिधा हिंसागमे प्रोक्ता न हीत्यमप्हेतुका ॥ ४१ ॥  
हंतुर्जाग्रति को दोषो हिंसनीयस्य कर्मणि ॥

प्रसक्तिस्तदभावे चान्यत्रापीति सुधा वचः ॥ ४२ ॥

अर्थ—पीडा करवाथी, देहपीडाथी, दुष्टभावथी, एवा त्रण ग्रकारनी हिंसा सिद्धांतमां कही छे, ते काँइ जूठी नथी ॥ ४१ ॥ जे प्राणीनुं स्वकृत वर्सनो उदय थये थके मृत्यु थयुं तो तेना हणनारने शो दोप छे? एटले हिंसा न थइ; अने जे हणाणो तेनां कर्म उदय आव्यां, ते तेणे भोगव्यां तो तेमां शी

हिंसा छे ॥ केवके जे जीवने मरणनो उदय हाल नथी तेने  
मारिये तो पण ते काढ मरतो नयी, माटे हिंसा कोडनी थती  
नथी, एवु जे माने छे ते मिथ्या छे ॥ ४२ ॥

**द्विष्यकर्मविपाकस्य दुष्टाशयनिमित्तता ॥**

हिसकत्व न तेनेद वैग्रस्य स्यादिपोरिव ॥ ४३ ॥

इत्य सदुपदेशादेस्तन्निवृत्तिरपि स्फुटा ॥

**सोपक्रमस्य पापस्य नाशात्स्वाशयवृद्धितः ॥४४॥**

अर्थ—केमके जे प्राणीना मनमा दुष्ट आशयनु निमित्त  
छे तेने ए हिंसा छे, अने हिंसाना कर्मविपाक पण तेनेज छे, जो  
वैद्यने औपय करता दुष्ट चित्त होय तो ते औपय शुभु सरसु  
याय, अने ते वैद्यने पण हिंसकृपणु लागे. अने जो वैद्यनु मन  
निर्मल छे तो वैद्यने हिंसकृपणु न लागे ॥ ४३ ॥ एवा सद्गु-  
रुना उपदेश सामलगायी हिंसानी निवृत्ति प्रगटपणे थाय, निर्मल  
चित्तना आशयनी ब्रह्मिथकी सोपक्रमी जे अनिकाचित नाखेला  
पाप रेनो नाश थाय छे ॥ ४४ ॥

**अपवर्गतरोर्विज सुरथाऽहिंसेयमुच्यते ॥**

सत्यादीनि ब्रतान्यत्र जापते पञ्चवा नवा ॥ ४५ ॥

अस्तिमामभवश्वेत्य दृश्यतेऽत्रैव शासने ॥

**अनुनधादिसशुद्धिरप्यवैवास्ति वास्तवी ॥ ४६ ॥**

अर्थ—जे अहिंसा ते मोक्षरूप वृक्षनु घीज कहिये, अने  
सत्यादिक जे ग्रत छे ते मोक्षरूप वृक्षना नगपछन अहुरा छे  
॥ ४५ ॥ त तो आ जिनशामनमा जीवदयानो, अहिंसकपणानो  
मम जोगामा जाप छे अने वली अनुनधाहिंसा त ग द्वाहिंसा

अने स्वरूपहिंसा ए त्रण जातनी जे हिंसा तेनी शुद्धि ते पण  
आ जिनशासनमांज वसी रही छे ॥ ४६ ॥

**हिंसाया ज्ञानयोगेन सम्यग्दृष्टेर्महात्मनः ॥**

तप्तलोहपदन्यासतुल्याया नानुवंधनं ॥ ४७ ॥

सतामस्याश्च कस्याश्चिद् यतनाभक्षिशालिनां ॥

अनुवंधो ह्यहिंसाया जिनपूजादिकर्मणि ॥ ४८ ॥

**अर्थः**—मोटा प्राणी जे सम्यग्दृष्टि ते ज्ञानयोगे करी  
वर्ते छे, तेने पण अविरतिथी हिंसा लागे छे, ते केवी छे । जेम  
तपाव्युं एवुं जे लोडुं ते उपर पग मूकी कोई चाले, ५४ वलवाने  
भये निःशंकपणे पग ठरावे नहीं, तेम समकिती पण निःशंकपणे  
हिंसा न करे, अने ते माटेज नरकनो वंध पण करे नहीं ॥ ४७ ॥  
तेम रुडा जयणावंत जीवने ज्ञानयोगे करी जिनपूजा करतां  
अहिंसा जे दया तेनो अनुवंध छे; केमके ए पूजा ते परंपराये  
मुक्तिकलनी आपनारी छे ॥ ४८ ॥

**हिंसानुवंधिनी हिंसा मिथ्याद्वष्टेस्तु दुर्मतेः ॥**

अज्ञानशाक्षियोगेन तस्याहिंसापि तावशी ॥ ४९ ॥

येन स्यान्निहवादीनां दिविषदुर्गतिः क्रमात् ॥

**हिंसैव महती तिर्यङ्गनरकादिभवांतरे ॥ ५० ॥**

**अर्थः**—पण नरकगतिनो वंध पडे एवी जे हिंसा ते  
मिथ्यात्वी दुर्मतिने होय, अज्ञानने योगे करी ते मिथ्यात्वी जो  
जीवदया पाले तो ते पण हिंसा जेवीज जाणवी ॥ ४९ ॥  
जे कारण माटे निन्हवादिक जमाली प्रमुखे पण जीवदया पाली  
छे, तोपण अज्ञानोदयना योगे स्वर्गमां पण दुर्गति पास्या छे,

अने ढेड़स्य छे, माटे निन्हमनी जे अहिमा ते परमार्थे हिसाना  
ज फल आपे, केमके भगातरे तेमने तिर्यंच् नरकादिकनी गति  
प्रगटे छे ॥ ५० ॥

**साधुनामप्रमत्ताना सा चार्द्विसानुवधिनी ॥**

हिसानुवधविच्छेदाद्गुणोत्कर्पा यतस्ततः ॥५१ ।

**मुग्धानामियमज्जत्वात् सानुववा न कर्त्तिचित् ॥**

ज्ञानोद्गेकाप्रमादाभ्यामस्या यदनुवधन ॥ ५२ ॥

**अर्थः—**—अप्रमत्त साधु जे सातमा गुणठाणामाला तेने  
जे हिंसा छे ते अहिमानुववी छे, केमके हिसानो अनुवध  
निच्छेद थया थकी जिहा तिहा वर्फी गुणनो उत्कर्प थाय छे  
॥ ५१ ॥ पण ए अहिमा ते अज्ञानपणे भोला प्राणीने कदापि  
काले सुखदायक नवी, एटले ए अनुवव सहित न वाय, पण  
अप्रमत्त साधुने ज्ञान सहित जे अहिंसा अवशा हिंसा ते अनुवधे  
अहिंसाज कहिये, केमके ए परपराए मोहसुसनु कारण छे  
माटे ॥ ५२ ॥

**एकस्यामपि हिसायामुक्त सुमहदतर ॥**

भाववीर्यादिवचित्त्यादहिसाया च तत्त्या ॥ ५३ ॥

**सय कालातरे चेतद्विपाकेनापि भिन्नता ॥**

**प्रतिपक्षातरालंन तद्वा अक्षिनियांगतः ॥ ५४ ॥**

**अर्थ —**—एकली हिंसाने पिपे पण जेम माटो अतर  
देसाळ्यो छे तेम भाव वीर्यना पिचित्रपणाथकी अहिंसाने पिपे  
पण तेमन जाणनु ॥ ५३ ॥ प्रतिपक्षपण अतराले करी अवशा ते  
शक्तिने योगे करी तत्काल अवशा कालातर प्रिपाके करीने पण  
भिन्नता छे ॥ ५४ ॥

हिंसाप्युत्तरकालीनविशिष्टगुणसंक्रमात् ॥

त्वक्काविध्यलुब्धत्वादहिंसैवातिभक्तिः ॥ ५५ ॥

इद्वग्भंगशतोपेताऽहिंसा यत्रोपवर्ण्यते ॥

सर्वाशपरिगृह्णं तत्प्रमाणं जिनशासनं ॥ ५६ ॥

अर्थः—जे हिंसा छे ते पण जो उत्तरकाले विशिष्टगुण प्रगटे, तथा अविधिनो अनुवंध तज्याथी अने अत्यंत भक्तिरक्षी प्राणीने अहिंसारूपज फलदायक थाय छे ॥ ५५ ॥ ए रीते सेंकडो गमे भंगजाल सहित जिहां अहिंसाने वर्णविधे ते तो सर्वाशे शुद्ध एवुं जे जिनशासन तेमांज प्रमाण छे ॥ ५६ ॥

अर्थैऽयमपरोऽनर्थं इति निर्धारणं हृदि ॥

आस्तिक्यं परमं चिन्हं सम्यक्त्वस्य जगुर्जिनाः ॥ ५७ ॥

शमसंवेगनिर्वेदानुकंपाभिः परिष्कृतं ॥

दधतामेतदविच्छिन्नं सम्यक्त्वं स्थिरतां ब्रजेत् ॥ ५८ ॥

अर्थः—अहिंसा तेज अर्थ छे अने वीजा सर्व अनर्थ छे, ए प्रकारे जेना मनमां धारणा छे एहवी परम आस्था प्रगटे ते आस्था श्रद्धारूप समक्षितनुं चिह्न छे, एवुं प्रभुए कहुं छे ॥ ५७ ॥ समता, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा ए लक्षणो रुडी रीते अविच्छिन्नपणे धरतां थकां समक्षित जे छे ते स्थिरतापणाने पामे ॥ ५८ ॥

इति सम्यक्त्वाधिकानः द्वादशः समाप्तः ॥

## ॥ मिथ्यात्व त्यागाधिकार ॥

मिथ्यात्वत्यागतः शुद्ध सम्यक्त्वं जायतेऽङ्गिना ।  
 अतस्तत्परिद्वाराय यतितव्यं महात्मना ॥ १ ॥  
 नास्ति नित्यो न कर्ता च न भोज्ञात्मा न निर्वृतः ।  
 तदुपायश्च नेत्याहुमिथ्यात्वस्य पदानि पद् ॥ २ ॥

अर्थः—ते जे वार मिथ्यात्वनो नाश याय ते वारे जीगने सम्यक्त्वं प्रगटे, माटे मिथ्यात्वं टालगानो रुडा ग्राणीय उद्यम करगो ॥ १ ॥ आत्मा नथी, आत्मा नित्य नथी, कर्ता नथी, भोक्ता नथी, मिद्ध नयी, त सिद्धता प्रगट करणानो उपाय नथी ए छ पद मिथ्यात्मना छे ॥ २ ॥

एतैर्यस्माद्वेदृद्वयवद्वारप्रिलघन ।

अयमेव च मिथ्यात्वधर्मी मदुपदेशत् ॥ ३ ॥

नास्तित्वादिग्रहेन्तोपदेशो नोपदेशक ।

तत् कस्योपकार स्यात्सदेतादिव्युदामत् ॥४॥

अर्थ — ए पदपड करी पूर्णचार्यना व्यगहार उलवाय छे, लोपाय छे, एज मिथ्यात्व ते, गने ते मदगुरुना उपदेशथकी नाश पाम छे ॥ ३ ॥ ए उ पदरूपी दुग्रह नव्यायका जे उपदेश आपे ते उपदेश न कहिये, तेथी रुहने उपकार न याय, मिथ्यात्वीना उपदेशो सदेह ठले नही ॥ ४ ॥

येषा निश्चय एषां न्यगद्वारस्तु भगत ।

विप्राणा म्लेच्छभाषेव स्यार्थमात्रोपदेशनात् ॥५॥

यथा केवलमात्मानं जानानः श्रुतकेवली ।

श्रुतेन निश्चयात्सर्वं श्रुतं च व्यवहारतः ॥ ६ ॥

**अर्थः**—जेम ब्राह्मणने म्लेच्छ भाषा बोलवानी मनाई छे, माटे पोताना स्वार्थ जेटलीज बोले; तेमज जेहने एक निश्चय नयज इष्ट छे तेहने व्यवहार नय तो ब्राह्मणने म्लेच्छनी भाषाना उपदेशनी परे स्वार्थ माटे संगत मात्र छे ॥ ५ ॥ जेम श्रुतकेवली व्यवहारथी श्रुत जाणे; अने सर्व निश्चय नयवडे श्रुतज्ञाने करी श्रुतकेवली केवल आत्माने जाणे ॥ ६ ॥

निश्चयार्थोऽत्र नो साक्षाद्वक्तुं केनापि पार्यते ।

व्यवहारो गुणद्वारा तदर्थविगमक्षयः ॥ ७ ॥

प्राधान्यं व्यवहारे चेत्तसेषां निश्चये कथं ?

परार्थस्वार्थते तुल्ये शब्दज्ञानात्मनोर्द्धयोः ॥ ८ ॥

**अर्थः**—इहां निश्चय अर्थ प्रगटपणे कहेवाने कोई समर्थ नथी. देखीतो गुण प्रगटे ते रूप द्वारे निश्चय अर्थनी प्राप्ति क्षय-रूप व्यवहार कहेवाय ॥ ७ ॥ जेने केवल व्यवहारने विषेज प्रधानपणु छे तो तेने निश्चयनयमाँ केम होय ? बली शब्दनय अने ज्ञाननयरूप प्राणीने स्वअर्थ ने परअर्थ बे तुल्य छे. जे शब्द ते व्यवहार छे अने ज्ञान ते निश्चय छे । ८ ॥

प्राधान्याद्व्यवहारस्य तत्त्वसुच्छेदकारिणां ।

मिश्यात्वरूपतैतेषां पदानां परिकीर्तिता ॥ ९ ॥

नास्त्येवात्मेति चार्वाकः प्रत्यक्षानुपलंभतः ।

अहंताव्यपदेशस्य शरीरेणोपपत्तितः ॥ १० ॥

अर्थ—जे व्यग्रहाग्ना प्रगानपणायकी सर्वनो उच्छेद  
थाय तेवा प्राणीने मि-यात्मरूप छ पदमा मिथ्यात्मभाव थयो  
एम जाणु ॥ ९ ॥ चार्गक दर्शनगला रहे छे के आत्मा नयी;  
केमके जो आत्मा होय तो प्रत्यक्ष जणाय, ते तो काई  
जणातो नयी, अने अहकार एटले आ कार्य हु करु छु तेनो  
जे व्यपदेश छे ते तो शरीरे करीने जणाय छे ॥ १० ॥

मयागेभ्यो मदव्यक्ति प्रत्येकमसती यथा ।

मिलितेभ्यो हि भूतेभ्यो ज्ञानव्यक्तिस्तया मता ॥ ११ ॥  
राजरकादिवैचित्र्यमपि नात्मनला हितम् ।  
स्वाभाविकस्य भेदस्य ग्रावादिष्वपि दर्शनात् ॥ १२ ॥

अर्थ—जेम महुडा तथा पाणीप्रमुख मदिराना अग छे,  
पण ते प्रत्येकमा मदिरानी शक्ति नयी, जे वारे भेगा मले  
ते वारेज शक्ति प्रगटे, तेम पचभूत भेगा मले ते वारे ज्ञानशक्ति  
प्रगट थाय छे ॥ ११ ॥ जेम एक शिला अथवा एक काकरी ए  
सर्व पर्याना भेद छे तेम आ राना छे, आ राक छे एबु  
मिचित्रपणु ते आत्मा नयी, ए तो स्वभावे भेद पड्या छे ॥ १२ ॥  
वाक्येर्न गम्यते चात्मा परस्परविरोधिभि ।

दृष्टगान्न च कोऽप्येन प्रमाण यद्वचो भवेत् ॥ १३ ॥  
आत्मानं परलोक च किंया च विविभा वदन ।  
भोगेभ्यो अशयत्युच्चैर्लोकचित्त प्रतारक, ॥ १४ ॥

अर्थ.—वली सर्व मतगलाना माहोमाह निरोधी वचन  
होगाथी आत्मानी प्रतीति यती नयी, केमके कोइये आत्मा दीठो  
नयी के जे धकी एकेनु वचन प्रमाण थाय ॥ १५ ॥ आत्माने

सुखम स्थितिमां स्थिरदर्शन न संभवे ॥ २१ ॥ जैम मदिराना  
अंगथकी मदशक्ति प्रगटपणे नथी, पण भेगे मलवे थाय छे,  
अथवा पीधा पछी आत्माने संयोगे थाय छे तेम ज्ञाननी प्रग-  
टता पण आत्माने योगे थाय छे; नहीं तो सदाय एकलुं ज्ञान  
रहेबुं जोडए ॥ २२ ॥

**राजरंकादिवैचित्र्यमप्यात्मकृतकर्मजं ॥**

सुखदुःखादिसंवित्तिविशेषो नान्यथा भवेत् ॥२३॥  
आगमाङ्गम्यते चात्मा दृष्टेष्टार्थाविरोधिनः ॥  
तद्रक्ता मर्वविच्चैनं दृष्टवान्वीतकद्मलः ॥ २४ ॥

**अर्थः—**आ राजा छे अने आ रांक छे, एवो जीवने  
विचित्र भाव उपजे छे एवी लोकवाणी छे; ते सर्व पोतानां  
कीधेलां कर्मथकी जाणवी. सुखदुःख सर्व कर्मथकी प्रगट थाय  
छे, अन्यथा वीजुं विशेष कारण काँई नथी ॥ २३ ॥ जे दृष्टिये  
दीर्घ ते प्रत्यक्षप्रमाण अने इष्टार्थ ते अनुमान प्रमाण, तथा  
उपमप्रमाण ते अनुमानमां भले छे; माटे ए त्रण प्रमाणने  
अविरोधी एहबुं जे आगमप्रमाण तेणे करी आत्माने जाण्यो  
जाय छे. ते आगम तो जेनां सर्व पाप गयां छे एहवा सर्वज्ञ  
देवे देखाउयुं छे ॥ २४ ॥

**अभ्रांतानां च विफला नासुष्मिक्यः प्रवृत्तयः ॥**

परवंधनहेतोः कः स्वात्मानमवसाद्येत् ॥ २५ ॥  
**सिद्धिः स्थापवादिवद्वयक्ता संशयादेव चात्मनः ॥**  
असौ खरविषाणादौ व्यस्तार्थविषयः पुनः ॥ २६ ॥

**अर्थः—**अभ्रांत जे ज्ञानी पुरुष तेने हमणानी प्रवृत्ति ते

नि फलता न होय, माटे परमधनना हतुए करी पोताना  
 आत्माने कोण खेदमा नाखे ? ॥ २५ ॥ आत्मानी प्रगटपणे  
 सशयथी सिद्धि छे, एरी यात तो वगडामा झाडना ढुठा जेवी  
 देखाय, पण सशय करता थका जे यहु वृक्ष ते न जणाय.  
 तेमज सशयपडे आत्माने न जाणिये अने जे निपरीत अर्थे आत्माने  
 माने तेने गधेडाने शिंगडा माननार जेगो ममजगो ॥ २६ ॥

अजीव इति शब्दस्य जीवसत्तानियत्रितः ॥

असतो न निषेधो यत्सयोगादिनिषेधनात् ॥ २७ ॥

सयोगं समवायश्च सामान्यं च विजिष्टना ॥

निषिध्यते पदार्थना त एव न तु मर्वया ॥ २८ ॥

अर्थ.—अजीव शब्दमा जीव शब्दनी मत्ता गलगेली  
 छे, पण निषेध अछतो छे जेवी नास्तिक मतवाला सयोग,  
 समवाय अने सामान्य तया प्रियोपने निषध छे, त पण सर्वथा-  
 पणे वस्तुस्वरूपने निषधी शस्ता नथी, कम्हके सयोग, समवाय  
 अने सामान्य नहीं मानवायकी पण अजीव शब्द बोल्यो ते  
 यद्यपि अजीव पदार्थ सत छे, तथापि शब्द अमत् मानीए तो  
 ते असत् पदार्थनो निषध देखातो नयी ॥ २७ ॥ माटे सयोग,  
 समवाय, मामान्य इत्यादिक पदार्थसु प्रियोपपणु ते नास्तिक मत-  
 वाला निषध नर छे, पण त मर्वया निषेध थाय नहीं ॥ २८ ॥

शुद्ध व्युत्पत्तिमञ्जीयपद भार्य घटादिवत् ॥

तदर्थस्य शरीर नो पर्यायपदभेदत ॥ २९ ॥

आत्मव्यवस्थितेस्त्याज्य तनश्चार्गुदशनम् ॥

पापा किलैतदालापा मद्व्यापारविरोधिन ॥ ३० ॥

अर्थः—शामाटे १ शुद्ध निर्मल एवी व्युत्पत्ति ते जीव प्राण धारणे एवे अर्थे युक्त एवुं जीव पद साचुं छे, घटादिकनी पेरे छतुं छे; पण नवा नवा पर्यायना भेदधकी जीवने मूल अर्थे शरीर नथी ॥ २९ ॥ ए रीते आत्मानुं स्थापन करीने चार्वाक दर्शनने छांडवुं, ए दर्शनी साथे आलाप करवो ते पण पापरूप छे, केमके ते सत्यवादी साथे विरोधकारक छे; तेथी तजबुं ॥ ३० ॥

ज्ञानक्षणावलीरूपो नित्यो नात्मेति सौगताः ॥

क्रमाक्रमाभ्यां नित्यत्वे युज्यते अर्थक्रिया न हि ॥ ३१ ॥

स्वभावहानितोऽध्रौद्यं क्रमेणार्थक्रियाकृतां ॥

अक्रमेण च तद्वावे युगपत्सर्वसंभवः ॥ ३२ ॥

अर्थः—हवे बौद्धमतवाला बोल्या के-आत्मा ज्ञानरूप छे, पण क्षण-आवलिका प्रमाणे स्थिति छे; माटे आत्मा नित्य नथी. एटले जीव ते क्षणमां क्रोध करे, क्षणमां मान करे, एम भिन्न अवस्था थाय छे; एक अवस्था नित्य रहेती नथी. परं-पराये क्रम अक्रमणे जो नित्य आत्मा कोइ वैलाये होय, तो अर्थक्रियाकलाप घटे नहीं; माटे नित्य आत्मा नथी ॥ ३१ ॥ एनो स्वभाव हणाय ते वारे ध्रुवपणुं पासे, अनुक्रमे अर्थक्रिया आकृतिने विषे अक्रमे करीने ते भावने विषे समकाले विचारतां सर्व संभव होय, माटे अमारो क्षणिक मत साचो ठर्यो ॥ ३२ ॥

क्षणिके तु न दोषोऽस्मिन् कुर्वद्वपविशेषिते ॥

ध्रुवेक्षणोत्थतृष्णाया निवृत्तेश्च गुणो महान् ॥ ३३ ॥

मिथ्यात्ववृद्धिकृत्वन् तदेतदपि दर्शनं ॥

क्षणिके कृतहानिर्यत्यात्मन्यकृतागमः ॥ ३४ ॥

**अर्थः—** वक्ती आ क्षणिक मतमा दोष नथी, केमके नमना रूप कर छे, पण जे समये जे रूप होय ते समये ते रूपना लक्षणे करी ग्रुप छे तेमा तुष्णानो अने निवृत्तिनो मोटो गुण छे जेथी भ्रुतारूप महागुण पामिये, एम वौद्ध कहे छे ॥ ३३ ॥ ए उपरथी खरेखरु ए दर्शन मिव्यात्वनी वृद्धि करनारु छे, केमके आत्माने क्षणिक माननारना मुकुतनी हानि थाय छे जो कदी पाप न करे, तोपण जृठा बोलानु पाप तो परभवे भोगभवु पडे, माटे अकृतागम कहिये ॥ ३४ ॥

एकद्रव्यान्वयाभावाद्वासनासक्रमश्च न ॥

पौर्वापर्य हि भावाना सर्वत्रातिप्रसक्तिमत् ॥ ३५ ॥  
कुर्वद्वृपविशेषे च न प्रवृत्तिर्वं वाऽनुमा ॥

अनिश्चयान्न वाऽध्यक्ष तथाचोदयतो जगौ ॥ ३६ ॥

**अर्थ—** जेम एक द्रव्यनो सापेक्षपणे एक भाव नथी, माटे वासनानु सक्रमण न याय अने भागनु पूर्णापरपणु सर्वत्र शक्तिरूपे परिणम छे ॥ ३५ ॥ रूप मिशेप रुता उत्ता प्रवृत्ति करवी अथवा वारनी त तो नहीं, पण क्षणिक मतमालाए तो अनिश्चयथकी आत्माने उदयथी क्षणिकपणु रुख्य छे ॥ ३६ ॥

न वेजात्य विना तत् स्यान्न तस्मिन्ननुमा भवेत् ॥

विना तेन न तत्सद्विनार्थ्यक्ष निश्चय विना ॥ ३७ ॥  
एकताप्रत्यभिज्ञान क्षणिकत्वं च याधते ॥

योऽहमन्वभव सोऽह स्मरामीत्यवधारणात् ॥ ३८ ॥

**अर्थ—** विजाति विना ते न होय, एमा काई अनुमान घटतु नथी, केमके ते विना तेनी सिद्धि पण नयी निश्चय विना

प्रत्यक्ष ज्ञान पण न थी थनुं ॥ ३७ ॥ तथा हूं आ अनुमरुं हूं,  
ते हुं संभारुं हूं—ए अवधागणथकी आत्माने वैकालिक एकता-  
ज्ञान ते क्षणिकपणे वाघकारी थाय हो ॥ ३८ ॥

नास्मिन्विपयबाधो यत् क्षणिकेऽपि वर्यकता ॥

नानाज्ञानान्वये तद्रूप स्थिरे नानाद्वयान्वये ॥ ३९ ॥  
नानाकार्यक्यकरणस्वाभाव्ये च विद्वयने ॥

स्याद्वादस्त्रिवेगेन नित्यत्वेऽर्थक्रिया न हि ॥ ४० ॥

**अर्थः**—ए नित्यात्माना मतवडे विपयवाधकपणुं न होय,  
क्षणिक मतने विषे पण एगज जेम ज्ञानान्वये एकत्वपणुं हो तेम  
स्थिर आत्माने विषे नाना ध्याने संयोगे एकता जाणवी ॥ ३९ ॥  
वहु कार्यना एकीकरण स्वभावने अंगीकार करे हुते विरोध पडे  
हो अने स्याद्वाद ऊली स्थापना करवाथी नित्यापेक्षणे अर्थ-  
क्रिया विरोध पामती न थी; केमके वहु नये प्रकृति अर्थे  
अलुसरे हो; माटे ॥ ४० ॥

नीलादावप्यतद्दशक्तयः सुवच्चाः कथं ? ॥

परेणापि हि नानैकस्वभावोपगमं विना ॥ ४१ ॥  
ध्रुवे क्षणेऽपि न प्रेम निवृत्तमनुपल्लवात् ॥

ग्राह्याकार इव ज्ञाने गुणस्तन्नात्र दर्शने ॥ ४२ ॥

**अर्थः**—नीलादि वर्णने विषे भेदशक्ति न होय, एम  
सुखे केम कहेवाय १ पर पुद्गलवडे करीने पण एक स्वभावने  
टाल्या विना नानाविधपणुं संभवे नही ॥ ४१ ॥ ध्रुवतापणाने  
विषे इक्षणे विषे पण एटले लोचनने विषे पण उपप्लव माटे  
निवृत्तपणे प्रेम न जोइये. जेम ग्राह्याकार ज्ञानने विषे गुण हो  
तेम आ दर्शनमां गुण न थी ॥ ४२ ॥

प्रत्युतानित्य मावे हि स्वतः क्षणजवुर्धिया ॥

द्वेत्यनादरत्, मर्द क्रियाविफलता भवेत् ॥ ४३ ॥

तस्मादिदमपि त्याज्यमनित्यत्यस्य दर्शन ॥

नित्यसत्यचिदानन्दपदससर्गमिच्छता ॥ ४४ ॥

अर्थ—जलटो अनित्यभासने पिये पण पोताथी क्षणनी बुद्धिये करी हेतुना अनादर थकी सबली क्रिया निष्फल थाय ॥ ४३ ॥ ते माटे ए अनित्य दर्शन पण ठोड़ु सदैव नित्य सत्यपणे मुक्तिपदना ससर्गने इन्हुता प्राणीये जरूर त्यजु ॥ ४४ ॥ न कर्ता नापि भोक्तात्मा कापिलाना तु दर्शने ॥

जन्मधर्माश्रयो नाय प्रकृतिः परिणामिनी ॥ ४५ ॥  
प्रथमः परिणामोऽस्या बुद्धिर्धर्माष्टकाऽन्विता ॥

ततोऽहकारतन्मात्रेद्वियभतोदयः क्रमात् ॥ ४६ ॥

अर्थ—हये कपिल दर्शनगाला गोल्या के—आत्मा कर्ता नथी तेम भोक्ता पण नयी जात्मा प्रगट धर्माश्रयगालो नथी, माया परिणाम वर्ते छे ॥ ४५ ॥ ए मायानो प्रथम परिणाम शुश्रूषा, अग्न, चैवग्रहण इत्यादिक आठ प्रकारनी बुद्धिरूप धर्मे करी सहित छे अथवा तेथी अहकार, तन्मात्र, ईद्रिय, पाच भूतोदय—ए अनुक्रमे जाणु ॥ ४६ ॥

चिद्रूपपुरुषो बुद्धेः सिद्धये चैतन्यमानत ॥

सिद्धिस्तस्या अविषयाऽवच्छेदनियमानित, ॥ ४७ ॥  
द्वेतुत्वेषु प्रकृत्यर्थनिद्रियणामत्र निर्वृत्ति ॥

दृष्टादृष्टविभागश्च व्यामगश्च न युज्यते ॥ ४८ ॥

अर्थः—बुद्धिनी सिद्धिने अर्थे आत्मा चिद्रूप छे, वली चैतन्य छे; तो पण निश्चय सहित अविच्छेद्यणे ते बुद्धिनी जे सिद्धि ते अविषयी छे ॥ ४७ ॥ हेतुत्वे करी आत्माने प्रकृति अर्थने विषे इंद्रियोना निवृत्तिपणानो दीठा—अणदीठाना विभागथी प्रसंग घट्टो नथी ॥ ४८ ॥

स्वमे व्याघ्रादिसंकल्पान्नरत्वानभिमानतः ॥

अहंकारश्च नियतव्यापारः परिकल्प्यते ॥ ४९ ॥  
तन्मात्रादिक्रमस्तस्मात्प्रपञ्चोत्पत्तिहेतवे ॥

इच्यंबुद्धिर्जगत्कर्त्री पुरुषो न विकारभाक् ॥ ५० ॥

अर्थः—जेम स्वमने विषे व्याघ्रादिकना संकल्पथी अने पुरुषार्थता निराभिमानथी अहंकारने निश्चये व्यापाररूप कल्पिये छीये ॥ ४९ ॥ ते प्रपञ्चनी उत्पत्तिना हेतुने अर्थे तन्मात्रादिकनो क्रम छे. ए रीते जगतनी करनारी बुद्धि ठरे छे; माटे विकारनो भजनार आत्मा नथी ॥ ५० ॥

पुरुषार्थोपरागौ द्वौ व्यापारावेश एव च ॥

अत्रांशो वेदम्यहं वस्तु करोमीति च धीस्ततः ॥ ५१ ॥  
चेतनोऽहं करोमीति बुद्धेर्भेदाग्रहात्समयः ॥

एतन्नाशोऽनवच्छिन्नं चैतन्यं भौक्ष इष्यते ॥ ५२ ॥

अर्थः—सर्व प्रवृत्ति व्यापारने विषे एक पुरुषार्थ अने वीजो उपराग ए वे व्यापार भले छे. ते वारे हुं अंशे जाणुं हुं, हुं वस्तु करुं हुं- एवी कदाग्रही बुद्धि थाय छे ॥ ५१ ॥ हुं चेतन हुं, हुं करुं हुं एवो गर्व बुद्धिना हेतुथी प्रगटे छे. एवा गर्वनो नाश करी स्वभावे रह्यं चैतन्यपणुं सुक्तिने पासे छे ॥ ५२ ॥

कर्तुवुद्धिगते दुखसुखे पुस्युपचारतः ॥

नरनाथे यथा भूत्यगतौ जयपराजयौ ॥ ५३ ॥

कर्ता भोक्ता च नो तस्मादात्मा नित्यो निरजन ॥

अध्यात्मादन्यथावुद्धिस्तदा चोक्त महात्मना ॥ ५४ ॥

**अर्थः**—आत्माने निषे दुख-सुख पामशु, एही कर्त्ता-पणानी बुद्धि जे थाय छे ते उपचारथी छे जेम सेवक्नो जय अथवा पराजय ते राजा होवाथी जणाय छे ॥ ५३ ॥ हत्यादिक माटे आत्मा कर्ता भोक्ता नथी पण नित्य निरजन छे, अने जे बुद्धि छे ते तो अध्यात्मथी जुदी छे एवु महात्मा कपिल मुनिए कहलु छे ॥ ५४ ॥

प्रकृते क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वथा ॥

अहकारविमूढात्मा कर्त्ताह मिति मन्यते ॥ ५५ ॥  
विचार्यमाण नो चारु तदेतदपि दर्शन ॥

प्रकृतिचैतन्ययोव्यक्त सामानाधिकरण्यत ॥ ५६ ॥

**अर्थः**—प्रकृतिना गुणे कर्म क्रियमाण जे कर्म तेनो हु कर्ता त्रु, एम र्पे प्रकारे अहकारे मूढ आत्मा माने छे ॥ ५५ ॥ एतो मिचार कर्मी ए दर्शन पण रहु नथी, केमके प्रगट बुद्धि प्रकृति अने चैतन्यनो मामानाधिकरणे मिचार करता रहु नथी जणातु ॥ ५६ ॥

बुद्धि कर्त्री च भोक्त्री च नित्या चेन्नास्ति निर्वृत्तिः ॥

अनित्या चेन्न समारः प्राग्भूर्मादेरयोगत ॥ ५७ ॥

प्रकृतावेय धर्मादिस्त्रीकारे उद्धिरेव का ॥

सुवच्छ्व घटादौ स्यादीद्वग्भूर्मान्वयस्तथा ॥ ५८ ॥

अर्थः—वळी तमे जो कर्ता, भोक्तापणे बुद्धि मानशो; पण जो ते बुद्धि नित्य छे तो मोक्ष नथी एटले मोक्ष ठरशे नहीं, अने जो बुद्धिने अनित्य मानशो तो पूर्व धर्मना अयोग्य थकी संसार ठरशे नही ॥ ५७ ॥ प्रकृतिने विषे धर्मादिकने अंगीकार कीथाथी बुद्धिने शुं कहेवी जोइये ? अने वटादिकने विषे एवा धर्मनो अन्वय ते सुखे कहेवो. इति तर्कवादः ॥ ५८ ॥

**कृतिभोगौ च बुद्धेश्चेद्रवंधो मोक्षश्च नात्मनः ॥**

ततश्चात्मानसुद्दिश्य कूटमेत्यदुच्यते ॥ ५९ ॥  
पञ्चविंशतितत्वज्ञो यत्रतत्राश्रमे रतः ॥

**जटी सुंडी शिखी चापि सुच्यते नात्र संशायः ॥६०॥**

अर्थः—जो करबुं, भोगबुं बुद्धिने छे तो वंधमोक्ष आत्माने नथी, ते पण बुद्धिनेज जोइये; माटे आत्माने उद्देशीने नहीं समजवामां आवे तेने कूट वचन कवि कहे छे ॥ ५९ ॥ पंचविंशतच्चनो जाण जे पुरुष छे ते कोई पण आश्रममां रत होय एटले जटाधर होय, अथवा मुंडावे, अथवा चोटी रखावे, तो पण ते संदेह विना संसारथी मूकाय एवं कपिल मतवाला कहे छे ॥ ६० ॥

**एतस्य चोपचारत्वे मोक्षशास्त्रं वृथाऽस्तिलं ॥**

अन्यस्य हि विमोक्षार्थं न कोऽप्यन्यः प्रवर्तते ॥६१॥  
कपिलानां मते तस्मादस्मिन्नैवोचिता रतिः ॥

**यत्रानुभवसंसिद्धः कर्ता भोक्ता च लुप्यते ॥६२॥**

अर्थः—ए रीते ए आत्माने विषे मोक्षने उपचारिपणे अंगीकार करे छे, तेनुं सकल मोक्षशास्त्र फोगट थाय छे; केमके

कोईने मोक्ष आपसा कोड रीजो प्रवृत्त याय नहीं ॥ ६१ ॥  
 निहा अनुभवसिद्ध आत्मानु कर्त्तापणु तथा भोक्तापणु लोपे छे  
 एटले मानता नथी, त माटे एहरा कपिलना मतमा ग्रीति करवी  
 ते ठीक नयी ॥ ६२ ॥

**नास्तिनिर्वाणमित्याहुरात्मन्, केऽप्यवधत् ॥**

प्रारुपश्चाद्युगपद्मापि कर्मन्धाव्यवस्थिते, ॥ ६३ ॥  
 अनादिर्यादि सबध इष्यते जीवकर्मणोः ॥  
 तदानत्यान्न मोक्षः स्यात्तदात्माकाशयोगवत् ॥ ६४ ॥

अर्थ — कटलाक अध नतपाला छे ते एम कह छे के—  
 आत्माने मोक्ष-निर्वाण नयी, केमक प्रथम के अथवा पछी सम-  
 काले आत्माने कर्मव नयी, तो मुक्ति शेनी होय ? ॥ ६३ ॥  
 जो जीवने तथा कर्मने अनादि समय मानिये तो आदि नहीं,  
 तिहा अत पण केम याय ? माट अनतपणाना प्रमगवी कोई  
 काले मोक्ष न याय, जेम आत्माथरी आकाश योग कदापि  
 भिन्न न थाय ॥ ६४ ॥

**तदेतदत्यस्तन्द यन्मियो हेतुकर्ययो ॥**

सतानानादिता वीजाकुरुत देहर्कर्मणो ॥ ६५ ॥  
 कर्त्ता कर्मान्वितो देहे जीव कर्मणि देहयुक् ॥  
 क्रियाफलोपभुक्त्य दडान्वितकुलालयत् ॥ ६६ ॥

अर्थ — एहतु योले छे, ए पचन पण जृदु ते, केमके  
 खारण कायने माहामाह मयध छे—जेम पुर पोगादिस्तो अनादि  
 मरंध थाय न्हे ते गीनना अंदुगनी पर ते, तमन शगीर तथा  
 कर्मनो पण अनादि मयध छे ॥ ६५ ॥ कर्म सहित जीव कर्त्ता-

पणे देहमां रहो छे, यवुं जे कहे छे ते पण ज़रुं छे, जेम दंड  
सहित कुंभारनी परे क्रियानुं फल भोगवे ते पण असंबंध छे  
तेनी परे ॥ ६६ ॥

**अनादिसंततेनाशः स्याद्वीजांकुरयोरिव ॥**

कुकुकुद्यंडकयोः स्वर्णमलयोरिव वानयोः ॥ ६७ ॥  
भव्येषु च व्यवस्थेयं संबंधो जीवकर्मणोः ॥  
**अनात्रनंतोऽभव्यानां स्यादात्माकाशयोगवत् ॥ ६८ ॥**

**अर्थः**—तमे कहो छो के अनादि संतति नाश न थाय  
तेनो तो नाश थतो देखीये छीये: जेम वीज वणस्ये अंकुर न  
थाय अने अंकुरा नाश थये वीज नहीं थाय. कुकडी नाश थये  
इँडुं नाश पामे अने इँडानो नाश थये कुकडी नाश पामे. वक्ती  
अनादिनो सुवर्णथी मेल जुदो थाय छे. तेम आत्माधकी  
कर्म जुदां थाय छे ॥ ६७ ॥ ए रीते अनादि संतति जीवकर्मनो  
जे संबंध ते नाश थाय छे. ते भव्य जीवो आश्रयी छे. अने  
जेहने अनादि संतति टलती नथी ते अभव्य जीवो आश्रयी  
छे. आत्मा तो आकाशना योगनी परे छे ॥ ६८ ॥

**द्रव्यभावे समानेऽपि जीवाजीवत्वभेदवत् ॥**

जीवभावे समानेऽपि भव्याभव्यत्वयोर्भिदा ॥ ६९ ॥  
स्वाभाविकं च भव्यत्वं कलशप्राग्भावतः ॥

**नाशकारणसाम्राज्याद्विनद्यन्न विरुद्ध्यते ॥ ७० ॥**

**अर्थः**—जेम द्रव्यनी रीते तो सर्वद्रव्य एकद्रव्यपणे तुल्य  
छे, पण ते द्रव्यमां भेद करीए तो जीव अजीव ए वे थाय;  
तेमज जीवपणे तो सर्व जीव सरिखा छे, पण भेद करतां भव्य

तथा अभव्य ए वे भेद थाय छे ॥ ६९ ॥ जेम घट उत्पत्ति  
पहला माटी द्रव्य स्वाभाविकपणे छे अने माटीना नाशथी  
घट प्रगटे छे ते निरुद्ध नयी तेम स्वाभाविक भव्यपणे कर्मनी  
अनादि सततिना नाशरूप कारणना सामर्थ्ययी परमात्मापण  
प्रगटे ते पण निरुद्ध नयी ॥ ७० ॥

भव्योच्छेदो न चैव स्याद् गुर्वान्त्यान्नभाँशवत् ॥

प्रतिमादलवत् क्वापि फलभावेऽपि योग्यता ॥ ७१ ॥  
नैतद्वय वदामो यद्वय सर्वोऽपि सिध्यति ॥

यस्तु सिध्यति सोऽवश्य भव्य एवेति नो मत ॥ ७२ ॥

**अर्थः**—ए रीते भव्यपणानो उच्छेद न थाय, मोटा  
अनतपणाथकी आकाशना अशनी परे घट आसे आकाश पण  
आखु अने घट भागे आकाश खड थयो, पण आकाश काई  
वध्युं नही, तेम कर्मना नाशयकी आत्मा अधिक थतो नयी  
जेम कोई ठेकाणे प्रतिमाना दलनी पेरे प्रतिमादल पापाणथी  
निरुप फल उपजे तेम मोक्षनु उपजतु थाय ॥ ७१ ॥ अम एम  
कहेता नयी के सघला भव्य जीमो सिद्धि पाम, पण जे सिद्धि  
धेरे तने निथय भव्य कहीए ए अमारो मत हे ॥ ७२ ॥

ननु मोक्षेऽपि जन्यत्वाद्विनाशिनी भवस्थितिः ॥

नैव प्रध्यसवत्तस्यानिधनत्वव्यवस्थितेः ॥ ७३ ॥  
आकाशस्येव वेविस्त्या मुहरादेवं दक्षये ॥

ज्ञानादे कर्मणो नागे नात्मनो जायतेऽधिक ॥ ७४ ॥

**अर्थः**—मोक्षे विपे प्रगटयवापणु नयी अने भग्नी  
स्थिति नाशपती हे, पण मोक्षमा जनतपणानी स्थिति हे

माटे मुक्तिनो नाश नथी ॥ ७३ ॥ जेम मोगरे करी घडो भांग्यो,  
अने घडाने क्षये आकाश ऊदुं थयुं, पण वध्युं नही तेम ज्ञानथी  
कर्मनो नाश थाय, पण आत्मा अधिक थाय नहीं ॥ ७४ ॥

न च कर्माणुसंवंधानमुक्तस्यापि न मुक्तता ॥

योगानां वंधहेतूनामपुनर्भवसंभवात् ॥ ७५ ॥

सुखस्य तारतम्येन प्रकर्पस्यापि संभवात् ॥

अनंतसुखसंवित्तिर्मोक्षः सिद्ध्यति निर्भयः ॥ ७६ ॥

**अर्थः—**जिहां मूलथीज कर्मपरमाणुनो संवंध नथी,  
अने जे मुकाणा तेने काँइ मुकावापणुं नथी तथा मिथ्यात्व,  
अविरति, कपाय, योग ए चार वंधहेतुना योग छे, तेनुं फरी  
थवापणुं नथी, तेहने सिद्धि कहिये ॥ ७५ ॥ सुखनुं तारतम्य  
तथा ज्ञाननी उत्कृष्टता प्रगट थयेथी एटले अनंत सुख जाणवाशी  
निर्भयपणे जे सिद्धि तेनुं नाम मोक्ष छे एम कहीये ॥ ७६ ॥

वचनं नास्तिकाभानां मात्मसत्तानिषेधकम् ॥

ऋतानां तेन नादेयं परमार्थगवेषिणा ॥ ७७ ॥

न मोक्षोपाय इत्याहुरपरेनास्तिकोपमाः ॥

कार्यमस्ति न हेतुश्चेत्येषा तेषां कदर्थना ॥ ७८ ॥

**अर्थः—**माटे नास्तिक मतवालानां वचन आत्मसत्तानां  
निषेधक छे, ते ऋम चित्तवालाये आदरवां नही, अथवा नास्तिक  
मतवालानां भयनां वचन छे, एम जाणी आदरवां नही. जे  
परमार्थनो गवेषक होय तेणे छांडवां ॥ ७७ ॥ हवे वली वीजा  
नास्तिक मतने मलताज मतवाला छे. तेनुं कहेवुं एम छे के  
मोक्षनो उपाय नथी. एटले कार्य जे मोक्ष ते तो छे, पण तेनुं  
कारण जे उपाय ते नथी. एम माने छे तेमने पण विट्ठना छ्यो॥ ७८॥

अकस्मादेव भवतीत्यलीक नियतावधेः ॥

कदाचित्कस्य दृष्ट्वाद्भाषे तार्किकोऽप्यद ॥७९॥

हेतुभूतनिषेधाना स्वानुपाख्यविधिर्न च ॥

स्वभाववर्णना नैवमवधेनियतत्वतः ॥ ८० ॥

**अर्थः**—कोङ्क तो अणचित्वयो अकस्मात् मोक्ष थाश  
छे एम कहे छे ए पण जूळु छे नियत अवधिमर्यादाज छे.  
जे माटीना पिंडथी घट निपजे छे, ते कदाचित् दीर्घ छे  
तेहने तार्किकशास्त्रवाला कहे छे जे अमुक वस्त्रमाज पूरु  
याशे एवो काई नियम नथी ॥ ७९ ॥ हेतुभूत मोक्षनो निषेध  
नथी पोरानो अनुपकथनीय एटले पोताने बोलबु नही एहवो जे  
विधि ते पण नथी, अने स्वभाव वर्णन करबु, स्तुति करवी ते  
नथी, केमके ए सर्वनी अवधि छे एटले अवधिएज मोक्ष थाशे,  
ते माटे मोक्षनु साधन करबु ते जूळु छे, एम कहे छे ॥ ८० ॥  
न च सार्वत्रिको मोक्ष. स सारस्यापि दर्शनात् ॥

न चेदानी न तद्वयक्तिर्व्यञ्जको हेतुरेव यत् ॥ ८१ ॥  
मोक्षोपायोऽस्तु किं त्वस्य निश्चयो नेति चेन्मत ॥

तत्र रत्नव्ययस्यैव तथाभावविनिश्चयात् ॥ ८२ ॥

**अर्थः**—सर्वमोक्ष नथी, केमके जे हमणा नथी तेनी  
प्रगटता पण नथी, अने ससार तो ग्रत्यक्ष देखाय छे, माटे  
जेहनो जे हेतु छे तेज प्रगट नथी, तो तेहनो सशय छे ॥ ८१ ॥  
मोक्षनो उपाय छे किंना नथी ? ए वातनो निश्चय नथी, माटे  
ए मत पण जठो छे मोक्षनो हेतु तो रत्नव्ययनी परे, तेमज भावे  
निश्चयथी जाणिये ॥ ८२ ॥

भवकारणरागादिप्रतिपक्षमदः खलु ॥

तद्विपक्षस्य मोक्षस्य कारणं घटतेरां ॥ ८३ ॥

अथ रत्नत्रयप्राप्तेः प्राक्कर्मलघुता थाय ॥

परतोऽपि तथैव स्थादिति किं तदपेक्षया ॥ ८४ ॥

अर्थः—रत्नत्रयी जे छे ते संसारनुं कारण जे रागादिक तेहना शत्रु छे, अने संसाररूप कार्यनो शत्रु मोक्ष छे, माटे मोक्षनुं कारण जे उपाय, ते घटे छे; ॥ ८३ ॥ केमके रत्नत्रयनी प्राप्ति थयाथकी पूर्वभवना कर्मनी जेवी लघुता थाय तो वीजाथकी पण तेमज थाय, ए अपेक्षाये जो अवधि नथी तोपण शुं थयुं ? ॥ ८४ ॥

नैवं यत्पूर्वसेवातो मृद्गीतो साधनक्रिया ॥

सम्यक्त्वादिक्रिया तस्माद् दृढैव शिवसाधने ॥ ८५ ॥

गुणाः प्रादुर्भवन्त्युच्चैरथवा कर्मलाघवात् ॥

तथाभव्यतया तेषां कुतोऽपेक्षानिवारणं ॥ ८६ ॥

अर्थः—जे पूर्वसेवाथकी ते धनाधोलनारूपथी, रुजुताथी, साधनक्रियामंदरूप तेवी न होय, माटे समकितादिक्रिया ते मोक्षसाधनमां दह छे ॥ ८५ ॥ अथवा कर्मना लघुतापणाथकी मोटा जे गुण ते प्रगट थाय छे; ते प्रकारे तेनो भव्यतापणे करीने मोक्ष छे; पण मोक्षनी अपेक्षा वारी नथी. ॥ ८६ ॥

तथाभव्यतयाक्षेपाद्गुणा न च न हेतवः ॥

अन्योऽन्यसहकारित्वाद् दंडचक्रभ्रमादिवत् ॥ ८७ ॥

ज्ञानदर्शनचारित्राणयुपायास्तद्भवक्षये ॥

एतन्निषेधकं वाक्यं त्याज्यं मिष्यात्ववृद्धिकृत् ॥ ८८ ॥

अर्थः—तेम भव्यपणाना तिरस्कारथकी पुनर्हेतुभूत

गुण न होय, केमके परस्पर सहकारी छे माटे दड, चक्र, भ्रमणनी  
पेरे भव्यतापणे ज्ञानादिक गुण प्रगट थाय ते गुण मोक्षनो हेतु  
छे, ए उत्तर कहो छे ॥ ८७ ॥ माटे ससारना क्षयरूप जे उपाय  
ते ज्ञान, दर्शन अने चारित्र छे तेनो जे निषेध करे अने मिथ्या-  
त्वनी बुद्धि करे तेनु वचन त्याग कर्खु ॥ ८८ ॥

मिथ्यात्वस्य पदान्येतान्युत्सृज्योत्तमधीधनं ॥  
भावयेत्प्रातिलोम्येन सम्यक्त्वस्य पदानि पद् ॥ ८९ ॥

**अर्थः**—ए पूर्वे कह्या जे सर्व शास्त्रना मतवाद ते  
मिथ्यातना ठेकाणा छे तेने छाडीने बुद्धिरूप धननु ग्रहण करीने  
मिथ्यात्वने प्रतिकूलपणे जे समकितना छ पद छे तेने  
भावना ॥ ८९॥

इति मिथ्यात्वत्यागाधिकार त्रयोदश ममास ॥



## कदाग्रहत्यागाधिकार—

मिथ्यात्वदावानलनी खाहम—

सदगृहत्यागमुदाहरंति ॥

अतो रतिस्तत्र बुधैर्विधेया,

विशुद्धभाषैः श्रुतसारवज्ज्ञिः ॥ १ ॥

**अर्थः—** मिथ्यात्वरूप जे दावानल तेने शमाववाने मेघ समान एवा मिथ्यात्व कदाग्रहरूप प्रसारनो त्याग पंडिते कहो छे. जे कदाग्रहना त्यागने विषे रति करवी ते तो जे पंडित होय, वली शुद्ध भाववालो होय अने सिद्धांतना सारनो जाण होय तेणे कदाग्रहने छांडवो ॥ १ ॥

असद् ग्रहाग्रिज्वलितं घदंतः,

क तत्र तत्त्वव्यवसायवज्ज्ञिः ॥

प्रशांतिपुष्पाणि हितोपदेशं—

फलानि चान्यत्र गवेषयन्तु ॥ २ ॥

**अर्थः—** जेनुं अंतःकरण अछता पदार्थना कदाग्रहरूप अग्रिये बल्युँ छे तेना हृदयमां तत्त्व-व्यापाररूप वैली कैम करी ऊगे ? अने समतारूप फूल कैम फूटे ? तथा हित उपदेशरूप फल क्यांथी होय ? ते माटे कदाग्रहने तजीने बीजे ठेकाणे तत्त्वनी खोज करवी ॥ २ ॥

अधीत्य किंचिच्च निशम्य किंचिद—

सदग्रहात्पंडितमानिनो ये ॥

मुखं सुखं चुंचितमस्तु वाचो,

लीलारहस्यं तु न तैर्जगाहे ॥ ३ ॥

अर्थ.—काढक भणीने तथा काढक शास्त्र सामग्रीने आत्माने पटितपणु मानता एवा मूर्ख कदाग्रहना धरनार ते पोतानु मुखचुपित जे वाचा तेने सुख माने, पण ते मुखे करी लीलास्प रहस्य जे ज्ञान त अवगाहे नही ॥ ३ ॥

असद्ग्रहोत्सर्पदतुच्छर्दपे—

बांधाशताधीकृतमुग्धलोकै ॥

विडविता हृत जडैर्वितडा—

पाडित्यकडूलतया चिलोकी ॥ ४ ॥

अर्थ.—जेने कदाग्रहथकी घणो गर्व वध्यो छे, अने स्वरूपित ज्ञानने अशे करी भणिक जीवोने जेणे आधका कीधा छे, एहवा जड प्राणीये पडिताइनी सरजे करीने हृत इति खेदे पादुग्रहारथकी त्रण लोक्ले पितडा कहता डाकडमाले गिटना करी छे ॥ ४ ॥

विधोर्विवेकस्य न यत्र दृष्टि—

स्तमोघन तत्त्वरविर्विलीनि ॥

अशुरुपद्धर स्थितिरेप नूनम्—

भद्रग्रहास्थूलमातिर्मनुष्य ॥ ५ ॥

अर्थ —जेना हृदयमा विवेकस्प चढनी दृष्टि नथी तथी घणो अधरार छे, अने तत्त्वस्प सूर्य अस्त पाम्यो छे तेथी त कृष्णपक्षली निशापत्र म्यतिगा छे, केमफे तन कदाग्रह छल्यो छे ॥ ५ ॥

कुर्तर्कदाव्रेण लुनाति तत्त्ववर्ती—

रमानमिच्यति दोपशुक्ष ॥

क्षिपत्यधः स्वादुफलं समाख्य-

मसदृग्रहः कोऽपि कुद्भविलासः ॥ ६ ॥

अर्थः—जे कदाग्रही छे ते कुविचाररूप दातरडे करी  
तच्चरूप वेलीने छेदे छे, अने पापरूप वृक्षने पाणी पाय छे; तथा  
समतारूप अमृत फलने हेडुं धूलमां नाखे छे; एवो कोई कदाग्रह-  
रूप अमावास्यानी रात्रीनो विलास छे ॥ ६ ॥

असदृग्रहग्रावमये हि चित्ते,

न क्वापि सद्मावरसप्रवेशः ॥

इहांकुराश्रितविशुद्धवोधः

सिद्धांतवाचां वत कोऽपराधः ॥ ७ ॥

अर्थः—ते कदाग्रही माणसनुं चित्त पश्यर जेबुं छे.  
जेम पश्यरने पाणी भेदे नहीं तेम जिनवाणीरूप रस ते कदाग्रही  
माणसमां प्रवेश करे नहीं, तेथी तेना चित्तरूप वृक्षमां शुद्ध वोध-  
रूप अंकुर प्रगटे नहीं; तो तेमां सिद्धांतनी वाणीनो शो वांक ? ॥ ७ ॥

ब्रतानि चीर्णानि तपोऽपि तसं,

कृता प्रयत्नेन च पिंडशुद्धिः ॥

अभूतफलं यत्तु न निन्हवानाम—

सदृग्रहस्यैव हि सोऽपराधः ॥ ८ ॥

अर्थः—जो पञ्चमहाव्रत पाव्यां, उग्र तप कीधां, उद्यमं  
करी वेंतालीस दोप रहित आहार लीधो, तेम छतां पण जे  
निहवादिक मुक्तिरूप फल न पाम्या ते अपराध सर्वे कदा-  
ग्रहनोंज छे ॥ ८ ॥

स्यालं स्ववुद्धिः सुगुरोश्च दातु-

रूपस्थिता काचन मोदकाली ॥

असद्ग्रहः कोऽपि गले ग्रहीता  
तथापि भोक्तु न ददाति दुष्टः ॥ ९ ॥

अर्थ.—योतानी बुद्धिरूप थालमा काइक शुद्ध ज्ञानरूप  
मोदकने गुरु पीरसगा उछ्या, पण रुदाग्रहे आवी गळुं पकड्यु,  
तेथी जमायु नही, एवो कदाग्रह दुष्ट छे ॥ ९ ॥

गुरुप्रसादीक्रियमाणभर्य

गृह्णाति नासद्ग्रहवास्ततः किं ? ॥  
द्राक्षा हि साक्षादुपनीयमाना,

क्रमेलकः रुटकभुद् न मुक्ते ॥ १० ॥

अर्थ.—जो गुरु प्रमन्न यहने अर्थ—उपदेश आपे छे,  
तोपण कदाग्रही पुरुप ते उपदेशने ग्रहतो नयी, तेथी शु थयु ?  
उपदेश तो काई सोटो नयी ए तो जेम प्रगटपणे मीठी द्राक्ष  
उट आगल मुकिये, तोपण तेने तजीने उट काटाने खाय छे ॥ १० ॥

असद्ग्रहात्पामरसगति ये,

मृच्चति तेपा न रतिर्वृधेषु ॥

विष्टासु पुष्टा किल वायसा नो

मिष्टान्ननिष्टा प्रसम भवति ॥ ११ ॥

अर्थ.—जे प्राणी कदाग्रह करी मूर्दनी सगत कर छे  
तेने पडितनी सोमत गमती नयी जेम कागडा विष्टाभोगी छे,  
तेने मधुर आहारनी इच्छा थती नयी तनी पेर ॥ ११ ॥

नियोजयत्येव मति न युक्तौ,

युक्ति मतो यः प्रसम नियुक्ते ॥

असद्ग्रहादेव न कस्य हास्योऽ-  
जले घटारोपणमादधानः ॥ १२ ॥

अर्थः—जेम कोई मूर्ख नदीना जल उपर घडो भरीने भूके, तेने जोईने कोण हसे नहीं ? केमके अगाध निर्मल जलना विस्तार आगल एक तुच्छ मात्र जले भरेलो घडो ते शी गण-त्रीमां छे ? तेम गुरुना मुखथी शास्त्रयुक्ति सांभलीने तेमां पोतानी मति जोडे नही अने पोतानी युक्तिवडे ऊलहुं बोले, जे तमारी युक्तिने नमस्कार होजो ! एवा कदाग्रहीने देखी कोण हांसी न करे ? इहां गुरुनो उपदेश ते नदीना जल तुल्य छे. तेना आगल कदाग्रही घट केम नीभे ? ॥ १२ ॥

असद्ग्रहो यस्य गतो न नाशं,  
न दीयमानं श्रुतमस्य शास्यम् ॥  
न नाम वैकल्यकलंकितस्य,  
प्रौढा प्रदातुं घटते नृपश्रीः ॥ १३ ॥

अर्थः—जेम कोइ वेला आदमीने महोटी राज्यलक्ष्मी आपवी घटे नही, तेम जेहने कदाग्रह गयो नथी तेवा प्राणीने धर्मोपदेश आपवो योग्य नथी ॥ १३ ॥

आमे घटे वारि धृतं यथा सद्विनाशयेत्स्वं च घटं च सद्वः ॥  
असद्ग्रहस्तमतेस्तथैव श्रुतात्प्रदत्तादुभयोर्विनाशः ॥

अर्थः—जेम काचा घडामां पाणी भरवाथी घडानो तेमज पाणीनो नाश थाय छे, तेमज कदाग्रही माणसने शास्त्र शीखवतां शास्त्रनो तेमज तेनो पोतानो बंनेनो विनाश थाय छे ॥ १४ ॥  
असद्ग्रहस्तमतेः प्रदत्ते हितोपदेशं खलु यो विमूढः ॥  
शुनी शररि स महोपकारी कस्तूरिकालपेनमादधाति ॥

अर्थ—जेम विषये मर्यु मुख देखी कुतरीने उपकार करवा कस्तूरीनो लेप करे ते मूर्ख जाणनो, तेम कदाग्रही प्राणीने उपकार करणाने हितोपदेश आपे ते पण मूर्ख जाणनो ॥ १५ ॥  
कष्टेन लब्ध विशदागमार्थ ददाति योऽसदृग्रहदृपिताय ।  
म वियुते पत्नशतोपनीत बीज वपन्लूपरभूमिदेशे ॥६

अर्थ—जेम घणा उद्यमे अनाजना बीज भेगा करी उहुर जमीनमा वारे, ते आगल जता सदाय खेद पासे छे, वेम पठिव प्राणी गुरुनो विनय करी कटे करी निर्मल आगम सिद्धारना अर्थने पाम्यो होय, ते जो कदाग्रहे करी दुष्प्रित प्राणीने वेहनो अर्थ शीखमानो उद्योग करे तो वेदी अते रोद पासे छे ॥ १६ ॥

शृणोति शास्त्राणि गुरोस्तदाज्ञा,  
करोति नासदृग्रहवान् कदाचित् ॥  
विवेचकत्वं मनुते च सार  
ग्राही भुवि स्वस्य च चालणीवत् ॥ १७ ॥

अर्थ—नो गुरु पासेवी शास्त्र सामले तो पण कदाग्रही ऐ होय ते कोई काळे वे गुरुनी आना न माने. ते पोतानी मधे पोत एहू माने, ऐ इन र्व विद्यार्थिनी चरापर वहेचण कल यु, पण वे तो जेम पृथ्वीमा चालणीमाधी चाडीने सारमूर घस्तु फहाडी लेहने थाकी अमार घान्य रह ए वेहनो ते ग्राही ए ॥ १७ ॥

दमाप चानुर्घमधाय शास्त्र प्रतारणाय प्रतिभापद्वत्य ॥  
गर्गय धीरत्यमदोगुणानाम भद्रग्रहस्ये विपरीतसृष्टि

अर्थ—माट गहो इति अस्यं ! विधावाये कदाग्रही

माणसमां विपरीत गुण सृज्या छे ! जेवा देव तेवी पात्री, अने  
मेघजल सर्पना मुखमां जैम विपुल्य थह जाय छे, ए कहेवतने  
विधाताये खेरी पाडी छे, केमके जे कदाग्रहीनी चतुराइ ते  
कपटने अर्थे थाय, अने शास्त्र भण्वुं ते मदने अर्थे थाय, तथा  
बुद्धि, डहापण अने उपदेश ते लोकने ठगवाना साधनने अर्थे  
थाय अने धर्यपिणुं ते गर्व करवाने अर्थे थाय ॥ १८ ॥

असद्ग्रहस्थेन समं समंता-  
त्सौहार्दभृदुःखमवैति ताहग् ।

उपैति यादकदली कुवृक्ष-  
स्फुटच्छ्रुटकंटककोटिकीर्णा ॥ १९ ॥

**अर्थः**—जैम केलनुं वृक्ष ते कंथेरादिक वृक्षने संगे कांटाये  
करी कोराय छे तेम जे प्राणी कदाग्रही साथे मित्राई करे ते अंते  
दुःखनो विपाक पासे छे ॥ १९ ॥

विद्या विवेको विनयो विशुद्धिः,  
सिद्धांतवाल्लभ्यसुदारता च ॥  
असद्ग्रहाद्यान्ति विनाशमेते,  
गुणास्तृणानीव कणाद्वाग्नेः ॥ २० ॥

**अर्थः**—जैम अग्निथी वासना समूह भस्मीभूत थाय छे  
तेम विद्या, विनय, विवेक, विशुद्धि अने सिद्धांत उपर बलभता-  
पणु अने उदारता ए सर्व कदाग्रहथी नाश पासे छे ॥ २० ॥

स्वार्थः प्रियो नो गुणवांस्तु कश्चिन्-  
मूढेषु मैत्री न तु तत्त्ववित्सु ॥  
असद्ग्रहापादितविश्रमाणां  
स्थितिः किलासावधमाधमानां ॥ २१ ॥

अर्थ—जे कदाग्रहीनी सोवते रहा तेने स्वार्थ प्रिय छे  
ते प्राणी अवगुणमत, मूर्ख साथे मिराई करे अने पडित साथे  
मिराइ करे नही, एगा कदाग्रहीनी सोवते रहा, जे अधममा  
अधम नीच प्राणी तेहनी ए स्थिति छे, ते कही ॥ २१ ॥

इदं विदस्तत्त्वमुदारवुद्धि—

रसदग्रह पस्तृणवज्जहाति ।

जहाति नैन कुलजेव घोपिद—

गुणानुरक्ता दयिता यशःश्री ॥ २२ ॥

अर्थः—एम जाणीने तच्चने ओलखनार मोटी बुद्धि-  
वाला प्राणी कदाग्रहने तृणखलानी पेठे छाडे, तेने जेम कुलवती  
स्त्री भरतारने तजती नथी तेम गुणरागी एवी जे यश-कीर्ति-  
रूप लक्ष्मी स्त्री छाडती नथी ॥ २२ ॥

इति कदाग्रहत्यागाधिकार चतुर्दशः ॥  
इति मद्दोपाध्यायश्रीयशोविजयगणिविरचिते  
अध्यात्मसारप्रकरणे चतुर्थं प्रबन्ध ॥



## योगाधिकारः

असद्ग्रहव्यथाद्वांतमिथ्यात्वविषयीप्रुषः ॥

सम्यक्त्वशालिनोऽध्यात्मशुद्धेयोगः प्रसिध्यति ॥१॥

कर्मज्ञानविभेदेन स द्विधा तत्र चादिमः ॥

आवश्यकादिविहितः क्रियारूपः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥

**अर्थः**—हवे कदाग्रहना नाशथी मिथ्यात्वरूप अंघकारनो विषय गयो छे जेमांधी एहवा समकिते करी उज्ज्वल अंतःकरण थ्यां छे जेहना एवा जे प्राणी तेमने अध्यात्मनी शुद्धिथकी योग प्रसिद्ध रीते प्रगटे ॥ १ ॥ ते योगना बे भेद छे. एक कर्म-योग अने वीजो ज्ञानयोग. तेमां कर्मयोग ते आवश्यकादिक जे क्रिया करवी ते रूप कह्यो छे ॥ २ ॥

शारीरस्पंदकर्मात्मा यदयं पुण्यलक्षणं ॥

कर्मात्मनोति सद्गोगात्कर्मयोगस्ततः स्मृतः ॥ ३ ॥

आवश्यकादिरागेण वात्सल्याद्वगवदगिरां ॥

प्राप्नोति स्वर्गसौख्यानि न घाँति परमं पदं ॥ ४ ॥

**अर्थः**—शरीरचेष्टारूप ते कर्मात्मा कहिये, ए योग पुण्य-रूप छे. ते रुडा भोग थकी कर्मने विस्तारे छे. ते माटे एने कर्म-योग कहिये ॥ ३ ॥ आवश्यकादिक क्रियाने रागे तथा जिन-वाखीने विलासे करीने स्वर्गना सुखने पासे; पण ए योगे मुक्ति-पदने न पासे ॥ ४ ॥

ज्ञानयोगस्तपः शुद्धमात्मरत्येकलक्षणं ॥

हंद्रियार्थोन्मनीभावात्स मोक्षसुखसाधकः ॥ ५ ॥

न परप्रतिबंधोऽस्मिन्नल्पोऽप्येकात्मवेदनात् ॥

शुभं कर्मापि नैवात्र व्याक्षेपायोपजायते ॥ ६ ॥

अर्थः—जीनो ज्ञानयोग तेहने कहिये, जे तप शुद्धिपैणे  
आत्माने भिषे रति पामे, ते एक लक्षण अने हृद्रियोना विषयथी  
दूर रहेहु ते शीजु, एवा लक्षणे युक्त जे योग तेने पामेलो पुरुप  
ते मोक्षसुखने साधे ॥ ५ ॥ एक आत्मज्ञानयोगना ज्ञानमा  
बीजो प्रतिग्रंथ नथी, अने जे कर्मधी मोक्षमा जता चार लागे  
ते शुभ कर्म पण नयी ॥ ६ ॥

न श्वप्रमत्तसाधुना क्रियाप्यावश्यकादिका ॥

नियता ध्यानशुद्धत्वावदन्यरप्यद स्मृत ॥ ७ ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥

आत्मन्येव च सतुष्टस्तस्य कार्य न विद्यते ॥ ८ ॥

अर्थः—अप्रमत्तसाधुने आवश्यक प्रमुख जे क्रिया तेने  
पण करवाने भिषे प्रतिग्रंथ नयी, केमके तेने ध्यानरूप शुद्धि छे;  
माटे ॥ ७ ॥ वलि अन्य दर्शनमा पण श्रीकृष्ण कहे छे के—ह  
अर्जुन ! जे आत्मसुखमा तृप्त हो तेने आत्माने भिषे ज रति हो,  
अने सतोप हो जे आत्म सुखमा सतुष्ट हो, एवो जे जीव तेने  
काई पण कर्तव्य नयी ॥ ८ ॥

नैव तस्य कृतेनार्था नाकृतेनेह काश्चन ॥

न चास्य सर्वभूतेषु कथिदर्थव्यपाश्रय ॥ ९ ॥

अवकाशो निपिद्धोऽस्मिन्नरत्यानदयोरपि ॥

ध्यानावष्टभत व्यास्तु तत्किधाणा विकल्पन ॥ १० ॥

अर्थः—ते प्राणीने कार्य करवे अर्थ नयी, तेमज न  
करवायी रोट पण नयी; तेने सर्व भूतने भिषे काई प्रयोजन नयी  
॥ ९ ॥ ए उकाण अरतिनो जने जानदनो अवकाश नयी, केमके  
ध्याननी स्थिगताधी ते भ्रियानो भिक्षन्य पण केम होय ? ॥ १० ॥

देहनिर्वाहमात्रार्था याऽपि भिक्षाटनादिका ॥

क्रिया सा ज्ञानिनोऽसंगान्नैव ध्यानविधातिनी ॥११॥  
रत्नशिक्षाद्वग्न्या हि तन्नियोजनद्वग्न्यया ॥

फलभेदात्तयाचारक्रियाप्यस्य विभिन्नते ॥ १२ ॥

अर्थः—देह-निर्वाहरूपे मुनिने गोचरी प्रमुख जे क्रिया ते क्रिया ज्ञानीना असंगानुष्टानथी ध्यानमां विन्न करे नहीं ॥ ११ ॥ रत्नमाणिक्यपरीक्षाना ग्रंथ जुदा अने नजर-परीक्षा पण जुदी, ग्रंथ भणीने जेम नजर-परीक्षामां फलभेदथी प्रवर्त्ते छे, तेम आचारक्रिया पण फलभेदे करी भिन्न भिन्न छे, एटले भेदवंती छे ॥ १२ ॥

ध्यानार्था हि क्रिया सेयं प्रत्याहृत्य निजं मनः ॥

प्रारब्धजन्मसंकल्पादात्मज्ञानाय कल्पते ॥१३॥  
स्थिरीभूतमपि स्वांतं रजसा चलतां ब्रजेत् ॥

प्रत्याहृत्य निष्ठृणाति ज्ञानी यदिदमुच्यते ॥१४॥

अर्थः—जो पोताना मनने पालुं वालीने जन्मसंकल्पथी मांडीने आत्मज्ञान भणी कल्पिये तो ते क्रिया ध्यानरूप छे ॥१३ ॥ स्थिर थयेलुं जे मन ते ५४ रजोगुणे करी चपलताने पामे, तेहने पालुं वाली तेनो निग्रह करे तेने ज्ञानी कहेवो ॥ १४ ॥

शनैः शनैरूपशमेदवुद्धया धृतिगृहीतया ॥

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ॥१५  
यतो यतो निःसरति मनश्चंचलमस्थिरं ॥

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ १६ ॥

अर्थः—हे अर्जुन ! मनने धीरे धीरे धीरजवडे अने बुद्धिवडे स्थिर करवुं, पछी ते मन जेवारे आत्माना स्वरूपने

निष जाय तेवारे काड थीजु चितन करनानी जस्त नथी  
॥ १५ ॥ मन चचल ने अस्थिर ते तेने ज्या ज्या जाय त्या  
त्याथी पाहु गालीने आत्मानी साथे नश करी राखु ॥ १६ ॥

अत एवाद्वद्वात कुर्याच्छान्नादिना क्रिया ॥

मकला विषयप्रत्याहरणाय महामति ॥ १७ ॥

श्रुत्वा पैशाचिकी वार्ता कुलवध्वाश्च रक्षण ॥

नित्य सयमयोगेषु व्यापृतात्मा भवेत्यति ॥ १८ ॥

**अर्थ—**—एम परदर्शनमा पण रुखु छे, माटे ज्या सुधी  
मन स्थिर न होय त्या सुधी शास्त्रोक्त त्रिया जेटली करिये  
तेटली सर्व सफल न याय जेगारे विषयत्याग याय तेपारज मफल  
याय, माटे जे प्राणी मनने विषयथी चाल्नामा उजमाल रह  
ते महामतिगाला जाणगा ॥ १७ ॥ जेम एक शेठना पुन देशा-  
तर गयो तेना घरनी सामेना एक त्रुप उपर एक भूत रहतो  
हतो ते छल पामी, पुनरु रूप वाग्ण करी तेनी स्त्री साथे  
लागु पत्थो एम करता ते शेठनो दीकरो पोताने घर आब्यो  
तेगारे घरमा लडाई चालगा लागी पठी रानदग्गार इन्सा-  
फले वास्ते गया तिहाथी भूतने घरमाथी काढवानु ठर्युं, पण ते  
नीकल्यो नहर्नी ने कहेगा लाग्यो के हु जगानो नयी, हु पण  
पुन तु ए वात सामळी वहुने लान लागी छेहे शेठने भूतने  
दैगी साथे युद्ध कर्नानु काम भवायु, अने वहुने घरनो धधो  
भजाव्यो, ए रीत अनाचार टाल्यो ग्रने वहुने रागी, तम मुनिये  
पण निगतर मयमना योगे आत्माने राखउ ॥ १८ ॥

या निश्चयैकलीनाना क्रिया नातिप्रयोजना ॥

व्यवटारदशास्थाना ता एतातिगुणावदा ॥ १९ ॥

कर्मणोऽपि हि शुद्धस्य अहासेवादियोगतः ॥  
अथतं मुक्तिहेतुत्वं ज्ञानयोगानतिक्रमात् ॥ २० ॥

अर्थः—जेणुं मन निश्चयमां लीन छे तेने क्रियानुं प्रयो-  
जन नथी. व्यवहारदशावालाने क्रिया ते अतिगुणकारी छे  
॥ १९ ॥ शुभ कर्मधी अने अद्वावुद्धिना योगथी अखंडपणे जे  
ज्ञानयोगने उल्लंघे नहीं तो तेने मुक्तिनो हेतु प्रगट थाय ॥ २० ॥  
अभ्यासे सत्तिकायापेक्षा योगिनां चित्तशुद्धये ॥

ज्ञानपाके शामस्यैव यत्परेरप्यदः स्मृतं ॥ २१ ॥  
आस्त्रक्षो मुनेयोगं कर्मकारणमुच्यते ॥

योगास्तु तस्यैव शामः कारणमुच्यते ॥ २२ ॥

अर्थ—जे रुडी क्रियानी अपेक्षाये अभ्यास करे छे ते  
योगीश्वरने चित्तशुद्धिने अर्थे ज्ञान परिपक्व करवाने उपशम कहुं  
छे एम अन्य दर्जनीओ पण कहे छे ॥ २१ ॥ हे अर्जुन !  
योग पामवाने इच्छता जे योगी छे तेहने कर्म तो एक कारण  
छे. जेवारं सर्व संकल्प शमी जाय तेवारे तेने ज्ञानयोगी कहियें.  
ते माटे ज्ञानास्तु तेज कारण छे ॥ २२ ॥

यदा हि नेंद्रियार्थेषु न कर्मस्वनुपज्यते ॥

सर्वसंकल्पसंन्यासी योगास्तु दोच्यते ॥ २३ ॥  
ज्ञानं क्रियाविहीनं न क्रिया वा ज्ञानवर्जिता ॥

गुणप्रधानभावेन दशासेवः किलैतयोः ॥ २४ ॥

अर्थ—जेवारे विषयथी विरमे, कर्मने विषे संलग्न न  
थाय, जेवारं सर्व संकल्प शमी जाय तेवारे तेहने योगास्तु कहियें  
॥ २३ ॥ क्रिया विना ज्ञान नथी, अने ज्ञान विना क्रिया नथी.

ए वेमा क्रिया ते गौण छे अने ज्ञान ते मुरय छे, एवो ए  
वेनो दिशीभेद कद्यो छे ॥ २४ ॥

ज्ञानिना कर्मयोगेन चित्तशुद्धिसुपेयुपा ॥

निरचयप्रवृत्तीना ज्ञानयोगाचिती तत् ॥ २५ ॥  
अत एव हि सुश्रद्धाचरणस्पर्शनोत्तरम् ॥

दु पालश्रमणाचारग्रहण विहित जिनै, ॥ २६ ॥

अर्थः—कर्मयोगे करीने मनशुद्धि पामेला अने निर्दोष  
पिहारी एहा जे ज्ञानी तेने ज्ञानयोग मुख्यपणे सेमनो उचित छे  
एवो वीतरागनो मत छे ॥ २५ ॥ ए माटे रुडी श्रद्धाये देश-  
पिरतिरूप चारित्रिनो स्पर्श कीभा पछी दु खे पाली शक्रिये एवा  
मुनिनो आचार जे सर्वपिरतिपणु छे ते लेनो एटले प्रभुये पछी  
सयम लेबु रुद्धु छे ॥ २६ ॥

एकोदेशेन सवृत्त कर्म यत्पौर्वभूमिक ॥

दोपोच्छेदकर तत्स्यादज्ञानयोगप्रवृद्धये ॥ २७ ॥  
अज्ञानिना तु यत्कर्म न तत्थित्तदोधन ॥

योगादेरतथाभावान म्लेच्छादिकृतकर्मवत् ॥ २८ ॥

अर्थ —कोइएक देश आश्रीने पूर्णभूमि ते पूर्णभवस्य  
सवृत्तपणे उत्तेशीने एटले देशयकी जे पहला वृत्त आदर्यो एहवी  
जे क्रिया ते पण दु सने टालनारी उे मली ज्ञानयोगनी वृद्धि-  
कर्त्ता थाय छे ॥ २७ ॥ अने अनानीनी जे क्रिया ते चित्तशुद्धि  
फरमाने श्रेये नहीं थाय, केमके तेहने ज्ञानयोगनो अभाव छे,  
माटे म्लेच्छना करेला कार्य सरसी ते जाणनी ॥ २८ ॥

न च तत्कर्मयोगेऽपि फल सकलपर्जनात् ॥

सन्ध्यासो ब्रह्मयोधाद्वा सामयत्यात्स्वरूपतः ॥ २९ ॥

नो चेदित्यं भवेवुद्धिगांहिंसादेरपि स्फुटा ॥  
श्येनाद्रा वेदविहिताद्विशेषानुपलक्षणात् ॥ ३० ॥

**अर्थः**—तो तेवा कर्मयोगे पण फल नथी. फल तो संकल्प वर्जे तेवारेज थाय छे. आत्मज्ञान विना त्याग पण नथी, अने एनुं स्वरूप सांबद्ध छे, माटे ब्रह्म जे ज्ञान तेना वोधथकी फल प्रगटे ॥ २९ ॥ जो कदापि एम बुद्धि न होय तेवारे तो गोहिंसादिकथकी म्लेच्छादिकने पण प्रगट शुद्धि होय, तथा सिंचाणाना वधथी वेदमां पशुयाग कह्या, ते थकी हिसक कर्मना योगे वेदीयानां अने म्लेच्छनां एक सरखां ज लक्षण छे; काँई विशेष नथी ॥ ३० ॥

सावद्यकर्म नो तस्मादादेयं बुद्धिविष्टवात् ॥  
कर्माद्यागते तस्मिन्नसंकल्पादबंधनं ॥ ३१ ॥  
कर्माप्याचारतो ज्ञातुर्सुक्तिभावो न हीयते ॥  
तत्र संकल्पजो बंधो गीयते यत्परैरपि ॥ ३२ ॥

**अर्थः**—एटला माटे बुद्धिना विपर्यासपणाथी सावद्यकर्म आदरबुं नही, अने जो दैवयोगे तेवा कर्म करवानुं उदय आव्युं तेवारे ते कर्म करवानो जो संकल्प नथी, तो ते कर्मनुं बंधन पण नथी ॥ ३१ ॥ सांसारिक क्रियानो जो आचार छे, तोपण ज्ञानीने मुक्तिभावनी हाण नथी, केमके संकल्पथी बंधन छे, एवुं अन्य दर्शनवालानुं पण कहेबुं छे, ते जुओ आगल कहे छे ॥ ३२ ॥

कर्मण्यकर्म यः पर्येद्कर्मणि च कर्म यः ॥  
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृतकर्मकृत् ॥ ३३ ॥  
कर्मण्यकर्म वाकर्म कर्मण्यस्मिन्नुभे अपि ॥  
नोभे वा भंगवैचित्र्यादकर्मण्यपि नो मते ॥ ३४ ॥

अर्थः—जे कर्मने विसर्जे, अकर्मपणु देखे छे, अने कर्म नथी करतो, अने जाणे छे जे हु करु तु, तेने माणसमा बुद्धिवत् कहिये ते करवापणाना कर्मने अकरवापणु देखे छे ते पोते पोताने स्वरूपे छे, एम वर्णी भगजाल प्रगटे छे ॥ ३३ ॥ निकर्म मार्गने पिषे नहीं माण्यु, ते अकरतु थयु, अने अकरवापणे जे कर छे तेना वे भागा छे, एम करवाना विचित्र भागा छे ॥ ३४ ॥

**कर्मनैः कर्मवैषम्यमुदासीनो विभावयन् ॥**

जानी न लिप्यते भोगैः पद्मपत्रमिवाभसा ॥ ३५ ॥  
पापांकरणमात्राद्वि न मौन विचिकित्सया ॥

अनन्यपरमात्मा स्यात् ज्ञानयोगी भवेन्मुनि ॥ ३६ ॥

अर्थ —उदासी भाववालो पिचितपणे कर्मनु पिपमपणु चितवे जेम कमलपत्र जलमा लेपातु नथी तेम ज्ञानी पुरुष भोगमा लेपातो नथी ॥ ३५ ॥ पाप न करवायी काढ मुनिपणु आपातु नथी सशय रहितपणे पोतज ज्ञानयोगमय परमात्मा थाय तेने मुनि कहिये ॥ ३६ ॥

**विषयेषु न रागी न द्वेषी वा मौनमनुते ॥**

सम रूप विद्स्तेषु ज्ञानयोगी न लिप्यते ॥ ३७ ॥  
सतत्त्वनितया यस्याभिममन्वागता डमे ॥

आत्मवान् ज्ञानवान्वेदधर्मग्रन्थमयो दि स ॥ ३८ ॥

अर्थ—विषयने गिषे जेने राग नवी तम द्वेष पण नथी तेने मुनि कहिये मध्यस्थपणे स्पादिकने जाणतो जे ज्ञानी योगी तेने लेप लागतो नथी ॥ ३७ ॥ जेणे तत्त्वनी ओलगाण-वडे समता वारण कीधी, तेनेज आत्मानी ओलगाण धड, अने तेन ज्ञानी तथा तेज धर्ममय तथा ग्रन्थमय कहनाय ॥ ३८ ॥

वैषम्यवीजमज्ञानं निदनंति ज्ञानयोगिनः ॥

विषयांस्ते परिज्ञाय लोकं ज्ञानंति तत्त्वतः ॥ ३९ ॥

इतश्चापूर्वविज्ञानाच्चिदानंदविनोदतः ॥

ज्योतिष्मंतां भवत्येते ज्ञाननिर्धृतकलमपाः ॥४०॥

अर्थः—संसारानुं विषयम् वीज जे अज्ञान छे ते वीजने ज्ञानयोगी वाली नांखे छे; तथा विषयादिकने ओलखीने तत्त्वथी लोकना स्वस्त्रपने जाणे छे ॥ ३९ ॥ ते अपूर्व अनुभवथी अने ज्ञानना आनंदमय विनोदथी महाज्योतिशंत थाय अने तेना पाप ज्ञाने करी बली जाय ॥ ४० ॥

तेजोलेघ्याविद्वच्छिर्या पर्यायक्रमवृच्छितः ॥

भाषिता भगवत्यादौ सेत्यंभूतस्य जायते ॥४१॥

विषयेऽपि समेक्षी यः स ज्ञानो स च पंडितः ॥

जीवन्मुक्तः स्थिरं ब्रह्म तथा चोक्तं परैरपि ॥४२॥

अर्थ—दीक्षापर्यायनी वृद्धिथी तेजोलेघ्यानी वृद्धि थाय छे, एम भगवती आदि सूत्रोमां कहुं छे. ते एवा प्राणीने प्रगट थाय ॥ ४१ ॥ जे विषयने विषे समझावे जुए, तेवा ज्ञानीने पंडित कहियें. वली जीवन्मुक्त अने स्थिर तथा ब्रह्म पण तेने ज कहियें ॥ ४२ ॥

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गच्छि हस्तिनि ॥

शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥४३॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ॥

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥४४॥

अर्थ—तेमज परदर्शनने विषे पण कहुं छे के, हे अर्जुन ! विद्या, विनय सहित ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुतर्क, चंडाल

ए सर्वने समदृष्टिये जुए छे तेने पडित कहिये ॥ ४३ ॥ एहामा  
जीवे द्वाहा बेठे थकेज जगत् सृष्टिने जीती लीधी ने रेनु मन  
समता पाम्यु, त निर्दोषपणे सम्यक् जे आत्मस्वरूप तेने पाम्यो,  
ते ग्रहज्ञाने रखो एम जाणु ॥ ४४ ॥

न प्रहृष्टेत्प्रिय प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रिय ॥

स्थिरबुद्धिरसमृद्धो ब्रह्मविद्व्याणि स्थित ॥ ४५ ॥  
अर्वागृदशाया दोपाय वैषम्ये माम्यदर्ढन ॥

निरपेक्षमुनीना तु रागद्वेषक्षयाय तत् ॥ ४६ ॥

अर्थ—जे रुडु मले हर्ष न करे अने भुडु प्रास ये  
शोक न धर, त स्थिर उद्विगालों चतुर प्राणी ग्रहनों जाण ग्रह्य-  
ज्ञाने रखो छे एम जाणु ॥ ४५ ॥ हेठली दशामालान ता जे  
मिष्मने पिषे समपणे जोउ ते दोषनु कारण छे, अने जे निरपेक्षी  
मुनि तेने तो मिष्मने समपणे जाउ त रागद्वेषनो दय करनार  
थाय छे ॥ ४६ ॥

रागद्वेषक्षयादेति ज्ञानी विषयशून्यता ॥

ठियते भियते वाऽय दृन्यते वा न जातुचित् ॥ ४७ ॥

अनुस्मरति नातीत नेव काक्षत्यनागत ॥

शीतोष्णसुखदु ग्रेषु समो मानापमानयोः ॥ ४८ ॥

अर्थ—रागद्वेषना क्षयथी ज्ञानी मुनि मिष्मनी शून्यता-  
पणाने पाम छे तने राड नेढी शुक नही, कोड भेदी शके नही,  
कोई हणी शुक नही, अमक त पोतानो आत्मा आत्मस्वरूपे माने  
छे ॥ ४७ ॥ त ज्ञानी पुर्स्प गई वस्तुने मभार नहीं अने अना-  
गत वस्तुने इच्छे नही, शीत अने उष्ण तथा सुख अने दुःख,  
यली मान अने अपमान ए सर्वैने समपणे माने छे ॥ ४८ ॥

जितेंद्रियो जितक्रोधो मानमायानुपद्रुतः ॥

लोभसंस्पर्शरहिनो वेदग्रेदविवर्जितः ॥ ४९ ॥

संनिरुद्ध्यात्मनात्मानं स्थितः स्वकृतकर्मभित् ॥

हठप्रयत्नोपरतः सहजाचारसेवनात् ॥ ५० ॥

अर्थ—जे क्रोध रहित, मान-मायाना उपद्रवे रहित, लोभना स्पर्श रहित, वेदोदय रहित, अने खेद रहित होय तेने जितेंद्रिय कहियें ॥ ४९ ॥ ते आत्माए करी आत्माने रोधी रह्यो, पोताना कर्या कर्मने भेदतो कदाग्रहथी विरम्यो, स्वाभाविक आचारने सेवतो ॥ ५० ॥

लोकसंज्ञाविनिर्मुक्तो मिथ्याचारप्रपञ्चहृत् ॥

उल्लस्तकंडकस्यानः परेण परमाश्रितः ॥ ५१ ॥

अद्वावानाज्ञया युक्तः शस्त्रातीतां ह्यशस्त्रवान् ॥

गतो दृष्टेषु निर्वेदमनिन्द्रुतपराक्रमः ॥ ५२ ॥

अर्थ—लोकसंज्ञाथी मृकाणां, मिथ्यात्व आचारनो टालनार, योगस्थानके उल्लिप्त थयो छे, एवो जे उल्कृष्ट भावे आत्मानो आश्रित थयो छे ॥ ५१ ॥ तया अद्वावंत, आज्ञायुक्त अने माठा अध्यवसायरूप जे शस्त्र तेथी वेगलो रहेलो, अने बाह्य शस्त्रथी रहित, देखीता पदार्थने विषे वैराग्यवान्, वली वल-बीर्यने अणगोपवनार । ५२ ॥

निष्ठिसदंडो ध्यानाग्निदग्धपापेन्धनव्रजः ॥

प्रतिस्रोतोऽनुगत्वेन लोकोत्तरचरित्रभृत् ॥ ५३ ॥

लब्धान् कामान्वहिः कुर्वन्नकुर्वन्वहुस्पतां ॥

स्फारीकुर्वन् परं चक्षुरपरं च निमीलयन् ॥ ५४ ॥

अर्थ—अने त्रिं दंड रहित, जेणे ध्यानरूप अंगिए करी

पापरूप काष्टना समृहने वाल्यो छे, जे सामे प्रगाहे चालवे करीने  
लोकोत्तर चारित्रनो धरनार ॥ ५३ ॥ तथा प्रिपयमुख पामीने  
ते सुख दूर करनार तथा माया—कपट अने क्रोधादिकने अणकरतो-  
यको ते ज्ञानचक्रुने पिकस्वर करतो अज्ञानरूप चक्रुने वध  
करतो थको ॥ ५४ ॥

पश्यन्नतर्गतान् भावान् पूर्णभावमुपागतः ॥  
भुजानोऽध्यात्मसाम्राज्यमवशिष्ट न पठ्यति ॥ ५५ ॥

अष्टो हि ज्ञानयोगोऽयमभ्यात्मन्येव यज्ञगौ ॥

बधप्रमोक्ष भगवान् लोकसारं सुनिश्चितम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—गली जे अध्यात्ममानने देखतो यको पूर्णभावने  
पामेलो, अभ्यात्मनी ठकुराइने भोगतो यको अन्य पदार्थने नथी  
जोतो ॥ ५५ ॥ ए उपर कद्यो त उत्कृष्ट ज्ञानयोग छे ए  
अध्यात्म ग्रथने प्रिप ग्रन्थ—मोक्ष पण भगवते निश्चये आचारागना  
लोकमार अभ्ययने कही छे ॥ ५६ ॥

उपयोगकसारत्वादाद्यममोहयोधत ॥

मोक्षास्तेर्युज्यते चैव तथा चोक्त परंरपि ॥ ५७ ॥

तपस्तिभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽप्यधिको मतः ॥

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्मायोगी भवार्जुन । ॥ ५८ ॥

अर्थ—मोक्षप्राप्तिने प्रिप उपर कहलो ज्ञानयोग घटे छे,  
केमके शीघ्रपणे ज्ञानजागृत एहरो उपयोगज मात्र एक सार  
छे, अने अन्यदर्शनीए पण एमज कह्यु छे ॥ ५७ ॥ तपसीथी  
योगी अधिक छे, जानीयी अने राजायी पण योगीने माँटो

कह्यो छे; ते माटे श्रीकृष्णे अर्जुनने कह्युं छे के-हे अर्जुन ! तर्म पण योगी थाओ ॥ ५८ ॥

समापत्तिरिह व्यक्तमात्मनः परमात्मनिः ॥

अभेदोपासनास्वपस्ततः श्रेष्ठतरो श्वयं ॥ ५९ ॥

उपासना भागवती सर्वभ्योऽपि गरीयसी ॥

महापापक्षयंकारी नथा चोक्तं परैरपि ॥ ६० ॥

**अर्थः**—माटे इहां आत्मानी समाधि प्रगटे छे. आत्मा तथा परमात्मा ए बेउने विषे अभेदपणे संबन्धप जे योग ते धर्णाज श्रेष्ठ छे ॥ ५९ ॥ माटे सर्वथी माटी अने मोटा पापने टाले एवी प्रभुनी सेवा छे, अने परदर्शनमां पण एवुंज कह्युं छे ॥ ६० ॥

योगिनामपि सर्वेषां सद्गतेनांतरात्मना ॥

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ ६१ ॥  
उपास्ते ज्ञानवान् देवं यो निरंजनमव्ययं ॥

स तु तन्मयतां याति ध्याननिर्धृत कल्पणः ॥ ६२ ॥

**अर्थः**—सर्वयोगीमां पण अंतरआत्माये भल्यो एवो श्रद्धावंत प्राणी तो तेहने कहिये, जे मुजने सेवे, ते मुज सरखो पुरुषोक्तम थाय, एम श्रीकृष्ण अर्जुनने कहे छे ॥ ६१ ॥ ज्ञानवंत, निरंजन अने अविनाशी देव जाणीने, जे पुरुष मने सेवे छे ते तन्मयीपणे थाय छे, अने जेणे महारा ध्यानथी पापवाली नाख्यां छे, हे अर्जुन ! ते पुरुष महारास्तपे थाय छे ॥ ६२ ॥

विशेषमप्यजानानो यः कुग्रहविवर्जितः ॥

सर्वज्ञं सेवते सोऽपि सामान्यं योगमास्तितः ॥ ६३ ॥

सर्वज्ञो मुख्य एकस्तत् प्रतिपत्तिश्च यावताम् ॥

सर्वेऽपि ते तमापन्ना मुख्य सामान्यतो बुधा ॥ ६४ ॥

**अर्थः**—जे प्रिशेषने अणजाणतो छे, तोपण जे कदाग्रहे रहित छे अने जे सर्वज्ञने सेवे छे ते पण सामान्य योगे आश्रित छे ॥ ६३ ॥ सर्व प्रमाणमा एक सर्वज्ञ तो मुख्य छे, तेहनी सेवाना करनार जेटला छे ते सर्वे तेहिज सर्वज्ञना भावने पामे, पण सर्वज्ञनु मुख्यपणु पडितो मामान्यथकी कहे छे ॥ ६४ ॥

न जायते विशेषस्तु सर्वयाऽसर्वदर्शिभिः ।

अतो न ते तमापन्ना विशिष्य भुवि केचन ॥ ६५ ॥

सर्वज्ञप्रतिपत्यशान्तुल्यता सर्वयोगिना ॥

दूरासन्नादिभेदस्तु तदभृत्यत्व निहति न ॥ ६६ ॥

**अर्थः**—ते सर्वथा प्रकारे सर्वज्ञ सर्वदर्शी तेवडे पण विशेष तो जाणतो नथी, तेथी ते कोई प्रिशेष भूमिकाने पाम्या नथी, एटले पृथ्वीमा कोई विशेष जाणपणे सर्वज्ञपणु पाम्या नथी ॥ ६५ ॥ सर्वज्ञपणाना जे प्रत्येक अश छे ते सर्व योगीने सरिखा छे, माटे हुकडा अने वेगलापणाना भेदथी तेहनु सेमकपणु काढ हणातु नथी ॥ ६६ ॥

माध्यस्थमवलब्यैव देवतातिशयस्य हि ॥

सेवा सर्वेवुधेरिष्ठा कालातीतोऽपि यज्ञगौ ॥ ६७ ॥

अन्येषामप्यय मार्गा मुक्ताविद्वादिवादिना ॥

अभिधानादिभेदेन तत्त्वरीत्या व्यप्तिस्यत ॥ ६८ ॥

**अर्थः**—माध्यस्थपणु अगलीने एटले देवताना अतिशयनु माध्यस्थपणु धारीने सर्व पडिते सेवा मानी छे कालधी अतीत छे, तोपण एम कहे छे ॥ ६७ ॥ चीजा पण मुक्तवादीनों

अने अविद्यादिकवादी जे परदर्शनी तेनो पण आ मार्ग छे, एटले पूर्वे कब्बो ते मार्ग छे, जो कं नामादिक भेदे करी कदापि जुदा छे; तोपण तच्च रीते जोतां एकज व्यवस्था छे ॥ ६८ ॥

**मुक्तोऽवुद्धोऽर्हश्चापि यदैश्वर्येण समन्वितः ॥**

**तदीश्वरः स एव स्पात् संज्ञाभेदोऽत्र केवलं ॥ ६९ ॥**  
अनादिशुद्ध इत्यादिर्यो भेदो यस्य कल्प्यते ॥  
**तत्तत्त्वानुसारेण मन्ये सांपि निरर्थकः ॥ ७० ॥**

**अर्थः—**—ते व्यवस्था कही देखाउ छे, कोई दर्शनी मुक्त कहे छे; कोई बुद्ध कहे छे, कोइक अर्हत् कहे छे; कोइक ऐश्वर्ययुक्त एटले ईश्वर कहे छे, ए सर्वे सर्वज्ञनी संज्ञाना भेद छे, बीजुं नथी ॥ ६९ ॥ तेमजं वली अनादिशुद्ध ईश्वर छे इत्यादिक भेद जे परदर्शनीओ कल्पे छे, ते भेद सिद्धांतने अनुसारे विचारीए तो मानवा पण निर्गर्थक छे ॥ ७० ॥

**विशेषस्यापरिज्ञानाद् युक्तीनां जातिवादिनः ॥**

**प्रायो विरोधतश्चैव फलाभेदाच्च भावतः ॥ ७१ ॥**  
अविद्याक्लेशकर्मादि यतश्च भवकारणं ॥  
**ततः प्रधानमेवैतत्संज्ञाभेदसुपागतं ॥ ७२ ॥**

**अर्थः—**—केमके जे विशेषने नहि जाण्याथी, उक्तियुक्तिना जातिवचनथी अने प्राये विरोधथकी भावथी फलनो अभेद छे, ए हेतु माटे ॥ ७१ ॥ जे अविद्या, क्लेश अने कर्म इत्यादिक जे संसारना कारण प्रगटे, ते केटलाएक दर्शनीओ जुदा जुदा कहे छे. एटले कोई अविद्या, कोई क्लेश, कोई कर्म, एम संज्ञाये करी भेद कहे छे, पण ए त्रये प्रधानपणे एकज छे ॥ ७२ ॥

यस्यापि योऽपरो भेदश्चित्रोपाधिस्तया तथा ॥

गीयतेऽतीतंहृतुभ्यो धीमता सोऽप्यपार्थकं ॥ ७३॥  
तत् स्यानप्रयामोऽय घत्तद्वेदनिस्त्वपण ॥

सामान्यमनुमानस्य यतश्च विषयो मत ॥ ७४ ॥

**अर्थ—**—ए अविद्यादिक ग्रणना गली वीना भेद कल्पनाये अनेक याय छे, तेथी अनेक प्रकारनी उपाधी निष्पजे, तेम तेम जाणिये जे हेतुनो अभाव याय छे, पण ते उषाविभेद पडितने निरर्थक छे एम जाणु ॥ ७३ ॥ तेथी आ स्याननो जे प्रयास ते भेदनु निस्त्वपण करताने अनुमाननो निषय ते सामान्य जाण्यो, केमके ज्या अनुमान प्रमाण फरिये त्या सामान्यपणे उपयोगी होय तेगारे अनुमान निष्पन्नो अभाव याय ॥ ७४ ॥

सक्षिप्तस्तुच्चिजिज्ञासोर्विशेषान घलग्लम् ॥

चारिसजीविनीचारज्ञातादत्रोपयुज्यते ॥ ७५ ॥  
जिज्ञासापि सता न्याय्या यत्परेऽपि वदत्यदः ॥

जिज्ञासुरापि योगस्य शब्दव्रद्धातिवर्त्तते ॥ ७६ ॥

**अर्थ—**—जेम मनीमनी नामा चांगे जे घामगुटी तेने ओलग्ननारी मोटी स्थिये ते बुटीने योगे भर्तग्ने पशु अपस्था माथी पुन्य यनाव्यो, तम मत्तेप स्त्रियालो विशेष ग्लग्नान क्यारे कद्याय ? जेगार तनी प्रीति माचे साची होय तेवारे कद्याय पग माची प्रीति रिनानु रिशेष घल ते घलमा न गणार ॥ ७५ ॥ माटे ए ग्रण जे कामादि योग तेने विष गत्पुरुषे जाणपणु गरम्हु उचित ते पर्युर्घमीनु रहु पग एवु ज छे हे अर्जुन ! जे पुन्य जानयोगने जाणगा इन्हे ते पुन्य परमात्मानी दिशाने पासे ॥ ७६ ॥

आर्ता जिज्ञासुरर्थार्था ज्ञानी चांति चतुर्विधाः ॥

उपासकाम्ब्रयस्तत्र धन्या वस्तुविशेषतः ॥ ७७ ॥

ज्ञानी तु शांतविष्टेपां नित्यभक्तिर्विशिष्यते ॥

अत्यासन्नो श्यसौ भर्तुरंतरात्मा सदाशयः ॥ ७८ ॥

अर्थ—एक दुःखी, वीजो जाणवानी इच्छावालो, त्रीजो धननो अर्थी अने चोथो ज्ञानी—ए चार प्रकारना हे अर्जुन ! मारा सेवको छे; पण ते मध्ये एक धनार्थी विना जे वीजा त्रण जातना सेवक ते वस्तुतत्त्वना जाण छे माटे धन्य छे—वस्त्राणवा योग्य छे ॥ ७७ ॥ ए त्रणने धन्य कहा तेमां पण जेनो विक्षेप शम्यो छे, अने नित्य भक्तिर्वंत एहवो ज्ञानी पुरुष जे चोथो ते मोटो जाणवो. ते ज्ञानी अमारी पासे अत्यंत नजीक रहे छे माटे श्रेष्ठ छे, केमके अंतरात्माए वर्ते छे, अने तेना आश्रय निर्मल छे; ते माटे ॥ ७८ ॥

कर्मयोगविशुद्धस्तद्ज्ञाने युंजीत मानसं ॥

अङ्गश्चात्रहधानश्च संशयानो विनश्यन्ति ॥ ७९ ॥

निर्भयः स्थिरनासाग्रदत्तद्विवृते स्थितः ॥

सुखासनः प्रसन्नास्यो दिश्यानवलोकयन् ॥ ८० ॥

अर्थ—हे अर्जुन ! कर्मयोगे विशुद्ध थको ते प्राणी ज्ञानमां पोतालुं मन जोडे छे, अने हे अर्जुन ! एक मूर्ख, वीजो अङ्गा रहित अने त्रीजो संशयभरंलो माणस ए त्रणे विनाश पासे छे ॥ ७९ ॥ निर्भय, नासिकाना अग्रभागने विषे दृष्टि राखीने स्थिर रहेनार, तथा निरंतर व्रतमां रहेनार, एहवो सुखासने वेठो, बली प्रसन्न मुख छे जेहरुं अने एकदृष्टि राखनार, आङ्गबलुं नहीं जोनार ॥ ८० ॥ . . .

देहमध्यशिरोग्रीवमवक धारयन्बुधः ॥  
 दत्तैरससृशन् दतान् सुश्लिष्टाधरपल्लवः ॥ ८१ ॥  
 आर्तरौद्रे परित्यज्य धर्मं शुक्ले च दत्तधी ॥  
 अप्रमत्तो रतो ध्याने ज्ञानयोगी भवेन्मुनिः ॥८२॥

अर्थ—केड, मस्तक अने कोट तेने पासरा धरतो, एटले शरीरनी चपलाइ-वाकाइ रहित एहो डाको, दाते करी दातने अणफरसतो एटले सर्व करतो नथी अने जेना होठ पछ्य रेउ रुडी रीते मलेला होय ॥ ८१ ॥ तया आर्त रौद्रध्यान छाढीने धर्म शुक्लध्यानमा उद्दिदीधी छे अने भारे अप्रमत्तपणे ध्यानमा रत यको एवो जे मुनि तेने ज्ञानयोगी रहेहो ॥८२॥

कर्मयोग ममभ्यस्य ज्ञानयोगममाहित ।  
 ध्यानयोग ममारुच्य मुक्तियोग प्रपश्यते ॥ ८३ ॥

अर्थ—ते मुनि कर्मयोगनो अभ्याम करी, चढगाने उज-माल थई, ज्ञानयोगरूप दोरडु झाली, समाधिपणे ध्यानयोग नीसरणीए चडीने मुक्तियोगरूप मदिरने पाम ॥ ८३ ॥

॥ इति योगाधिकार पचदशमो समाप्तं ॥



## अथ ध्यानाधिकारः

स्थिरमध्यवसानं यत्तद्यानं चित्तमस्थिरं ॥

भावना चाप्यनुप्रेक्षा चिंता वा तत्रिधा मतं ॥१॥

मुहूर्त्तात्भवेद्यानमेकार्थं मनसः स्थितिः ॥

वहृथसंक्रमे दीर्घाप्यचित्तवा ध्यानसंततिः ॥ २ ॥

**अर्थ—**चित्त चपल हो, पण ते चित्तने जे स्थिरपणे चित्तना अध्यवसायने प्रगट करे तेवारे तेने ध्यानयोगी कहिये. एक भावना, बीजी अनुप्रेक्षा, अने त्रीजु चिंतानुं ध्यान—ए त्रण प्रकारे चित्त चपल थाय हो ॥ १ ॥ अंतर्मुहूर्ते ध्यान होय, पण जिहां एक ठामे एक अर्थने विषे वणा अर्थनुं संक्रमण थाय, एवी मननी स्थिति होय तिहां ध्याननी अविच्छिन्न दीर्घपणे परंपरा थाय. तिहां काँई अंतर्मुहूर्तनो नियम नथी ॥ २ ॥

आर्त रौद्रं च धर्मं च शुक्रं चेनि चतुर्विधं ॥

तत्स्याङ्गेदाविह द्वौ द्वौ कारणं भवमोक्षयोः ॥३॥

शब्दादीनामनिष्टानां वियोगासंप्रयोगयोः ॥

चित्तनं वेदनायाश्च व्याकुलत्वमुपेयुषः ॥ ४ ॥

**अर्थ—**आर्त, रौद्र, धर्म ने शुक्र—ए चार ध्यानना ऐद हो. ते मध्ये प्रथमनां वे ध्यान ते संसारनां कारणिक हो, अने पाछलां वे ध्यान ते मुक्तिनां कारणवाची हो ॥ ३ ॥ तेमां प्रथम आर्तध्यानना चार भेद कहे हो, प्रथम अनिष्ट जे शब्दादिक, तेनो वियोग वांछे के रखे अनिष्टनो संयोग वने तेम अनिष्ट मले जे पीडा थाय तेसुं चित्तन करे तेथी व्याकुल थाय ॥ ४ ॥

डषाना प्रणिधान च सप्रयोगवियोगयोः ॥

निदानचित्तन पापमार्त्तमित्य चतुर्विधम् ॥ ५ ॥

कापोतनीलकृष्णाना लेठ्यानामत्र सभवः ॥

अनतिक्लिष्टभावाना कर्मणा परिणामतः ॥ ६ ॥

अर्थ—ब्रीजो भेद इष्टनु चित्तन करे, एटले रखे इष्ट गस्तुना सयोगनो वियोग थई जाय, ब्रीजो नियाणु फरे, चोयो रोगना औपधनी चिता फरे. ए चार आर्तध्यानना प्रकार हे ॥ ५ ॥ ए मध्ये कापोत, नील, कृष्ण ए त्रण लेश्यानो सभव हे, केमके जेमा अति हिष्ट भावना नयी एसी कर्मनी परिणतिना परिणामे करी ए त्रण लेश्यानो सभव हे ॥ ६ ॥

कदन रुदन प्रांच्छः शोचन परिदेवन ॥

ताडन लुचन चेति लिंगान्यस्य विदुर्बुधाः ॥ ७ ॥

मोघ निदन्निज कृत्यं प्रशासन् परमपदः ॥

विस्मितः प्रार्ययन्नेता. प्रसक्तश्चैव मुर्जनः ॥ ८ ॥

अर्थ—उकोर करवो, ऊचे स्मरे रडगु, शोचना परवी, नाम दइने रडु, मारवु, माथाना बाल तोडवा हत्यादिकने पेडित आर्तध्यानना लक्षण कह हे ॥ ७ ॥ अम गदवुद्धि छीए एम कहीने पोतानु कार्य निदे, अम शु पालीशु ? मुक्तिमार्ग तो महोटो हे, एम प्रशासा करे, एम विस्मित थको लोक पासे मागतो फर हत्यादिक दुर्जननी रीत हे ॥ ८ ॥

प्रमत्तश्चेद्रियार्थपु गृज्जो धर्मपराद्भुवः ॥

जिनोत्तमपुरस्कुर्वन्नार्त्तध्याने प्रवर्तते ॥ ९ ॥

प्रभत्तांतगुणस्यानानुगमतन्महात्मना ॥

सर्वप्रमादमूलत्वात्याज्यं तिर्यग्गतिप्रदं ॥ १० ॥

अर्थ—जे प्रमादी होय, विषयमां लीन होय, धर्मथी ऊलटो होय, जिनवाणीने गोपवे तेवो पुरुष आर्तध्यानमां प्रवर्त्ते ॥ ९ ॥ ए ध्यान उपलां गुणठाणां पामतां थकां प्रमादमां पाडे अने छट्टा गुणठाणा लगे रहे; माटे मोटा मुनिये सर्व प्रमादनुं मूळ तथा तिर्यच् गति पमाडे एवुं जाणीने ए ध्यानने छोड्युं ॥ १० ॥

निर्दयं वधवंधादिचिन्तनं निविडकुधा ॥

पिशुनासत्यमिथ्यावाक् प्रणिधानं च मायथा ॥ ११ ॥

चौर्यधीर्निरपेक्षस्य तिविक्रोधानलस्य च ॥

सर्वाभिशंकाकलुपं चित्तं च धनरक्षणे ॥ १२ ॥

अर्थः—हवे जे निर्दय होय, जीवनो वध-वधनादिक चितवे, आकरो क्रोधी होय, चाडीओ होय, जडुं बोले, मिथ्यात्वनुं बचन बोले, माया-कथट धरे ॥ ११ ॥ चारी करनार, परमार्थ रहित, क्रोधरूप अग्निये धमधमतो रहे, धन संचय करनार, धनने डाटी राखे, शंकाये मेलुं मन राखनार, एटले रखेने कोई मारुं धन जुए अने लड़ जाय ए रीते १ हिसानुवंधी, २ मृपानुवंधी, ३ चौर्यानुवंधी, ४ परिग्रहरक्षणानुवंधी ए चार प्रकार रौद्रध्यानना जाणवा ॥ १२ ॥

एतत्सदोपकरणकारणानुमतिस्थिति ॥

देशाविरतिपर्यंतं रौद्रध्यानं चतुर्विधं ॥ १३ ॥

कापोतनीलकृष्णानां लेद्यानामत्र संभवः ॥

अतिसंक्षिप्तरूपाणां कर्मणां परिणामतः ॥ १४ ॥

**अर्थः—** ए रीते ध्यानने करवे, कराववे अने अनुमोदवानी स्थितिये करी ए ध्यान दोपनु कारण छे ए ध्यान चोया अविरति गुणठाणा अने पाचमा देशविरति गुणठाणा सुधी होय, ए रीते रौद्रध्यानना चार भेद कष्टा ॥ १३ ॥ कापोत, नील अने कृष्ण ए त्रण लेश्यानो इहा सभव छे. ए अति सहिष्टरूप जे कर्म तेना परिणामस्थी होय छे ॥ १४ ॥

उत्सन्नवक्षुदोपत्व नानामारणदोपता ॥

हिसादिषु प्रवृत्तिश्च कृत्वाघ स्मयमानता ॥ १५ ॥  
निर्दयत्वाननुशायौ बक्षुमानः परापदि ॥  
लिगान्यत्रेत्यदो धीरैस्त्पाज्य नरकदुःखद ॥ १६ ॥

**अर्थः—** ए प्राये धणा दोपनु कारण ते नानाप्रकारना जीवने मारवाना दोषे करी हिसादिकमा प्रवृत्ति थाय, पाप करीने खुशमन्त्रीपणु माने ॥ ११ ॥ निर्दयपणु, पश्चात्तापपणु, परआपदाये राजीपणु अने महाविपरीपणु, ए चिन्हे करी ए ध्यान नरकना दुखनु आपनारु छे, माटे ए ध्यानने छड्यु ॥ १६ ॥

अप्रशस्ते इमे ध्याने दुरते चिरसस्तुते ॥

प्रशस्त तु कृताभ्यासो ध्यानमारोदुमर्हति ॥ १७ ॥  
भावना देशकाले च सप्तसत्तालबनक्रमात् ॥  
ध्यातव्यध्यानानुप्रेक्षा लेद्यालिंगफलानि च ॥ १८ ॥

**अर्थः—** एसा ए वे ध्यान वे मद्वानिर्बल छे एनो धणो परिचय करीए, तो तेथी कडमा विपाक प्रगटे, माटे डाढ्या पुरुषे अभ्यास करता उज्ज्वल ध्याने चढबु योग्य छे ॥ १७ ॥ हवे धर्मध्यान कहे छे. देशकाल जोईने शुभ- भावना करवी,

पोतानी सत्ताना आलंबनना क्रमथी ध्येय ध्याता अने ध्याननी  
अनुप्रेक्षा ते शुभ लेश्याना चिन्हनुं फल छे ॥ १८ ॥

ज्ञात्वा धर्म ततो ध्यायेच्च तस्मस्तत्र भावनाः ॥

ज्ञानदर्शनचारित्रवैराग्याख्याः प्रकीर्तिताः ॥ १९ ॥

निश्चलत्वमसंमोहो निर्जरा पूर्वकर्मणां ॥

संगादांसा भयोच्छेदः फलान्यासां यथाक्रमात् ॥ २० ॥

**अर्थ—**ज्ञानभावना, दर्शनभावना, चारित्रभावना अने  
वैराग्यभावना ए चार भावनाने धर्म जाणी ध्याववी ॥ १९ ॥  
तेमां ज्ञानभावनाथी निश्चलपणुं थाय अने दर्शनभावनाथी अमूढ-  
पणुं थाय. वली चारित्रभावनाथी पूर्वकर्मनी निर्जरा थाय अने  
वैराग्यभावनाथी स्त्रियादिकनो संग तथा पुद्धलनी इहा अने भय  
तेनो उच्छेद थाय. ए रीते ए चार भावनानां फल जाणवां ॥ २० ॥

स्थिरचित्तः किलैताभिर्याति ध्यानस्य योग्यतां ॥

योग्यतैव हि नान्यस्य तथा चौक्तं परैरपि ॥ २१ ॥

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथिवलवद्वद्वद्वं ॥

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करं ॥ २२ ॥

**अर्थ—**ए भावनामां जेनुं चित्त स्थिरं होय तेने ध्यानमां  
स्थिरता रहे. माटे ते प्राणी ध्याननी योग्यता पामे; पण  
वीजो कोई न पामे. तेमज परदर्शनमां पण कहुं छे, ते कहे छे  
॥ २१ ॥ अर्जुन पूछे छे—हे कृष्ण ! मन तो चंचल छे; अने  
शत्रुना सैन्य सरखुं दृढ छे, ते मननो निग्रह हुं शी रीते करुं ?  
केमके पवननी पेठे मन दुष्कर अने अग्राह छे ॥ २२ ॥

असदाय महावाहो मनोदुर्निग्रह चले ॥

अभ्यासेन च कौतेय वैराग्येण च गृह्णते ॥ २३ ॥

असदयतात्मनो योगो दुप्राप्य इति मे मतिः ॥

वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायत् ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीकृष्ण कहे छे—हे महावाहो ! के० मोटी छे याहु जेनी एवा हे अर्जुन ! खरेखरु मन चपल छे तेनो निग्रह करवो तो कठण छे, तो पण हे कुतिना पुत्र ! हे अर्जुन ! अभ्यास अने वैराग्ये करीने मन वश थाय एबु छे ॥ २३ ॥ हे अर्जुन ! जेने पोतानो आत्मा वश नथी एवो जे पुरुष तेने ध्यानयोग पामरो दुफ्कर छे, एवी मारी मति छे, पण जेणे आत्माने वश कीधो छे तेने उद्यमे करी अने अभ्यासे करी ध्यानयोग पामरो सुलभ छे ॥ २४ ॥

सदृशप्रत्यपावृत्त्या वैतृष्ण्याद्विर्यतः ॥

एतच्च युज्यते मर्व भावनाभावितात्मनि ॥ २५ ॥

श्रीपशुक्लीष्टदु शीलवर्जितस्थानमागमे ॥

सदा यतीनामाज्ञास ध्यानकाले विशेषत ॥ २६ ॥

अर्थ—मर्यो प्रत्यय जे निश्चाम तेणे महित अने गाहा पदार्थनी तृष्णाये रहित तथा शुद्ध भावनाये भावीत पुरुषने ए आत्मा वश करवो सर्व प्रकारे घटे छे ॥ २५ ॥ स्त्री, पशु, नपु सक, दुःशीलादि रहित एहरी वसती मुनिये सेव्ही, एम आगमपा मुनिने सदाय प्रभुए आज्ञा करी छे, तेमा पण ध्यानप्रेलाये तो विशेषपणे कही छे एम जाणयु ॥ २६ ॥

स्थिरयोगस्य तु आमे विशेष, कानने बने ॥

तेन यत्र समाधान स देशो ध्यायतो मतः ॥ २७ ॥

यत्र योगसमाधानं कालोऽपीष्टः स एव हि ॥

दिनरात्रिक्षणादीनां ध्यानिनो नियमस्तु न ॥२८॥

अर्थ—स्थिरयोगवालाए गाममां अने विशेषे करीने बगडामां तथा बनमां जिहां चित्त समाधीमां रहे ते स्थानके ध्यान करबुं ॥ २७ ॥ जे बहुत योग स्थिर रहे ते काल रुडो समजबो; पण ध्यानवालाने दिवस अथवा रात्रीनो नियम नथी ॥ २८ ॥ यैवावस्था जिता या तु न स्याज्ञानोपदातिनी ॥

तथा ध्यायेन्निपणो वा स्थितो वा शयितोऽथवा ॥२९॥  
सर्वासु मुनयो देशकालावस्थासु केवलं ॥

प्राप्तास्तन्नियमो नासां नियता योगसंस्थिता ॥३०॥

अर्थ—ध्यानवंत मुनिने जे अवस्थाये, जे टेकाणे अने जे बेलाये ध्यानने व्यवदात न लागे ते ठेकाणे, ते बेलाये, ते रीते बेठा, ऊमा अथवा सूता ध्यान करबुं ॥ २९ ॥ सर्व देश-काल अवस्थाने विषे रह्या जे, मुनि तेने काँड़ नियम नथी, केमके ते नियतपणे योगमां स्थिर रह्या छे ॥ ३० ॥

वाचना चैव पृच्छा च परावृत्यनुचितनं ॥

क्रिया चालंवनानीह सज्जर्मावद्यकानि च ॥ ३१ ॥  
आरोहति दृढद्वयालंवनो विपमं पदं ॥

तथा रोहति सज्जयानं सूत्राद्वालंवनाश्रितः ॥ ३२ ॥

अर्थ—वाचना, पृच्छना, परावर्तना अने अनुप्रेक्षा ए धर्मनां आलंवन इहां कहां, ते अवश्यकरणी छे ॥ ३१ ॥ जे प्राणी खरी वस्तुनो आलंवक छे ते प्राणी कठण ठेकाणे पण जेम चडे तेम जे जैन सूत्रादिकनो आलंवक छे ते प्राणी रुडे ध्याने पण चडे ॥ ३२ ॥

आलयनादरोद्भुतपत्यूहक्षययोगतः ॥

ध्यानाश्चारोहणश्रव्णो योगिना नोपजायते ॥ ३३ ॥

मनोरोधादिको ध्यानप्रतिपात्तिक्रमो जिने ॥

शेषेषु तु यथायोगसमाधान प्रकीर्तित ॥ ३४ ॥

अर्थ—आलयनना आदरथी प्रगत्यो जे पिघनो क्षय तना योगयी ध्यानरूप पर्वत उपर चढता, योगीश्वरने अष्टपश्च थतु नथी ॥ ३३ ॥ योगनिरोध ध्यान तो केमलीने छे मन-रोधकरण इत्यादि अनुक्रम जिनमतमा ले नाकी नीजाँ दर्शनमा तो जेम नजरमा आउ तेम योगनु समाधान कह्यु छे ॥ ३४ ॥

आज्ञापायविपाकाना सस्थानस्य च चितनात् ॥

धर्मध्यानोपयुक्ताना ध्यातव्य स्याच्चतुर्विध ॥ ३५ ॥  
नयभगप्रमाणाढ्या हेतूदाहरणानिता ॥

आज्ञा ध्यायेजिनेङ्गाणामप्रामाण्यकुलकिता ॥ ३६ ॥

अर्थ—आज्ञा, अपाय, विपाक अने सस्थान ए चार भेदना चितनयकी धर्मध्यानगालाये धर्मध्यान करु ॥ ३५ ॥ मातनय, सप्तमगी, चार प्रमाण महित तथा हतु उदाहरणे सहित अने अप्रमाणरूप दूषणे रहित एरी जिनेश्वरनी आज्ञा ध्यावपी ए प्रथम भेद ॥ ३६ ॥

रागद्वेषकपायादिपीडिताना जनुप्मता ॥

ऐदिकासुष्मकास्तास्तानापायानितचितयेत् ॥ ३७ ॥  
ध्यायेत्कर्मविपाक च त त योगानुभावज ॥

प्रकृत्यादिचतुर्भद्र शुभाशुभविभागत ॥ ३८ ॥

अर्थः—जे जीव राग, द्वेष, कपायवडे पीडाया छे, ते आ

लोक ने परलोक संवधी कष्ट ते व्रीजे पाये चितवे ए व्रीजो भेद.  
॥ ३७ ॥ जे योगना अनुभवथी थयो अने प्रकृति, स्थिति,  
रस, प्रदेशना वंधथी नीपज्यो एहवो जे कर्मनो विषाक तेने  
शुभाशुभ वहेचणथी ध्यावे ए व्रीजो भेद ॥ ३८ ॥

उत्पादस्थितिभंगादिपर्यायैर्लक्षणै पृथक् ॥

भैदैर्नामादिभिलौकसंस्थानं चिंतयेद् भूतं ॥ ३९ ॥  
चिंतयेत्तत्र कर्त्तारं भोक्तारं निजकर्मणां ॥  
अरूपमव्यर्थं जीवसुपयोगस्वलक्षणं ॥ ४० ॥

**अर्थः**—उत्पाद, व्यय अने ध्रुव, काल तथा भंगादि  
पर्याय लक्षणे करी जुदा जुदा भेदें नाम, स्थापना, द्रव्य, भावभेदे  
करीने चौद राजलोकतुं संस्थान धारीने चितवे ॥ ३९ ॥ तिहाँ  
पोताना कर्मनो कर्त्ता-भोक्ता आत्मा छे, एम चितवे. ए जीव  
अरूपी, अविनाशी अने उपयोग लक्षणे युक्त छे, एम चितवे  
ए चोथी भेद ॥ ४० ॥

तत्कर्मजनितं जन्मजरामरणवारिणा ॥

पूर्ण मोहमहावर्त्तकामौर्वानलभीषणं ॥ ४१ ॥  
आशामहानिलापूर्ण कषायकलशोच्छलत् ॥  
असद्विकल्पकल्पोलचक्रं दधतमुडतं ॥ ४२ ॥

**अर्थः**—हवे कर्मजनित संसारसमुद्र वखाणे छे ते  
जन्म, जरा अने मरणरूप जले पूर्ण भयों छे, तथा मोहरूप मोटा  
आवर्त्त, तद्रूप भमरी अने कामरूप वडवानले करी भयंकर ॥ ४१ ॥  
आशारूप प्रचंडवायुवडे भरपूर, कषायरूप चार कलशाये युक्त  
अने माठा विकल्परूप महाउद्धत कल्पोल जिहाँ उउले छे एवो  
मवसमुद्र भयंकर छे ॥ ४२ ॥

हृदि श्रोतसिक्षावेलामपातदुरतिकमम् ॥

प्रार्थनावल्लिसतान दुपुरविषयोदर ॥ ४३ ॥

अज्ञानदुर्दिन व्यापद्विद्युत्पातोद्भवद्धय ॥

कदाग्रदक्षवातेन हृदयोत्कृपकारिण ॥ ४४ ॥

**अर्थ—**—बली ते समुद्रमा मनमा श्रोतसिक्षा एटले जे हर्ष तथा शोकनु भरावु ते रूपनेल एटले भरति कहिये, माटे जो एमा पत्थो तो पठी नीकळवु घणु कठण छे, अने याचनारूप संगालनो समूह छे जेने पिपे, तथा दुखे पूर्ण थाय एतो पिपय रूप मन्यभाग छे जेनो ॥ ४३ ॥ जिहा अवकार व्याप्य एउ अज्ञानरूप गादलु छे, तथा जेमा आपदारूप वीजली पडगानो भय छे, अने कदाग्रहरूप खराप परननो उड्हर यथो छे, तेण करीने ज्ञान नजरमाढानु तो हैयु तुजे, एहरो कर्मजनित समुद्र चिह्नामणो छे ॥ ४४ ॥

विपिधव्याधिसवधमस्यकच्छपमकुल ॥

चितयेच भग्नभोवि चलद्वापाद्रिङ्गम ॥ ४५ ॥

तस्य मतरणोपाय सम्यक्त्वद्वद्वधन ॥

यहुशीलागफलक ज्ञाननिर्यामिकानित ॥ ४६ ॥

**अर्थ—**—जे समुद्र पिपिप जातिना जे गेगना सपर-  
रूपी मच्छ अने काचगाये रुरी आहुल छे, तथा जेमा चचला,  
शून्यता अने गर्व त रूप जेदोप तद्रूप महोटा पर्वत छे, एवा भप-  
रूप समुद्रने चितरे ॥ ४५ ॥ हवे एवा समुद्रथी तरजानो  
उपाय, ते समक्षितरूप दृढवधन छे जिहा, अने जेने अढार हजार

शिलांग रथरूप पाटीयां जळ्यां छे, तथा ते जहाज ज्ञान-  
रूप चलावनार निर्यामक जे नाखुदा तेणे सहित छे ॥ ४६ ॥  
संवरास्ताश्रवच्छिद्रं गुप्तिगुप्तसमंततः ॥

आचारमंडपोद्दीपापवादोत्सर्गभूद्वयं ॥ ४७ ॥  
असंख्यैर्दुर्धरैयोर्धर्दुःप्रधृष्यं सदाशयैः ॥

मद्योगकूपस्तंभाग्रन्यस्ताध्यात्मसितांशुकं ॥ ४८ ॥

**अर्थः**—वली ते जहाजनां पाटीआंने विषे रह्यां जे  
छिद्रो तेहने संवररूपी कीचड तट्रूप तेलवडे पुर्यां छे, तथा  
मनोगुप्तिरूप गृप्त सुकान ते मार्ग वतावे छे, तेणे करी ते वहाण  
समुं चाले छे, तथा आचाररूप मंडपे शोभे छे, वली ते वहाणमां  
उत्सर्ग अने अपवादरूप वे जातनो माल भरेलो छे ॥ ४७ ॥ जे  
वहाणमां शुद्ध अध्यवसायरूप वणा वलवंत सुभटो जे राग-द्वेशादि  
शत्रुने दुःप्रधृष्य छे; तथा भलो जे योगरूप कुओ जे थंभ तेना  
उपर अध्यात्मरूप उज्वल सड खेंच्यो छे जिहां ॥ ४८ ॥

तपोऽनुकूलपवनोद्भुतसंवेगवेगतः ॥

वैराग्यमार्गपतितं चारित्रवहनं श्रिताः ॥ ४९ ॥  
सञ्चावनाख्यमञ्जूषान्यस्तसञ्चित्तरत्नतः ॥

यथाऽविघ्नेन गच्छांति निर्वाणनगरे बुधाः ॥ ५० ॥

**अर्थ—**ते सढथी तपस्यारूप अनुकूल पवन प्रगद्यो छे  
अने ते पवने करी संवेगगुणरूप वेग प्रगद्यो छे, तेणे करी वैराग्य  
मार्गमां ते वहाण चालतुं जाय छे; एहवुं चारित्ररूप जे वहाण  
तेमां बेठा थका ॥ ४९ ॥ रुडी भावनारूप मञ्जूषामां गुप्तपणे  
शुभ चित्तरूपी रत्न स्थाप्युं छे जेणे एवा मुनि निर्विघ्नपणे मुक्ति-  
रूप नगरने पासे छे ॥ ५० ॥

यथा च मोहपल्लीशो लब्धव्यतिकरे मति ॥

समारनाटकोच्छेदाशकापकाविले मुण्डः ॥ ५१ ॥

मज्जीकृतस्वीयभटे नाव दुर्बुद्धिनामिका ॥

अत्रिते दुर्नीतिनौवृदास्त्रैषभटान्विते ॥ ५२ ॥

अर्थ—ए वातनी सबर चोरनो राजा जे मोहरुपी पल्लीपति तेने पडी तेमारे ते मोह जे चोरनो राजा छे तेणे पिचायुं जे रखेने ससाररूप नाटकनो उच्छेद थई जाय, एपी शुकारूप जे कचरो तेमा लेपाणो थको ॥ ५१ ॥ ते मोहराजा पोताना सुभटोने सज्ज कर्गीने दुर्बुद्धि नामे जे नाव तेमा पोते बेडो यको, दुष्टाचाररूप बीजा जे नाम छे तेमा बली बीजा घणा सुभटोने बेमारीने पोते भरसमुद्रमा आव्यो ॥ ५२ ॥

आगच्छत्यय धर्मशभटौघे रणमडप ॥

तत्त्वचितादिनाराच सज्जीभूते समान्विते ॥ ५३ ॥

मिथो लग्ने रणावेशो सम्यग्दर्ढनमत्रिणा ॥

मिथ्यात्वमत्रीविषमा प्राप्यते चरमा दशा ॥ ५४ ॥

अर्थ—ते वसरे धर्मराजाना सुभटोना जे थोक ते मोहना सैन्यने जोईने रणमडपभूमीमा आवी तत्त्वचिता प्रमुण जे वहाण ते लेड्न सज्ज थया थका ॥ ५३ ॥ ते पठी बेडने माहोमाह युद्ध चालगा लाग्यु तेमां सम्यग्दृष्टि जे प्रधान तेणे मिथ्यात्व प्रधानने निषम चरमदशा कें० मरणदशा पमाडी, एट्ने मृत्यु-प्राप कीधो ॥ ५४ ॥

लीलयैव निरुद्ध्यते कपायचरटा अपि ॥

प्रशमादिभद्रायोर्जै शीर्हेन स्मरतस्कर ॥ ५५ ॥

हास्यादिपद्मकलुंटाकवृद्धं वैराग्यसेनया ॥

निद्रादयश्च ताङ्गते श्रुतयोगादिभिर्भैः ॥ ५६ ॥

**अर्थ—**अने उपशमादिक महासुभटे लीलाये करीने कपायरूपा चोरटाने रोक्या तथा शीलसुभटे कंदर्परूप चोरने जीत्यो ॥ ५५ ॥ वैराग्यनी सेनाये करीने हास्यादिक जे छ चोर तेने जीत्या अने ज्ञानयोगादिक जे सुभटो तेणे निद्रादिकने मारी काढ्या ॥ ५६ ॥

भटाभ्यां धर्मशुल्काभ्यामार्तौद्राभिधौ भटौ ॥

निग्रहेण्ड्रियाणां च जीयते द्रागसंयमः ॥ ५७ ॥

क्षयोपशमतश्चक्षुर्दर्शनावरणादयः ॥

नश्यत्यसातसैन्यं च पुण्योदयपराक्रमात् ॥ ५८ ॥

**अर्थ—**धर्मध्यान अने शुक्लध्यान ए वे सुभटे आर्त अने रौद्र ए वे सुभटने हण्या, तथा पांच इंद्रियना निग्रहरूप सुभटे उतावले करी असंयमरूप सुभटने जीत्यो ॥ ५७ ॥ दर्शनावरणीयना क्षयोपशम सुभटे चक्षुर्दर्शनावरणादिक योङ्गाओने मार्या, बली पुण्योदयना पराक्रमथी अशातारूप सैन्य नासी गयुं ॥ ५८ ॥

सह द्वेषगजेन्द्रेण रागकेशरिणा तथा ॥

सुतेन भोहभूपोऽपि धर्मभूपेन हन्यते ॥ ५९ ॥

ततः प्राप्तमहानंदा धर्मभूपप्रसादतः ॥

यथा कृतार्था जायते साधवो व्यवहारिणः ॥ ६० ॥

**अर्थ—**हवे छेवटे द्वेषरूप हाथीये वेठो तथा रागरूप सिंहे सहित एहवो मोहराजा तेने पण धर्मराजाए हण्यो ॥ ५९ ॥ तेवार

पछी साधुरूपी व्यवहारिया धर्मराजानो प्रसाद जे पसाय तथी  
कृतार्थ थई, आनंद पासी सुखे पोतानो व्यापार करता थया ॥६०॥  
विचित्तयेत्तथा सर्व धर्मध्याननिविष्टधीः ॥

इटगन्यदपि न्यस्तमर्यजात यदागमे ॥ ६१ ॥  
मनसश्चेद्वियाणा च जयाद्यो निर्विकारधीः ॥  
धर्मध्यानस्य स ध्याता शातो दातः प्रकीर्तित ॥६२॥

अर्थ—ए रीते सर्व धारी लेखु ते धर्मध्यानमा जे मुनिनी  
बुद्धि पेठी छे, तेणे एने तथा एना जेवा धीजा पण जे आगम-  
सिद्धातमा पदार्थना समूह स्थाप्या छे तेनु चित्तन करुँ ॥६१॥  
जे मननो अने डियनो जय करीने निर्विकार बुद्धिवालो थयो  
तेने धर्मध्याननो ध्याता कल्पो छे वली शातदातपणु पण  
तहनेज होय ॥ ६२ ॥

परैरपि यदिष्ट च स्थितप्रज्ञस्य लक्षण ॥

घटते ध्यत्र तत्सर्व तथा चेद व्यवस्थित ॥ ६३ ॥  
प्रजहाति यदा कामान् भर्वान् पार्थ ! मनोगतान् ॥  
आत्मन्येवात्मसतुष्ट स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—परदर्शनी पण स्थितप्रज्ञनु लक्षण एम कह छे  
अने ते मर्य इहा घटे छे, तेमन इहा अपस्थित होय ते जाणबु  
॥ ६३ ॥ ह अर्जुन ! जेवारे कर्दपैने छोडे अने मनना मर्य  
कामने त्यागी आत्मसतोपी थड्ने आत्माने पिये रहे ते प्राणीने  
तेगारे स्थितप्रज्ञानत कहीए ॥ ६५ ॥

दुःखेव्यनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृह ॥

वीतरागभयकोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ६६ ॥

यः सर्वश्रानभिस्नेहस्तत्प्राप्य शुभाशुभं ॥  
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ३६ ॥

अर्थः—जेहने दुःखमां उद्गेग नथी. अने सुखनी इच्छा नथी, तथा जेहना राग, भय अने क्रोध गया छे ते मुनिने स्थितबुद्धिवालो कहिये ॥ ६५ ॥ जेने विषय उपर स्नेह नथी, जेबुं तेबुं शुभ अशुभ मले तोषण रागद्वेष नथी; हे अर्जुन ! तेनी बुद्धि रुडी छे एम जाणबुं ॥ ६६ ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव भर्वशः ॥

इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६७ ॥  
शांतो दांतो भवेदीद्वगात्मारामतया स्थितः ॥

सिद्धस्य हि स्वभावो यः सैव साधकयोग्यता ॥ ६८ ॥

अर्थः—हे अर्जुन ! जेम काचबो अंगने संहरी—संकोची राखे तेम इंद्रिओने विषयथी पाढी वाले तेनी बुद्धि मोटी छे ॥ ६७ ॥ ते शांत गुण अने दांतगुणी होय, तेने आत्मारामबडे आत्मामां रह्यो कहिये. सिद्धिनो स्वभाव पण एबोज छे, अने एवा जे होय तेनेज साधकतापणाली योग्यता कहिये ॥ ६८ ॥ ध्यातायमेव शुक्लस्याप्रमत्तः पादयोर्द्वयोः ॥

पूर्वविद् योग्ययोगी च केवली परयोस्तयोः ॥ ६९ ॥  
अनित्यत्वाद्यनुप्रेक्षा ध्यानस्योपरमेऽपि हि ॥

भावयेन्नित्यमभ्रांतः प्राणा ध्यानस्य ताः खलु ॥ ७० ॥

अर्थः—ए धणी शुक्लध्यानना वे पायानो अप्रमत्त थको ध्यावनार थाय, पूर्वधरपणे योगी होय अथवा अयोगी होय; पण केवलीपणे होय. ते पछी शेष वे पायाने ध्यावे ॥ ६९ ॥

ध्यानने पिरामकाले अनित्यत्वादि भावना छाडे नहीं, पिभ्रम  
रहितपणे नित्य भावना भावे ते ध्यानना प्राण जाणवा ॥ ७० ॥

तीव्रादिभेदभाज, स्युलेंश्यास्तिस्त्र इहोत्तरा ॥

लिंगान्यत्रागमश्रद्धा विनयः मद्वणस्तुतिः ॥ ७१ ॥  
शीलसयमयुक्तस्य ध्यायतो धर्मसुत्तम ॥

स्वर्गप्राप्तिफल प्राहुः प्रौढपुण्यानुबधिर्निं ॥ ७२ ॥

**अर्थः**—इहा पाछली त्रण लेश्याओ छे एटले तेजो, पन्ह  
अने शुक्ल ए त्रण लेश्या जे छे त तीव्र, तीव्रतर तीव्रत्तम ए त्रण  
मेदनी भजनारी छे तेना ए चिन्ह छे जे आगमनी श्रद्धा,  
विनय, रुडा गुणनी स्तम्भना करवी ॥ ७१ ॥ शील अने सयमयुक्त  
प्राणीने उत्तम धर्मध्यान ध्याते यके स्वर्गप्राप्तिफल कह्यु  
छे ते मोटा पुण्यानुबधी पुण्यने पाम ॥ ७२ ॥

ध्यायेच्छुरुमय क्षातिमृदुत्वार्जवसुक्तिभि ॥

उद्गस्थोऽणौ मनो धृत्वा व्यपनीय मनो जिन ॥ ७३ ॥  
सवितर्क सविचार सपृथक्त्व तदादिम ॥

नानानयाश्रित तत्र वितर्कपूर्वकश्रुत ॥ ७४ ॥

**अर्थ** —जे समतापणे तथा निष्कण्टपणे अने जीग्नमुक्त-  
पणे एवी स्थिति रातीने शुहृध्यानने ध्यावे, अने उद्गस्थपणे  
अणुमा मन घरीने रहे वेगारे रागद्वेषने जीते ॥ ७३ ॥ सपृथ  
क्त्वसमिर्क्त्वसविचार, ए नामे शुक्लध्याननो पहेलो पायो तेने  
नानामिध नये सहित प्रिचारपूर्वक श्रुते करी ध्यामजो ॥ ७४ ॥

अर्थव्यजनयोगाना विचारोऽन्योन्यसकमः ॥

पृथक्त्व उद्व्यपर्यायगुणातरगति पुन. ॥ ७५ ॥

त्रियोगयोगिनः साध्योर्वितक्त्वन्वितं स्यदः ॥

ईषच्चलत्तरंगाऽवधेः क्षोभाभावदशानिभं ॥ ७६ ॥

**अर्थः**—अर्थ, अक्षर अने योग एना जे विचार तेनुं मांहोमांहे संक्रमण तेनुं नाम पृथक्त्व कहिये; ते केवुं छे ? के द्रव्य, गुण अने पर्याय तेमां गति छे जेनी एवुं छे. ए पहेलो भेद ॥ ७५ ॥ त्रण योगे उपरम्या जे योगी ते साधुने वितक्त्वादिक थोडा चंचल तरंग छे, जेमां एहवो जे समुद्र ते क्षोभनो जे अभाव तेवी दशा सरखुं छे ॥ ७६ ॥

एकत्वेन वितर्केण विचारेण च संयुतं ॥

निर्वातस्थप्रदोपाभं द्वितीयं त्वेकपर्ययम् ॥ ७७ ॥

मूढमक्रियानिवृत्ताख्यं तूतीयं तु जिनस्प तत् ॥

अर्धरुद्धांगयोगश्च रुद्धयोगे द्वयस्प च ॥ ७८ ॥

**अर्थः**—एकत्ववितक्त्वविचार नामे जे वीजो पायो ते पवन रहित जे दीवो ते सरखो छे. ए वीजो पायो ते एक पर्यायरूप छे ॥ ७७ ॥ मूढमक्रियानिवृत्ति नामं त्रीजो पायो ते केशलीने होय. तेमां बादर जे काययोग तेने अर्द्ध रुद्धयो छे, अने मन तथा वचन ए वे योगने समस्त रुद्धे तेवारे त्रीजो पायो ध्यावे ॥ ७८ ॥

तुरीयं तु समुच्छव्यक्तिमप्रतिपाति तत् ॥

शैलवन्निःप्रकंपस्प शैलेश्वर्यं विश्ववेदिनः ॥ ७९ ॥

एतच्चतुर्विधं शुक्लध्यानमत्र द्वयोः फलं ॥

आद्ययोः सुरलोकास्त्रिरत्ययोस्तु महोदयः ॥ ८० ॥

**अर्थः**—हवे चोथा पायामां क्रिया उच्छेदी छे अने

पोते पर्वतनी पेरे अप्रतिपाति थयो छे, एहरो निश्वेदी, जग-  
त्ना सर्व भाग्नो जाण जे केवली ते निःप्रकृप पर्वतनी पाफक  
घनीभूत थया शेलेशीकरण करे ॥ ७९ ॥ ए चार प्रकारनु  
शुक्लध्यान छे, तेनु फल रहे छे, इहा प्रथम वे पायामा जे काल  
करे ते स्वर्गगति पामे अने उपर्ना वे पायामा काल करताथी  
मोक्ष पामे ॥ ८० ॥

आश्रवापायमसारानुभावभवसततीः ॥

अर्थं विपरिणाम वानुपद्येच्छुरुविश्रमे ॥ ८१ ॥

द्वयोः शुद्ध तृतीये च लेश्या सा परमा मता ॥

चतुर्थं शुद्धभेदस्तु लेश्यातीतं प्रकीर्तित ॥ ८२ ॥

अर्थ — शुद्धध्यानने विश्रामे आश्रमनो नाश देसे,  
समारना स्वस्पने भग्नी परपरा देसे अने अन्य पदार्थं आत्मानु  
विपरिणामपणु जुए ॥ ८१ ॥ ए शुद्धध्यानना प्रथम वे पायामा  
ते लेश्या तथा त्रीजे पाये तो परम उत्कृष्ट शुद्धलेश्या रही  
छे, अने चोयो पायो जे छे ते तो लेश्याये रहित कहो छे ॥ ८२ ॥

लिग निर्मलयोगस्य शुरुपानवतोऽप्यधः ॥

असमोहो विवेकश्च व्युत्सर्गश्चाभिधीयते ॥ ८३ ॥

अपधादुपसर्गभ्य रक्षते न विभेति च ॥

असमोहान्न सुव्यार्थं मायास्मपि च मुख्यति ॥ ८४ ॥

अर्थः— शुद्धध्यानगालाने निर्मल योग होय, तेना लक्षण  
कह छे अहिंसक होय, 'मोहरहित, विवेकी होय जने त्याग-  
युद्धिये युक्त होय ॥ ८३ ॥ गली अधी धयो माटे उपसर्ग अने

परिसिंह तेशी कंपे नहीं तथा वीहे पण नहीं। ए अहिंसक लक्षण होय १, तथा सूक्ष्म अर्थमां, वली मायामां मुँजाय नहीं; ए असंमोह एटले मोहरहितनुं लक्षण कह्युं २ ॥ ८४ ॥

विवेकात्सर्वसंयोगाद्विन्नमात्मानमीक्षते ॥

देहोपकरणासंगो व्युत्सर्गाज्ञायते मुनिः ॥ ८५ ॥  
एतद्व्यानक्रमं शुद्धं मत्वा भगवदाज्ञया ॥  
यः कुर्यादितदभ्यासं संपूर्णाध्यात्मविद्धवेत् ॥ ८६ ॥

**अर्थः**—सर्व संयोगथी आत्माने जूदो देखे, ए विवेकनुं लक्षण छे ३, देह तथा उपकरणनी त्यागवुद्धिये असंगानुष्ठान वर्ते छे, ए व्युत्सर्गनुं लक्षण छे ४. ए चार लक्षण ६६ मां श्लोकमां कह्यां छे. तेनो ए अर्थ विवरीने कह्यो. ए लक्षणे जे मुनि होय ते ज्ञानपणुं पासे ॥ ८५ ॥ ए रीते ध्याननो जे अनुक्रम ते शुद्ध रीते जाणीने, प्रभुनी आज्ञा प्रमाणे एनो अभ्यास जे करशे ते संपूर्ण अध्यात्मज्ञानी थाशे ॥ ८६ ॥

इति ध्यानाधिकारः पोडशः ॥



## अथ ध्यानस्तुत्याधिकारः

यत्र गच्छति परं परिपाकं पारुग्रासनपदं तृणकल्पं ॥  
स्वप्रकाशसुग्रवोधमयतद्यानमेव भवनाशिभजध्वा ॥१॥

अर्थ — माटे उत्कृष्ट परिष्कृत ध्यान पामे थके मुनिराज ते छुनी पदभीने पण तुण ग्रामर गणे, माटे जे वकी सुखे करी आत्माने प्रकाशकारी ज्ञान प्रगटे एवु समारनु नाश करनारु ध्यान सेवु ॥ १ ॥

आतुरैरपि जडेरपि साक्षात्

मुत्यजा हि विषया न नु रागः ॥

ध्यानघास्तु परमयुतिदर्ढी

तृप्तिमाप्य न तमृच्छति भूयः ॥ २ ॥

अर्थ — जामातुर जे प्राणी तथा जड जे प्राणी ते पण प्रगटपणे विषयसुखने सुखे छाडे, पण रागदशा छाडी दुर्घट छे, अने ध्यानमत मुनि तो मात्र परमात्मानो ज दर्शनी छे ते तो ध्यानमा रसि पामीने फरीयी रागदेवने वाछे नही ॥ २ ॥

या निदा सकलभूतगणाना

ध्यानिनो दिनमद्वोत्सवं एषः ॥

यत्र जाग्रति च तेऽभिनिविष्टा

ध्यानिनो भवति तत्र सुपुस्ति ॥ ३ ॥

अर्थ — सर्वे प्राणीने निदामा जे रात्रि जाय छे ते ध्यानदशावालाने ए रात्री ते जागृत मद्वोत्सवनो दिवस छे,

अने संपारी जीव विषयमां लीन थका जे वेलाये जागे छे ते  
वेला ध्यानवाला मुनिराजने शयनरूप छे ॥ ३ ॥

संप्लुतोदक इवांधुजलानां सर्वतः सकलकर्मफलानां ॥  
सिद्धिरस्ति खलु यत्र तदुच्चैर्धर्यानमेव परमार्थनिदानं ॥४

**अर्थः—**—जेम वपराया विनाना ( अबड कुवानुं )  
पाणी डोहोलुं रहे छे, तेम जेमां सर्वथकी सकल कर्मना फलनी  
सिद्धि एहवो जे ध्यानरूप घट जे जलमां रमतो होय, ( पाणी  
वपरानुं होय ) त्यां जल निर्मल होय; माटे सकल क्रियाफलनी  
सिद्धि ध्यानथी छे, ध्यान ते परम अर्थनुं कारण छे ॥ ४ ॥

वध्यते न हि कषायसमुत्थैर्मानसैर्न ततभूपनमद्धिः ॥  
अत्यनिष्टविषयैरपि दुःखैर्धर्यानवान्निभृतमात्मनि लीनः

**अर्थ—**—जे ध्यानवान् पुरुप ते कषायजनित मने करी  
बंधातो नथी तेहने जो राजानी श्रेणी आवी नमस्कार करे, तो  
पण तेनुं चित्त डोहोलाय नही; अने अनिष्ट विषयनी प्राप्तिनां  
दुःखे करी पण निश्चलपणुं छोडे नहि, तेने आत्माने विषे लीन  
कहिये ॥ ५ ॥

स्पष्टदृष्टसुखसंभृतमिष्टं  
ध्यानमस्तु शिवशर्मगरिष्टं ॥

नास्तिकस्तु निहतो यदि न ॥

स्यादेवमादिनयवाङ्मयदंडात् ॥ ६ ॥

**अर्थ—**—प्रगट दीदुं अने मोक्षसुखे भर्यु एवुं जे ध्यान ते  
इट छे, एटले मोक्षसुखथी पण ध्यान मोडुं छे, पण जिहां सुधी

शास्त्रना दटधकी नास्तिकभावने अतिशयपणे हण्यो नथी तिहा  
सुधी नवी, पण नास्तिकभावे रहित जे ज्ञान ते मोटु छे ॥ ६ ॥

यत्र नार्कविद्युतारकटीपञ्चोत्तिपा प्रमरतामवकाश ॥  
ध्यानभिन्नतमसामुदितात्मज्योतिपातदपि भाति रहस्य

**अर्थ—**जेनी आगल सूर्यनु तेज, तथा चढ़मा अने तारानु  
तेज, घली दीपरा तेजनो प्रकाश अल्प छे, एबु जे ध्यान रेणे  
करीने येदाणो छे अनानस्य अधकार जे प्राणीनो एहवा मुदित  
आत्मागालानु तेज ते गुप्तपणे पण आत्माने यिषे शोभे छे ॥ ७ ॥

योजयत्यमितकालविद्युक्ता प्रेयमी शमरति त्वरित यत् ॥  
ध्यानभित्रमिदमेष मतन; किं परेजंगति कृत्रिममित्रै ॥ ८ ॥

**अर्थ—**शमतागतिस्य स्त्रीनी साये प्राणीने घणा कालवी  
प्रियोग ह्तो ते लणमा प्रियोग भागीने सयोग मिलाने एहो ध्यान  
स्य परममित्र ते, ते ध्यानमित्र बगारे प्रमाण छे, एम ध्यान करनार  
प्राणी चाँले छे, माट समारपा कृत्रिम परमित्रथी शु वाय ? ते  
कृत्रिम भित्रो वरता तो ध्यानमित्र घणो ब्रेष्टु छे ॥ ८ ॥

यारितस्मरयलातपचारे

शीलशीतलसुगधिनिवेशो ॥

उच्चितप्रशामतल्पनिविष्टो

ध्यानधान्नि लभते सुखमात्मा ॥ ९ ॥

**अर्थ—**हये ध्यानने रगभित्रनी उपमा आये छे जिहा  
फामन्य ताप ठल्यो ते, अने शीलस्य शीतल सुगधी पमनी रही  
ने तेवी नेठनने यिष शमतास्य मोटी तलाड छे, ते उपर आत्मा  
येठो धरा पूर्ण आनद पाम छे, एनु ध्यानस्य मदिर छे ॥ ९ ॥

शीलविष्टरदमोदकपीठं प्रान्तिहार्यममतामधुपर्कः॥  
ध्यानधार्मनि भवति स्फुटमात्माहृतपृतपरमातिथिपृजा

अर्थ—ध्यानमंदिगमां शीलरूप मिहासने हंड्रियदमन  
रूप जलनो वाजोट हे, अने शमतारूप पोलीओ ते एवा  
ध्यानघगमां पवित्रपणे आत्माने तेढीने तेनी मधुपर्के करी  
परोणागत करे हे ॥ १० ॥

आत्मानो हि परमात्मनि योऽ-  
भूद्वेदवुद्धिकृत एव विवादः ॥

ध्यानसंधिकृदसुं व्यपनीय,  
द्रागभेदमनयोर्वितनोति ॥ ११ ॥

अर्थ—आत्मा अने परमात्माने विषे जे भेदवुद्धिनो  
विवाद हतो, एटले तेमां पंडितना विवादरूप झवडा हता तेने  
ध्यानरूप संधिपाले एटले ध्यानी पुरुषे ते विवादोने टाल्या  
अने जलदीर्थी ए वेउनुं अभेदपणुं करी आप्युं ॥ ११ ॥

कामृतं विषभृते फणिलोके ?  
क क्षयिण्यपि विधौ त्रिदिवे वा ?।

काप्सरो रतिमतां त्रिदशानां ?  
ध्यान एव तदिदं बुद्धसेव्यं ॥ १२ ॥

अर्थ—विषथकी भरेलो जे नागलोक तिहाँ अमृत-  
क्यांथी होय ? तेम दिन दिन क्षय पामतो जे चंद्रमा तेमां अमृत  
किहांथी होय ? अने देवलोकमां अप्सराना योगे राता जे देवता  
तेमां पण अमृत किहांथी होय ? माटे ए मात्र ध्यानरूप अमृत  
ज सत्य हे, तेने ज पंडिते सेव्युं ॥ १२ ॥

गोस्तनीपु न सितासु सुधाया नापि नापि वनिताधरविवे॥  
तरस कमपि वेत्ति मनस्वी ध्यानसभवधृतौ प्रथते यः॥१३॥

अर्थ—गायना स्तनमा जे रस नथी, जे साकरमा रस  
नयी अने जे रस अमृतमा पण नयी, तेमज्ज खीना अधर जे  
होठ तेमा पण जे रस नथी ते रस ध्यानथी प्रगट्यो अने सतो-  
पथी प्रिस्तर्यो एहो जे कोडक अपूर्व रस तेने तो कोडक  
पडितज जाणे छे ॥ १३ ॥

इत्यवेत्य मनसा परिपक्षध्यानसभवफले गरिमाण ॥  
तत्र यस्य रतिरेनमुपैति प्रौढधामभृतमाशु यशःश्री॥१४॥

अर्थ—ए प्रकारे मने करीने परिपक जे ध्यान, तेथी  
प्रगट्यु जे फल तेहने मोटाइपणे जाणीने तेमा जे रति पाम ते  
महातंजवत कातिगान पुरुष छे अने तेने ज यशलक्ष्मी गरशो ॥१४॥

॥ इति श्री ध्यानस्तुत्यधिकार सप्तदश समाप्त ॥  
॥ इति श्री महोपाध्यायश्रीयशोभिजयगणितिरचिते  
अध्यानमारप्रस्तरणे पचमपरिच्छेदः ॥



## अथ आत्मनिश्चयाधिकारः

आत्मध्यानफलं ध्यानमात्मज्ञानं च मुक्तिं ॥

आत्मज्ञानाय तन्नित्यं यत्नः कार्यो महात्मना ॥१॥

ज्ञाते ह्यात्मनि नां भूयो ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

अज्ञाते पुनरेतस्मिन् ज्ञानमन्यन्निरर्थकं ॥ २ ॥

**अर्थ—**आत्माने ध्याननुं फल ते ध्यान छे, पण आत्मज्ञान होय तेवारेज तेने मुक्ति आपे, माटे ज्ञान ते गोडुं छे; तो मोटा पुरुषे आत्मज्ञान भणी उद्यग करदो ॥ १ ॥ जेणे आत्माने जाण्यो तेने फरी वीजुं कंड जाणवानुं रहुं नथी; अने जिहां सुधी आत्माने जाण्यो नथी तिहां सुधी वीजुं सर्व जाण्युं ते निरर्थक छे ॥ २ ॥

नवानामपि तत्त्वानां ज्ञानमात्मप्रसिद्धये ।

येनाजीवादयो भावाः स्वभेदप्रतियोगिनः ॥ ३ ॥

श्रुतो ह्यात्मपराभेदोऽनुभूतः संस्तुतोऽपि च ॥

निसर्गादुपदेशाद्वा वेत्ति भेदं तु कश्चन ॥ ४ ॥

**अर्थ—**नवे तत्त्वनुं जे जाणपणुं करवुं ते पण आत्मज्ञान प्रगट करवाने अर्थे छे, कारण के अजीवादिक जे भाव ते पण आत्मज्ञानवडे शमाय छे ॥ ३ ॥ पोतानो अने पारको जे भेद तेने भेदरुपे सांभळ्यो, अनुमव्यो, परिचय थयो थको, सहेजे अथवा उपदेशथकी कोइक भेदने जाण्यो ॥ ४ ॥

तदेकत्वपृथक्त्वाभ्यामात्मध्यानं हितावहं ॥

वृथैवाभिनिविष्टानामन्यथा धीर्विडंवना ॥ ५ ॥

एक एव हि तत्रात्मा स्वभावसमवस्थित ॥

ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणप्रतिपादितः ॥ ६ ॥

अर्थ—ते माटे एकत्वपृथक्त्वे करी आत्मज्ञानं हित-  
कारी याय, नहीं तो फोक्टपणे मिथ्यात्वनी उद्विनी विट्यना  
छे ॥ ५ ॥ तिहा एक ज आत्मा स्वभावपणे रखो छे, ते आत्मा  
तो ज्ञान, दर्शन अने चारिग्रस्य लक्षणे कहो छे ॥ ६ ॥

प्रभानैर्मल्यशक्तीना यथा रत्नान्नं भिन्नता ॥

ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणाना तयात्मनः ॥ ७ ॥

आत्मनो लक्षणाना च व्यवहारो हि भिन्नता ॥

पष्ठ्यादिव्यपदेशोन मन्यते न तु निश्चय ॥ ८ ॥

अर्थ—जेम रत्ननी काति अने निर्मलता ए वेउनी  
शक्ति काड जुदी नथी, तेम ज्ञान, दर्शन जने चारित्रलक्षणे जे  
आत्मा ते काड जुदो नथी ॥ ७ ॥ आत्मा अने आत्मानु लक्षण  
ए ते व्यवहारे जुदा छे ते पष्ठि आदे निमक्तिने व्यपदेशे  
करी मानिये, पण निश्चयथी नहीं ॥ ८ ॥

घटस्पृ रूपमित्यत्र यथा भेदो विकल्पज ॥

आत्मनश्च गुणाना च तया भेदो न तात्त्विकः ॥ ९ ॥

शुद्ध यदात्मनो रूप निश्चयेनानुभूयते ॥

व्यवहारो भिदाद्वारानुभावयति तत्पर ॥ १० ॥

अर्थ—जेम घट अने घटनु रूप तेनो भेद ते विकल्प-  
मात्र छे, तेम आत्माने अने गुणने परमार्थे भेद नथी ॥ ९ ॥

जे आत्मरूप शुद्ध छे ते निश्चयनये करी अनुभवाय छे; अने  
व्यवहारवडे पर कें काया ते पण ओलखाय छे ॥ १० ॥

वस्तुतस्तु गुणानां तद्रूपं न स्वात्मनः पृथक् ॥  
आत्मा स्यादन्यथाऽनात्मा ज्ञानाद्यपि जडं भवेत् ॥ ११ ॥  
चैतन्यपरसामान्यात्सर्वेषामेकतात्मनां ॥  
निश्चिता कर्मजनितो भेदः पुनरुपप्लवः ॥ १२ ॥

अर्थ—वस्तुभावे तो गुणनुं अने आत्मानुं रूप जुदुं नथी,  
जो जुदुं कहीए तो आत्मा छे ते अनात्मा थाय; ज्ञानादिक जड  
थाय ॥ ११ ॥ चैतन्य पर सामान्यपणे सर्व आत्मानी एकता छे;  
अने निश्चयथी तो कर्म प्रकट्यो जे भेद ते विट्ठनारूप छे ॥ १२ ॥

मन्यते व्यवहारस्तु भूतग्रामादिभेदतः ॥

जन्मादेश्च व्यवस्थातो मिथो नानात्वमात्मनां ॥ १३ ॥  
न चैतनिश्चये युक्तं भूतग्रामो यतोऽस्तिलः ॥  
नामकर्मप्रकृतिजः स्वभावो नात्मनः पुनः ॥ १४ ॥

अर्थ—जीवसमूहना भेदथी तथा बाल जुवान वृद्ध ए  
अवस्थावडे मांहोमांहे विचित्रपणुं जणाय छे, एम व्यवहारनयवालो  
माने छे ॥ १३ ॥ पण ए वात निश्चयनयवालो मानतो नथी,  
ते एम कहे छे के, ए जीवने सर्व अवस्था नामकर्मना स्वभावथी  
प्रगटे छे; पण ए आत्मानो मूल स्वभाव नथी ॥ १४ ॥

जन्मादिकोऽपि नियतः परिणामो हि कर्मणां ॥

न च कर्मकृतो भेदः स्यादात्मन्यविकारिणि ॥ १५ ॥  
आरोप्य केवलं कर्मकृतां विकृतिमात्मनि ॥  
अमंति अष्टविज्ञाना भीमे संसारसागरे ॥ १६ ॥

अर्थ—जन्म जरादिक परिणाम कर्मने बश छे, अने आत्मा तो अपिकारी ठे तेथी कर्मनो भेद आत्माने सभवे नही, केमके ए आत्मस्वभाव नथी ॥ १५ ॥ जन्म जरादिक कर्मप्रकृति छे, अने कर्मननित भागने केगल आत्माने विषे आरोपीने भ्रष्ट ज्ञानी भयकर ससारसमुद्रमा भमशे ॥ १६ ॥

उपाधिभेदज भेद वेतज्जः स्फटिके यथा ॥

तथा कर्मकृत भेदमात्मन्येवाभिमन्यते ॥ १७ ॥

उपाधिर्कर्मजो नास्ति व्यवहारास्त्वकर्मणः ॥

इत्यागमवचो लुत्पमात्मवैरूप्यवादिना ॥ १८ ॥

अर्थ—स्फटिकमा उपाधि भेदे जेम सूर्य प्राणी भेद माने छे, तेम आत्माने विषे प्रगाथो जे कर्मकृत भेद ते माने छे ॥ १७ ॥ पोताना व्यवहारथी कर्मजनित जे उपाधि ते नथी, एम मानता आत्मगिरुपवादी आगमनु वचन लोपे छे ॥ १८ ॥

एकक्षेत्रस्थितोऽप्येति नात्मा कर्मगुणान्वयम् ॥

ययाऽभव्यस्वभावत्वाच्कुद्धो धर्मास्तिकायवत् ॥ १९ ॥

यथा तैमिरिकश्चद्रमप्येक मन्यते द्विधा ॥

अनिश्चयकृतोन्मादस्तयात्मानमनेकधा ॥ २० ॥

अर्थ—धर्मास्तिकायनी परे एक क्षेत्रमा रहो छे तो पण कर्मगुणना सयोगने पामतो नथी, एवो आत्मा रुडा स्वमार्थी शुद्ध ठे ॥ १९ ॥ जेम तिमिर कें० ग्रहणघेलो एक चंद्रने वे चंद्र माने छे तेम निश्चयनयनी जाण विनानो जे प्राणी ते उन्माद ममते करी आत्माने अनेक ग्रकारे माने ठे ॥ २० ॥

यथातुभृयते थोकं स्वरूपास्तित्वमन्वयात् ॥

मादृशास्तित्वमप्येकमविरुद्धं तथात्मनां ॥ २१ ॥

सदसद्रादपिशुनात् संगोप्य च्यवहारतः ॥

दर्गयत्येकतारत्वं सतां शुद्धनयः सुहृत् ॥ २२ ॥

अर्थ—जेम अन्वयथी एकस्वरूपास्तिपणाने अनुभविये छीए तेम मरखापणे जे विद्यमानपणु छे ते थकी आत्माने एक कहिये ॥ २१ ॥ व्यवहारनयथी सदूअभद्रादरूप जे चाडियो तेने लुपावीने शुद्ध नयरूप जे मित्र छे, ते एकतारूप रत्नने देखाडे छे ॥ २२ ॥

वृनारकादिपर्यायैर प्युत्पन्नविनश्वरः ॥

भिन्नैर्जहाति नैकत्वमात्मद्रव्यं सदान्वयि ॥ २३ ॥  
यथैकं हैमकेयूरकुंडलादिषु वर्तते ॥

वृनारकादिभावेषु तथात्मैको निरंजनः ॥ २४ ॥

अर्थ—नर, नारकादि पर्याय जे उपजे छे अने विणशे छे, ते भिन्न पर्याय काँइरम्य नथी; माटे ते पर्याये करीने सदा अन्वयी-जे शुद्धवंशी आत्मतत्त्व ते एकत्वपणाने छांडतुं नथी ॥ २३ ॥ जेम सुवर्ण एक छे, पण वाजुवंध, कंठी, कुंडलादिक पर्याये वर्ते छे, तेम आत्मा एक छे, पण नर, नारकादिकना भवे करी भिन्न छे; पण आत्मा तो एक निरंजन छे ॥ २४ ॥

कर्मणस्ते हि पर्याया नात्मनः शुद्धसाक्षिणः ॥

कर्मक्रियास्वभावो यदात्मा तु न स्वभाववान् ॥ २५ ॥

नाणूनां कर्मणो वासौ भवसर्गः स्वभावजः ॥

एकैकविरहो भावान्न च तत्त्वांतरं स्थितं ॥ २६ ॥

अर्थ—जे नर, नारकादिक भन ते तो मर्ह कर्मना पर्याय छे, पण शुद्ध माधी निश्चयनये बात्मपर्याय छे, अने कर्मक्रियास्पृष्ठ जे समाव ते काड आत्मानो मूल सम्भाव नथी, आत्मा तो अज, अग्निनाशी सम्भवागी हु ॥ २५ ॥ केवल कर्मना जे परमाणुआ तेयी आ समार सर्ग स्वामानिक नथी परतु जीव अने पुद्गल ए बनेना मलगाथी ते उत्पन्न थयेल छे, अने ते बेना परस्पर मिरहथी ममार मर्गनी उत्पत्ति नयी, तेमन गीना कोड तच्यायी पण समारनी स्थिति मभगती नथी एकैक उज्जलताने विषे भावयकी नय तच्यमा रहु छे ॥ २६ ॥

श्वेतद्रव्यकृत न्वैत्य भित्तिभागे यथा द्वयोः ॥

भात्यनतर्भवितसत्य प्रपचोऽपि तथेक्षता ॥ २७ ॥  
यथा स्वभाववुद्धयोऽर्था विवुद्धेन न दद्यते ॥

ब्यवहारमत सर्गा जानिना न तथेक्षते ॥ २८ ॥

अर्थ—जेम श्वेत द्रव्ये कीधेलु जे चिमामण ते भर्तना भागमा ( समधयी ) शोभे, तेम अनत भपमत्यताये ए प्रपचने जाणपो, एट्ले जीव कर्मनो सबध छटी गया पत्री ममार रहतो नयी ॥ २७ ॥ जेम स्वप्नमा दीठेलो अर्थ जाग्या पछी देखाय नही, तेम ब्यवहारे स्वर्गादिक मार्ग त्रेषु छे, पण नियत प्रमाणी ज्ञानी पुरुषने ममार न जणाय ॥ २८ ॥

मध्याह्ने मृगतृणाया पथं पूरो यदेक्ष्यते ॥

तथा सयोगज सर्गां विवेकात्यातिविहृते ॥ २९ ॥  
गधर्वनगरादीनामयं डम्प्यरो यथा ॥

तथा सयोगज सर्वां विलासो वित्त्याकृतिः ॥ ३० ॥

अर्थ—जेम मध्याहे मृगजलवडे पृथ्वी उपर जलपूर देखाय  
छे, तेम संयोगे उपनी जे सृष्टि ते विवेकनी रुग्णातिये नाश  
देखाय छे ॥ २९ ॥ जेम गंधर्वनगरवडे आकाशे आडंबर  
जणाय, तेम संयोगे प्रगट्या जे सर्व विलास ते जूठा छे ॥ ३० ॥  
इति शुद्धनयायत्तमेकत्वं प्राप्तमात्मनि ॥

अंशादिकल्पनाप्यस्य नेष्ठा यत्पूर्णवादिनः ॥ ३१ ॥  
एक आत्मेति सूत्रस्याप्ययमेवाशयो मतः ॥

प्रत्यग्ज्योतिपमात्मानमाहुः शुद्धनयाः खलु ॥ ३२ ॥

अर्थ—ए रीते शुद्ध नये जे एकत्वपणुं ग्रह्युं ते आत्माने  
विषे पाम्युं; अने अंशादिकनी जे कल्पना ते पूर्ण वादीने बहाली  
नथी ॥ ३१ ॥ सूत्रमां, “एगे आया” एवो जे पाठ छे, ते  
एज आशये कह्यो छे. एक प्रगट ज्योतिरूप जे आत्मा ते तेज-  
रूप छे, एम शुद्ध नयवाला कहे छे ॥ ३२ ॥

प्रयंच संचयक्षिप्तान्मायारूपाद् विभेदि ते ॥

प्रसीद भगवन्नात्मन् ! शुद्धरूपं प्रकाशय ॥ ३३ ॥  
देहेन सममेकत्वं मन्यते व्यवहारवित् ॥

कथंचिन्मूर्ततापत्तेवेदनादिसमुद्धवात् ॥ ३४ ॥

अर्थ—निश्चय नय कहे छे के, प्रयंच संचयवडे संक्षिप्त  
एटले दुःखरूप एवुं जे ए मायारूप छे; ते थकी हे भगवन् !  
हे आत्मा ! हुं वीहुं छुं; माटे प्रसन्न थाओ अने शुद्धरूप प्रकाश  
करो ! ॥ ३३ ॥ कोइक प्रकारे रूपीपणुं पाम्यो जे आत्मा तेने  
वैदनादिक उपजे छे; माटे व्यवहार नयवालो शरीर साथे आत्मानुं  
एकत्वपणुं माने छे ॥ ३४ ॥

तन्निश्चयो न महते यदमूर्त्ता न मूर्त्तता ॥

अशोनाप्यपगाहेत पापकः शीततामित ॥ ३५ ॥

उदणस्याग्नेर्यथा योगाद् घृतमुष्णमिति अम, ॥

तथा मूर्त्तिगसवधादात्मा मूर्त्ति हति अम, ॥ ३६ ॥

अर्थ—एष त वात निश्चयालो मही शक्तो नथी, जेम अग्नि शीतलता पापतो नथी, तेम जे अस्यी आत्मा हे त अशो करीने एष स्वीपणाने पापतो नवी ॥ ३५ ॥ जेम तलता अग्निने सयोगे घृत उष्ण हे एवो अम याय हे, तेम स्वी शुरीखे ययोगे आत्मा पण स्वी ढीसे हे, ए पण अपणान देखाय हे ॥ ३६ ॥

न स्पष्ट न रसो गधो न च स्पर्शा न चाकृति ॥

यस्य धर्मा न शब्दो च तस्य का नाम मुर्त्तता ? ॥ ३७ ॥  
दृशादृश्य दृशाग्राष्ट्रं पाचामपि न गोचर ॥

स्यप्रकाश हि यद्यप तस्य का नाम मुर्त्तता ? ॥ ३८ ॥

अर्थ—संस्के स्पष्ट, रस, गध, स्पर्श जन भव्यान एटला वाना वासाने नवी, ए तो पुरुगलन हे, तेमन वात घर्म पण नथी, शब्द नवी, तमार आत्माने शी गीत स्वी फहाय ? ॥ ३७ ॥ सली जा मा नजर देखाय एतो पण नवी, मनथी ग्रहाय एतो पण नवी, तवा परन पण अगाचा हे, जेनु स्पष्ट पावाना प्रसादो त, पण धीनाना प्रकाश नवी, तने स्वी केम फहाय ? ॥ ३८ ॥

आत्मा सत्यथिदानदं समात्मूलम्, परात्पर ॥

सुशत्यपि च मूर्त्ततर तया चांच, पररपि ॥ ३९ ॥  
इतिगाणि पराण्यादृगितियेभ्य पर मन, ॥

मनसोऽपि परा युद्धिर्याषुङ्कं परमस्तु म ॥ ४० ॥

अर्थ—आत्मा सत्य छे; चिदानंदमयी छे; मूल्यमधी पण मूल्यम छे; उत्कृष्टमां उत्कृष्ट छे; ते मूर्त्तपणु केम फरसे ? तेमज परदर्शनमां श्रीकृष्ण कहे हैं—हे अर्जुन ! शरीरमां इंद्रियो मोटी छे, अने इंद्रियोथी मन मोड़ु; मन करतां बुद्धि महोटी छे अने तेथी आत्मा मोटो छे ॥ ३९-४० ॥

विकले हृत लोकेऽस्मिन्नमूर्त्ते मूर्त्तताभ्रमात् ॥

पश्यत्याश्र्वर्यवज् ज्ञानी वदत्याश्र्वर्यवद्वचः ॥ ४१ ॥

वेदना येन मूर्त्तत्वं निमित्ता स्फुटमात्मनः ॥

पुद्गलानां तदापत्तेः किं त्वशुद्धस्वशक्तिजा ॥ ४२ ॥

अर्थ—हृत इति खेदे. आ विकल लोकने विषे अमूर्त आत्माने विषे मूर्त्तपणाना भ्रमथकी जे ज्ञानी पुस्त्य छे ते अचंदो देखे छे, अने वचन पण अचंदाना बोले छे ॥ ४१ ॥ जे माटे जीवात्माने मूर्त्त निमित्त वेदना प्रगटपणे छे, एम जो मानीए तो पुद्गलने वेदना थइ जोहये; ते माटे ए वेदना तो आत्माने अशुद्ध शक्तिथी अनुभवाय छे ॥ ४२ ॥

अक्षद्वारा यथा ज्ञानं स्वयं परिणमत्ययं ॥

तयेष्टानिष्टविषयस्पर्शद्वारेण वेदनां ॥ ४३ ॥

विपाककालं प्राप्यासौ वेदनापरिणामभाक् ॥

मूर्त्त निमित्तमात्रं नो घटे दंडवदन्वयि ॥ ४४ ॥

अर्थ—इंद्रियद्वारे करी जेम ज्ञानदिशा पोतानी मेले परिणमे छे, तेम इष्ट अनिष्ट विषय स्पर्शद्वारे करी वेदना परिणमे छे ॥ ४३ ॥ विपाककाल पामीने आ वेदना परिणामने जेम आत्मा भजे छे, तेथी अमारे मते मूर्त्तपणुं ते

निमित्तमात्र थयु, अन्वयी कै० सहचारी थयु जेम घटने पिये दट  
सहचारी छे तेनी पेठे जाणवु ॥ ४४ ॥

ज्ञानाख्या चेतना वोध, कर्माख्य द्विष्टरक्ता ॥

जतोः कर्मफलाख्या सा वेदना प्यपादिश्यते ॥ ४५ ॥  
नात्मा तस्माद्मर्त्तत्व चैतन्य चातिवर्तते ॥

अतो देहेन नैकत्वं तस्य मूर्त्तेन कर्हिचित् ॥ ४६ ॥

अर्थ—ज्ञान नामे चेतना ते वोध छे अने कर्म नामे  
द्विष्ट रक्ता छे, तेगडे जीपने कर्मफल नाम वेदना व्यपदेश पाम  
छे ॥ ४५ ॥ ते माटे अमूर्त आत्मा त चेतन्यपणाने उलध  
नही अने मूर्तिमान् देह साथे आत्माने कोइ प्रकारे एकत्वपण  
छेज नही ॥ ४६ ॥

सन्निकृष्टान्मनोवाणीकर्मदिरपि पुङ्गलात् ॥

विप्रकृष्टाद्वनादेश्च भावैव भिन्नात्मन ॥ ४७ ॥  
पुङ्गलाना गुणोमृत्तिरात्मा ज्ञानगुणः पुन ॥

पुङ्गलेभ्यस्ततो भिन्नमात्मद्रव्य जगुर्जिनाः ॥ ४८ ॥

अर्थ.—ए रीत कर्म वर्गणाना, मनोवर्गणाना, चन्दनवर्ग-  
णाना जे आत्माने समीपतर्ति, एकत्वमगतपर्ति एगा तनधनादिक  
जे पुङ्गल त तो सर्व आत्माथी भिन्न क० दूर छे ॥ ४७ ॥  
केमके पुङ्गलनो गुण तो मूर्तिमान् छे, अन आत्मा ता ज्ञानगुण  
मय छे, माटे पुङ्गलथी आत्मद्रव्य ऊदु छे एम प्रभु कहे छे ॥ ४८ ॥

धर्मस्य गतिद्वेतुत्तम गुणो ज्ञान तथात्मनः ॥

धर्मस्तिकायात्तद्विन्नमात्मद्रव्य जगुर्जिनाः ॥ ४९ ॥

अधर्मं स्थितिहेतुन्वं गुणो ज्ञान गुणोऽसुमान् ॥

ततो धर्मास्तिकाया न्यमात्मद्रव्यं जगुर्जिनाः ॥५०॥

**अर्थः—**धर्मास्तिकायनो गुण गतिहेतु छे अने आत्मानो गुण ज्ञान छे, माटे धर्मास्तिकायथी आत्मा जुदो छे एम प्रभु कहे छे ॥ ४९ ॥ अधर्मास्तिकायनो गुण स्थितिहेतु छे अने आत्मानो ज्ञान गुण छे, माटे अधर्मास्तिकायथी आत्मद्रव्य जुदुं छे एम प्रभु कहे छे ॥ ५० ॥

अवगाहो गुणो व्योम्नो ज्ञानं खलवात्मनो गुणः ॥

व्योमास्तिकाया तद्दिन्नमात्मद्रव्यं जगुर्जिनाः ॥५१॥  
आत्मज्ञानगुणः सिद्धः समयो वर्त्तनागुणः ॥

तद्दिन्नं समयद्रव्यादात्मद्रव्यं जगुर्जिनाः ॥५२॥

**अर्थः—**आकाशनो गुण अवगाह छे, अने आत्मानो गुण ज्ञान-छे, माटे आकाशास्तिकाय थी आत्मद्रव्य जुदुं छे एम प्रभु कहे छे ॥ ५१ ॥ आत्मा ज्ञान गुणे सिद्ध छे, काल वर्त्तनारूप छे, माटे कालथी आत्मद्रव्य जुदुं छे, एम प्रभु कहे छे ॥ ५२ ॥ आत्मनस्तद्जीवेभ्यो विभिन्नत्वं व्यवस्थितं ॥

व्यक्तिभेदेन यादेशादजीवत्वमपीष्यते ॥५३॥

अजीवा जन्मनः शुद्धभावप्राणव्यपेक्षया ॥

सिद्धाश्च निर्मलज्ञाना द्रव्यप्राणव्यपेक्षया ॥५४॥

**अर्थः—**ए प्रमाणे अजीवथी आत्मानुं जुदापणुं सत्थ ठर्यु, पण भेदे करी देशथकी अजीवपणुं पण वंछीए छीए ॥ ५३ ॥ जेम निर्मल ज्ञानवंत सिद्धने द्रव्यप्राणनी अपेक्षा रहित-पणे अजीवपणुं कहिये, तेम शुद्ध भावप्राणनी अपेक्षा रहित जीवने अजीव कहिये छीए ॥ ५४ ॥

इद्वियाणि उल शासोऽग्रासो ह्यायुस्तया पर ॥

द्रव्यप्राणाश्चतुभेदाः पर्याया पुह्नलाश्रिताः ॥ ५६ ॥

मिनास्ते ह्यात्मनोऽत्यत तदेतेनास्ति जीवन ॥

ज्ञानधैर्यसदाश्वासनित्यस्थितिविकारिभिः ॥ ५६ ॥

अर्थ.—इद्विय, उल, शासोऽग्राम अने आयुष्य ए रीते द्रव्यप्राण चार भेदे छे एना पर्याय तो पुद्गलने आत्री रक्षा छे ॥ ५५ ॥ ते आत्माधी अत्यत जुदा छे, माटे एवडे काड आत्माने जीवतु नथी ए पर्याय तो ज्ञान, धैर्य, तेना शासनी जे काइ नित्य स्थिति तेणे करी वर्जित छे ॥ ५६ ॥

एतत्प्रकृतिभूताभिः शाश्वतीभिस्तु शक्तिभिः ॥

जीवो जीवति न प्राणैर्विना तैरेव जीवति ॥

इदं चित्रं चरित्रं को हतं पर्यनुयुञ्जता ॥ ५८ ॥

अर्थ.—ए प्रकृतिस्य शाश्वती शक्ति तेणे रुरीने आत्मा सदैः जीवे छे, ए शुद्ध द्रव्यनयनी स्थिति जाणी ॥ ५७ ॥ जीव काइ प्राणे करीने जीवतो नथी, ए जीव तो प्राण विना जीवे छे, ए अचरानी वात पिचित्रफारी चरित्र मामली कोण न हर्ये ? अने ए वात शुद्ध नये कोण न जोडे ? ॥ ५८ ॥

नात्मा पुण्य न वा पापमेते यत्पुह्नलाभमेते ॥

आयवालशरीरस्योपादानत्वेन कल्प्यते ॥ ५९ ॥

पुण्य कर्म शुभं प्रोक्तमशुभं पापमुच्यते ॥

तत्कथं तु शुभं जतनं यत् पातयाति जन्मनि ॥ ६० ॥

अर्थ—आत्मा पुण्य नहीं तेम पाप पण नहीं, केमके

प्राप्त ने याद गो एकत्र है, अब वह कहते हैं कि इसके बीच  
उमादानमार्ग रखने के लिए ॥ ६० ॥ जो यह रखने के लिए उल्लङ्घित,  
अने तो अशुद्ध कर्म ने पाप लिये, जोहरे ने यह कर्म जो इसके  
विरुद्ध मनामयों देश पारे हैं ॥ ६१ ॥

न लायमन्य षष्ठ्य तापनायमग्न्य च ॥

पारदंश्वाविदीदेण फलभेदोऽन्ति सदान ॥ ६२ ॥  
फलाभ्यो गुणदृग्याभ्यां न भेदः पृथग्यापन्तोः ॥  
दुःखात् भिन्नते तंत्र यत् प्रणवकर्त्त चुरां ॥ ६३ ॥

अर्थः—माटे लोटी देही अने एक तुर्मनी देही ने  
प्रथा प्रवायपथ दें, माटे विजारीए तो फलभेद कर्त्त नहीं, तो यह  
अशुद्ध कर्म ने लोटी देही अने जो यह रखने के लिए गुणी  
देही ॥ ६१ ॥ मृगनां फल अने उपकां जो फल प्रगट है,  
तोथी पुण्यपाप मनों कां भेद नहीं, जो वही प्राप सुख लिये  
ए पुण्यनुं फल है, जो पाप दृग्याप ज है ॥ ६२ ॥

मर्वे पुण्यफलं दुःखं कर्मोदयकृतन्वतः ॥

तत्र दुःखप्रतीकां विसृद्धानां सुखन्वर्धीः ॥ ६३ ॥  
परिणामाय तापाय संस्काराय दुर्भेदितं ॥

गुणवृत्तिविरोधात् दुःखं पुण्यभवं सुखं ॥ ६४ ॥

अर्थः—माटे गर्वे पुण्यनुं फल तो दुःखस्प है, केसके ए  
कर्मना उदयथी थाय है; माटे दुःखना प्रतीकाने विषे गृहीते  
सुखवृद्धि उपजे है ॥ ६३ ॥ षष्ठित कहे है के, परिणामधी,  
तापथी अने संस्कारथी गुणवृत्ति विग्रधी एहावृं जो पुण्य,  
तोथी नीपन्युं जो सुख तो दुःखप्राय है ॥ ६४ ॥

देहपुष्टेरामर्त्यनायकानामपि स्फुट ।

महाजपोपणस्येव परिणामोऽतिदारुणं ॥ ६५ ॥

जलूकाः सुखमानिन्यः पितृत्यो रुधिर यथा ॥

भुजाना विषयान् याति दशामतेऽतिदारुणा ॥६६॥

अर्थ—नरने, राजाने तथा इदादिकने पण जे सुखमा शरीरनी पुष्टि गाय छे ते मोटा गोफ्टानी पेटे छे, ए कथा उत्तराध्ययनसूत्रमा कही छे तिहाथी जाणी जे गरे बग यसो, ते गरे परिणाम अतिदुग्ध छे ॥ ६५ ॥ जेम जलो लोही पीता थका सुख माने छे तेम विषय भोगमता थका प्राणी सुख माने छे, पण तेवी अते माठी दशाने पासे छे ॥ ६६ ॥

तीव्राग्निमगसशुद्ध्यत्पयमामयसामिव ॥

यत्रौत्सुक्यात्मदाक्षाणात्मता तत्र किं सुख ? ॥६७॥  
प्राङ्गपञ्चाचारतिस्पर्शात्पुटपाकमुपेयुपि ॥

इद्रियाणा गणे तापव्याप एव न निर्वृत्तिः ॥ ६८ ॥

अर्थ — ग्राकरी अग्निमा गलतराण रुग्नी लोह पाणी पीये छे तेम ज्या मरा इडियोनी उत्कठाथी घणीज गलतरा रहे छे त्या शु सुख छे ? ॥ ६७ ॥ पहला अयमा पठी पण जे यकी अरति उपजे, तेने अडक्कायी विपाक पासे थके इद्रियोना समूहमा ताप व्यापे पण सुग न थाय, एटले पहला गाध्या जे रुम ते जेगरे भोगमामा आये तेगरे पण अरति लड्नेन आवे, अने पठी ते कमों विपाके पण दुःख आपे ॥ ६८ ॥

सदा यत्र स्थितो द्वेषोऽस्त्रेव स्वप्रतिपथिषु ॥

सुखानुभवकालेऽपि तत्र तापहृत मन ॥ ६९ ॥

स्कंधात् स्कंधांतरारोपे भारस्येव न तत्त्वतः ॥

अश्वाल्हालादेऽपि दुःखस्य मंस्कारोऽपि निवर्त्तते ॥ ७० ॥

**अर्थः**—जेहने मदेव शत्रु उपर छेप रथो छे ते प्राणी जो घरमां सुखे बेठो होय, तो पण तेहने सुख न होय. तेम विषयसुखमां अनुमवकाले पण विषयना तापे करी जेनुं मन हणायुं छे, तेहने सुख क्यांथी होय ? ॥ ६९ ॥ जेम एक खंभा उपरथी बीजा खंभा उपर भार लीधो, पण तच्चथी भार उत्तर्यो नहीं एम इंद्रियोने आनंदे दुःखनो मंस्कार मटतो नथी ॥ ७० ॥

सुखं दुःखं च मोहश्च तिम्बोपि गुणवृत्तयः ॥

विरुद्धा अपि वर्तते दुःखजात्यनतिक्रमात् ॥ ७१ ॥  
कुरुनागफणाभोगोपमो भोगोदभवोऽस्त्रिलः ॥

विलासश्चित्ररूपोऽपि भयहेतुर्विवेकिनां ॥ ७२ ॥

**अर्थः**—सुख, दुःख अने मोह ए त्रणे जो के विरुद्ध छे, तो पण गुणवृत्तिये वर्ते छे: केमके दुःखनी जातिने उहँघन करी शकता नथी, माटे गुणवर्तीरूप छे ॥ ७१ ॥ क्रोधी नागनी फणना विस्तार सरखो मर्व भोगविलास छे. बली ते भोग-विलास यद्यपि विचित्ररूप छे, तथापि विवेकीजनने ते भयनो हेतु छे ॥ ७२ ॥

इत्यमेकत्वमापन्नं फलतः पुण्यपापयोः ॥

मन्यते यो न मूढात्मा नांतस्तस्य भवोदधेः ॥ ७३ ॥  
दुःखैकरूपयोर्भिन्नस्तेनात्मा पुण्यपापयोः ॥

शुद्धनिश्चयतः सत्यचिदानन्दमयः सदा ॥ ७४ ॥

**अर्थः**—ए रीते फलनी अपेक्षाये पुण्यपापनुं एकत्वपणुं

ठगब्यु, पण जे मूर्दे न मानशे ते समारम्भा भटकशे, अने जे मानशे ते भवसागर तरी जशे ॥ ७३ ॥ पुण्य अने पाप ए वेड एक सरसा दुःखस्वरूप ज छे, ते थकी आत्मा भिन्न छे, शुद्ध निश्चयनयवी सदा मतचिदानन्दमय छे ॥ ७४ ॥

**तत् तुरीयदशाव्यग्रहस्पमाचरणान्वयात् ॥**

भात्युष्णोऽग्रोतशीलस्य घननाशाद्वेरिव ॥ ७५ ॥  
जायते जाग्रतोऽक्षेभ्यश्चित्रार्थं सुखवृत्तय ॥  
सामान्य तु चिदानन्दस्प र्सर्वदशान्वयि ॥ ७६ ॥

**अर्थः**—ए वात त चाथी दिशाये जाणगा योग्य छे जेम वर्षाकालमा मध्य उरमी रहा पठी वादलनो नाश याय छे, अने सूर्यप्रभा शांभे छे, तेम व्यग्रस्प पिचित्र एहा आचरण पिशेप करी चोथी दशामा शांभे छे ॥ ७५ ॥ जागता जीपने इद्रियोनी सुखवृत्तिओ नाना प्रकारनी थाय छे, पण सामान्य जे चिदानन्दस्पर्स तने तो सर्व दशामा सरसु सुख छे ॥ ७६ ॥

**स्फुलिगनै र्यथा गह्यर्दीप्यते ताप्यतेऽयवा ॥**

नानुभूतिपराभूती तयेताभि किलात्मनः ॥ ७७ ॥  
साक्षिण सुखस्पस्य सुपुस्ता निरहमृते ॥

**र्यथा भान तया शुद्धविवेके तदतिस्फुट ॥ ७८ ॥**

**अर्थ.**—तणसे करीने जेम अग्नि ढीप नहीं, तपे नहीं, तेम अनुभव पराभवादिके रुरीने आत्माने रुड नयी ॥ ७७ ॥ निद्रापस्थामा जेम सुखस्पनो साक्षी जे आत्मा तने अहकारे रहित सुखनो भास याय छे, तेम शुद्ध विवेकने निप ताँ प्रगटपणे सुख भासे छे ॥ ७८ ॥

संग्रहनय उपर चाले, केमके सम्मति ग्रंथमां सिद्धसेन स्तुरिए  
कहुँ छे ॥ ८८ ॥

तन्मते च न कर्तृत्वं भावानां सर्वदान्वयात् ॥

कूटस्थः केवलं तिष्ठत्यात्मा साक्षित्वमाश्रितः ॥ ८९ ॥  
कर्तुं व्याप्रियते नायमुदासी नहव स्थितः ॥

आकाशमिव पंकेन लिप्यते न च कर्मणा ॥ ९० ॥

अर्थः—तेने मते कर्त्तापणुं नथी, केमके सदैवभावनो  
अन्वय छे; माटे कूटस्थ केवल निर्विक्रिय जे आत्मा ते साक्षीप-  
णाने आश्रीने रहो छे ॥ ८९ ॥ करवानो व्यापार करतो नथी;  
उदासीनी पेठे रहो छे. जेम कचरे आकाश लेपातुं नथी तेम  
कर्म आत्मा लेपातो नथी ॥ ९० ॥

स्वरूपं तु न कर्त्तव्यं ज्ञातव्यं केवलं स्वतः ॥

दीपेन दीप्यते ज्योतिर्नित्यपूर्वं विधीयते ॥ ९१ ॥  
अन्यथा प्रागनात्मा स्यात्स्वरूपाननुवृत्तिः ॥

भव हेतुसहस्रेणाप्यात्मता स्यादनात्मनः ॥ ९२ ॥

अर्थः—पोताना रूपने नवीन करबुं नथी, मात्र पोताना  
रूपने पोताथकी केवल जाणी लेबुं छे. जेम दीवेथी ज्योति  
दीपे छे तेम नित्य शाश्वत आत्मा स्वप्रकाश होवाथी पोते  
पोताने प्रकाशे छे ॥ ९१ ॥ एम आत्माने स्वप्रकाश अने शाश्वत  
अंगीकार करीए नही अने परप्रकाश तथा कर्तृत्व सिद्ध मानीए  
तो, पूर्वे अनात्मपणुं अंगीकार करबुं पड्यो, केमके क्रियावडे  
उत्पन्न थएला पदार्थनुं पूर्वबुं रूप जुदुंज होय छे, एवो नियम  
छे. एवी रीते आत्मानी उत्पत्तिनी पूर्वे आत्माने अनात्मा मानवो

पड़शे अने क्रियावर्डे आत्मानु रूपातर याय हे, एम मानी॥ तो आन्मानी आवृत्ति अगीकार रूपी पड़शे आवृत्ति अगीकार करीए तो समार गिपयक हजारो कृत्यरूप हतुगडे हजारो रूप बदलाये त्यारे पूर्ण पूर्णनु रूप अनात्मा अने उत्तर उत्तरक्रियाजन्य रूप आत्मा मानवो पड़शे, अने एम कर्यायी छेवटे अनपस्था दोप प्राप्त थशे ॥ ९२ ॥

नये तेनेह नो कर्त्ता किं त्वात्मा शुद्धभावभृत् ॥

उपचारात्तु लोकेषु तत्कर्तृत्वमपीष्यते ॥ ९३ ॥

उत्पत्तिमात्र धर्माणा चिशेषग्राहिणो जगुः ॥

अव्यक्तिरावृत्तेस्तेषा नाभावादिति का प्रमाद ॥ ९४ ॥

अर्थ — ते माटे आ नयने गिपे कर्त्तापणु नयी, केमके आत्मा शुद्ध भावनो धरनार छे अने लोकमा उपचारथी तेनु कर्त्तापणु कह छे ॥ ९३ ॥ गिशेषग्राही जे ज्ञानी पुरुषो छे ते पूर्णक रीते आत्माने क्रियामिद्व मानता नयी, किंतु आत्माना धर्मोनी उत्पत्ति माने छे अहीं कोइने गऱ्ठा थशे के, जेम आत्मा अव्यक्त छे तेम आत्माना धर्म पण अव्यक्त छे, तो ज्यारे जात्मानी उत्पत्ति मानता नयी त्यार तेना धर्मनी उत्पत्ति पण केम मनाय ? तेनु समाधान ए के, केटली एक अव्यक्त वस्तुओ आकाशनी पेटे जेमनी तेम रहे हे अने केटली एक रूपातरने पामे हे आत्मा शाश्वता व्यक्त छे अने तेना धर्म अशाश्वता व्यक्त छे, माटे तओनी आवृत्ति याय हे केमके जेम आत्मानी अनावृत्तिमा धणा प्रमाणो हे, तम जात्माना वर्मनी आवृत्ति न धरामा कोइ प्रमाण नयी, तेवी जात्मानी पुनर्गवृत्ति यती नयी पण आत्माना धर्मोनी पुनर्गवृत्ति याय हे, एवु मिद्व थयु ॥ ९४ ॥

सत्त्वं च परसंताने नोपयुक्तं कथंचन ॥

संतानिनामनित्यत्वात्संतानोऽपि न च ध्रुवः ॥९५॥

व्योमाव्युत्पन्निमत्तद्वगाहात्मना ततः ॥

नित्यता नात्मधर्माणां तद्दृष्टांतवलादपि ॥९६॥

अर्थः—आत्मानुं उत्पत्तिरहितपणुं दृष्टांतवडे दृढ करे छे. जेम पिता पुत्ररूप परिवारनी उत्पत्तिमां पूर्वे पूर्वपितारूप कारणथी उत्तर उत्तरपुत्ररूप कार्यनी उत्पत्ति थवाथी पितापणानो अभाव अने पुत्रपणानो भाव थाय छे, एम संकलना चालतां जेम पितानो नाश तेम पुत्रनो पण नाश थाय छे. तेम अनात्माथी आत्मानी उत्पत्तिरूप ग्रवाहथी पूर्वनो अभाव अने उत्तरनो भाव थतां पूर्वनी पेठे उत्तरना नाशनो पण संभव सिद्ध थाय छे, एथी आत्मा अशाश्वत अने नाशरूप ठरझे ॥ ९५ ॥ आकाशना दृष्टांतवडे आत्मानुं अचलपणुं अने आत्माना धर्मोनुं चलायमान-पणुं सिद्ध थाय छे. जेम आकाश उत्पत्ति रहित छे तेथी तेनुं रूपांतर थतुं नथी; तेमज आत्मा पण उत्पत्ति रहित होवाथी तेचुं रूपांतर थतुं नथी. अने आत्माना धर्म उत्पत्तिवान छे तेथी तेनुं रूपांतर थाय छे. अहीं पण आकाशनुं व्यतिरेकपणे दृष्टांत लेखुं. जे वस्तु आकाशनी पेठे उत्पत्ति रहित नथी होती तेनुं रूपांतर थाय छे ॥ ९६ ॥

रुजुःसूत्रनयमूत्रः कर्तृतां तस्य मन्यते ॥

स्वयं परिणमत्यात्मा यं यं भावं यदा यदा ॥९७॥

कर्तृत्वं परभावानामसौ नाभ्युपगच्छति ॥

क्रियाद्वयं हि नैकस्य द्रव्यस्याभिमतं जिनैः ॥९८॥

अर्थ.—ज्यारे आत्मानु रूपांतर थतु नथी त्यारे परिणा  
मग्रादनो उच्छेद यशो, एपी आशका करीने तेनो उत्तर कहे छे.  
रुजुम्बनयगालो, ज्यारे ज्यारे जे जे भाग्ना परिणामने आत्मा  
पामे छे त्यारे त्यारे त ते भागरूप कर्मवडे परिणामरूप उत्पत्ति  
माने छे, तथापि आत्माने कर्तुत्वपणे वीना भाग्नी प्राप्ति वर्ती  
नवी, केमके एक द्रव्यमा वे किया समवे नहीं, एबु जिनने  
अभिमत छे ॥ ९७—९८ ॥

**भूतिर्या हि क्रिया सैव स्यादेकद्रव्यसततौ ॥**

न साजात्य विना च स्यात् परद्रव्यगुणेषु सा ॥ ९९ ॥  
न चैकमन्यभावाना न चेत्कर्त्ताऽपरो जन ॥

**तदा हिंसादयादानहरणाय व्यवस्थितः ॥ १०० ॥**

अर्थ.—भूति एटले भाग जने क्रिया ए पनेनो एक  
अर्थ छे ते एक द्रव्य मततिने गिपे मामान्य विना न वाय,  
अने द्रव्यना गुणने गिपे पण न वाय, केमके कोड पण द्रव्य  
अपरभाग्नो कर्त्ता होतो नवी ॥ ९९ ॥ एमज आत्माने गिपे  
अन्य भाग्नु कर्त्तापणे नवी त्यारे शिष्य पूछे छे के हिंगा, दया,  
दान गोरनी व्यम्भ्या केम रहेशे ॥ १०० ॥

**मत्य पराश्रय न स्यात् फल कस्यापि यत्परि ॥**

तथापि स्वगत कर्म स्वफल नाभिर्त्तते ॥ १०१ ॥  
**द्विनस्ति न पर कोऽपि निश्चयान्न च रक्षति ॥**

**न चायु कर्मणो नाशो मृतिर्जीवनमन्यथा ॥ १०२ ॥**

अर्थ.—त्यारे गुरु यह छे, यद्यपि ए तारु गोलगु साच्चु  
छे केमके कोडने पण पराश्रये फल थतु नवी (तयापि पोताने

विषे रहेलुं जे कर्म ते पोताना फलने विषे प्रवर्त्ततुं नथी )  
॥ १०१ ॥ निश्चयवडे वीजा कोइने कोइ मारतो नथी तेम  
कोइनुं कोइ रक्षण करतो नथी; आयु कर्मनो नाश थाय नहीं  
अने मृत्यु जीवन अन्यथा थाय नहीं ॥ १०२ ॥

हिंसादयाविकल्पाभ्यां स्वमताभ्यां तु केवलं ॥  
फलं विच्चित्रमाप्नोति परापेक्षां चिना पुमान् ॥ १०३ ॥  
शरीरी ग्रियतां मा वा ध्रुवं हिंसा प्रमादिनः ॥  
दयैव यतमानस्य वधेऽपि प्राणिनां कच्चित् ॥ १०४ ॥

**अर्थः—** हिंसा अने दयानी पण मात्र कल्पना छे. पोताना  
मते करी तो परनी अपेक्षाथी पुरुष केवल विचित्र फलने  
पामे छे ॥ १०३ ॥ जीवनो वात थाय अथवा न थाय, तो पण  
जे प्रमादी जीव छे तेने निश्चये करी हिंसा थाय छे; अने जे  
दयावान प्राणी छे तेना हाथे कदाच कोइ जीवनो वात थइ  
जाय, तो पण तेने हिंसा लागती नथी ॥ १०४ ॥

परस्य युज्यते दानं हरणं वा न कस्यचित् ॥

न धर्मसुखयोर्यत्ते कृतनाशादिदोपतः ॥ १०५ ॥  
भिन्नाभ्यां भक्तवित्तादिपुङ्गलाभ्यां च ते कुतः ? ॥

स्वत्वापत्तिर्यतो दानं हरणं सत्वनाशनं ॥ १०६ ॥

**अर्थः—** कोइ वीजाने दान देतो नथी, अने वीजानी  
पासेथी कोइ कांइ हरण करी लेतो नथी; धर्म अने सुखने विषे  
पण दान तथा हरणनो संभव नथी, केमके कृतनाश अने अकृतनो  
प्रसंग इत्यादि दोप प्राप्त थशे. जेम दान कर्यु तेनो नाश थाय  
तेने कृतनाश कहे छे, अने जे वीजाने आप्युं नथी तेसुं हरण

करवु ते अकृतागम प्रमग रुहगाय एवा दोप आत्माने पिंप  
प्राप्त थशे ॥ १०५ ॥ केमके भोजन तथा घनादिक जे पुद्गल  
ते तो आत्माथी भिन्न छे, तो तेमा क्याथी पोतापणु आव्यु ?  
माटे दान अने हरण ते पोताथी ज नाश छे ॥ १०६ ॥

कर्माद्याच्च तद्वान हरण वा डारीरिणा ॥

पुरुषाणा प्रयासः कस्ततोपनमति स्वतः ॥ १०७ ॥  
स्वागताभ्या तु भावाभ्या केवल दानचौर्ययोः ॥  
अनुग्रहोपघातां स्तः परापेक्षा परस्य न ॥ १०८ ॥

**अर्थ.**—वली त दान अने हरण प्राणीने कर्मना उदय-  
यक्ती छे, त्या पुस्पने शो प्रयास छे ? ते तो पोतानी मेलेज  
उदय पाम छे ॥ १०७ ॥ पोतामा रक्षा एवा जे दान अने  
हरणना भाव तेणे करीने एक्यी उपकार याय, भीजाथी उपघात  
याय, त्या परनी अपेक्षा परने नहीं ॥ १०८ ॥

पराश्रिताना भावाना कर्तृत्यागभिमानत ।

कर्मणा य पतेऽज्ञानी ज्ञानग्रास्तु न लिप्यते ॥ १०९ ॥  
कर्त्त्वमात्मनो पुण्यपापयोरपि कर्मणो ॥

रागद्वेषाद्याना तु कर्त्त्वानिष्टस्तुषु ॥ ११० ॥

**अर्थ** —पर आग्रित जे भाव तेना हु कर्त्ता तु, एम  
अभिमानवी रह्यु, एवा कर्म अनानी चधाय छे, पण ज्ञानी तेना  
कम लेपाता नवी ॥ १०९ ॥ माट आत्मा त पुण्य पापस्प  
कर्मनो कर्ता छे, गग-द्रेष आशुपनो कर्त्ता छे अने इष्ट अनिष्ट  
यस्तुने पिंपे पण आत्मा कर्त्ता छे ॥ ११० ॥

रज्यतं द्वेष्टि चार्थेषु तत्तत्कार्यविकल्पतः ॥

आत्मा यदा तदा कर्म भ्रमदात्मनि युज्यते ॥१११॥  
स्नेहाभ्यक्तत नोरंगं रेणुनाश्लिष्यते यथा ॥

रागद्वेष्टानुविहस्य कर्मवंधस्तयामतः ॥ ११२ ॥

अर्थः—जेवारे ते ते कर्मना विकल्पयी आत्माने कोइ पदार्थ उपर रागदशा अथवा द्वेष उपजे हे तेवारे आत्मामां कर्मनो भ्रम जोडाय हे ॥ १११ ॥ तेल लगाडेला शरीरे जेम रजनो लेप बलगे हे तेम रागी अने द्वेषी आत्माने कर्मनो वंध बलगे हे ॥ ११२ ॥

आत्मा न व्यापृतस्तत्र रागद्वेष्टार्थं सृजन् ॥

तन्निमित्तोपनभ्रेषु कर्मापादानकर्मसु ॥ ११३ ॥  
लोहं स्वक्रिययाभ्यन्ति भ्रामकापलसंनिधौ ॥

यथा कर्म तथा चित्रं रक्तद्विष्टात्मसंनिधौ ॥११४॥

अर्थः—तिहाँ आत्मा पोते कोइ क्रिया करतो नथी, पण राग द्वेष करतो थको ते निमित्ते पाम्यां जे कर्म तेना निमित्ते कर्त्तापणुं कर्म हे; पण तिहाँ आत्मा तो रागद्वेष स्पष्ट कर्मनो मूकनारो हे. एटले आत्मा भावकर्मनो व्यापारवंत हे; पण द्रव्य कर्मनो व्यापारवंत नथी ॥ ११३ ॥ जेम चमक पापाण ते लोहने आकर्षे, तेणे करी लोह पोतानी क्रियाये चमक पासे आवी मले, तेम रागद्वेषी आत्मानी पासे कर्म आकर्षणे आवी मले हे ॥ ११४ ॥

वारि वर्षन् यथांभोदो धान्यवर्षी निगद्यते ॥

भावकर्म सृजन्नात्मा तथा पुङ्गलकर्मकृत् ॥ ११५ ॥

नैगमव्यवहारौ तु ब्रूतः कर्मादिकर्तृता ॥  
व्यापारः फलपर्यंतः परिदृष्टो यदात्मनः ॥ ११६ ॥

अर्थ.—जेम पाणी वरसे छे ते लोकव्यवहारे धान्य वरसे छे एम रहीए, तेम भागर्भ करतो वफो आत्मा पुढ़गल कर्मनो कर्ता कहीए ॥ ११५ ॥ नैगम अने व्यवहारनयवाला तो कर्मादिकनो कर्ता आत्माने माने छे, जे आत्मानो व्यापार ते फलपर्यंत देखाय छे ॥ ११६ ॥

अन्योऽन्यानुगताना का तदेतदिति वा भिदा ॥

यात्तचरमपर्याय यथा पानीयदुर्गम्योः ॥ ११७ ॥  
नात्मनो विकृति दत्ते तदेपा नयकल्पना ॥  
शुद्धस्य रजतस्पेव शुक्तिगर्भप्रकर्तपना ॥ ११८ ॥

अर्थः—परस्पर मल्या एगा जे नय तेने, ( एनो निर्णय यात् चरमपर्याय छे ) परतु जातिभेद केम जणाय ? जेम दूध अने पाणीना भयोगनी पेठे सग्रह माने नैगमने, अने नैगम माने सग्रहने, ए ने नय माहोमाइ भले छे एम व्यवहार पण भले छे ॥ ११७ ॥ चली शुद्धनयवालो नोले छे के, आत्माने मिकार नयी मिकार ए नैगम तया व्यवहारनयनी कल्पना छे केनी पेठे १ ते कह छे जेम शुद्ध स्पाने झीप्नो धर्म कल्प छे तेनी पेठे जाण्यु ॥ ११८ ॥

सुषितत्व यथा पाय गत पश्युपचर्यते ॥

तया पुह्लर्मस्या विक्रियात्मनि नालिशै ॥ ११९ ॥

कृष्णः शोणोऽपि चोपाधेनार्गुद्दः स्फटिको यथा ॥  
रक्तोद्विष्टस्तथैवात्मा संसर्गात्पुण्यपापयोः ॥१२०॥

अर्थः—जेम पंथीजनने लुटतां लोक कहेशे जे मार्ग लुटाणो, ए लोक वाक्य छे तेम मूर्ख प्राणी पुद्गल कर्ममां रही जेवी किया करे ते आत्माने विषे माने छे ॥ ११९ ॥ जेम कालो अथवा रातो स्फटिक छे ते उपाधिथी छे, माटे तेने अशुद्ध न कहिये; तेम पुण्य-पापना संयोगथी आत्मा रागी-द्वेषी कहेवाय छे ॥ १२० ॥

सेयं नटकला तावद् यावद्विधिकल्पना ॥

यद्वूपं कल्पनातीतं न तु पश्यत्यकल्पकः ॥ १२१ ॥  
कल्पनामोहितो जंतुः शुक्लं कृष्णं च पश्यति ॥  
तस्यां पुनर्विलीनायामशुक्लं कृष्णमीक्षते ॥ १२२ ॥.

अर्थः—जिहां सुधी विविध प्रकारनी कल्पना होय तिहां सुधी ए सर्व नटकलारूप छे, पण कल्पनाये अतीत जे रूप तेने तो जे अकल्प कहो होय ते देखे ॥ १२१ ॥ पण कल्पनाये मुङ्गाणो जे जीव ते तो धोलाने कालुं देखे अने कालाने धोलुं देखे, अने ते कल्पना जेवारे जाय तेवारे तो कालाने कालुं ज देखे अने धोलाने धोलुं ज देखे ॥ १२२ ॥

तद्वानं सा स्तुतिर्भक्तिः सैवोक्ता परमात्मनः ॥

पुण्यपापविहीनस्य यद्वूपस्यानुचितनं ॥ १२३ ॥  
शरीररूपलावण्यवप्रच्छब्राध्वजादिभिः ॥

वर्णितैर्वीतरागस्य वास्तवी नोपवर्णना ॥ १२४ ॥

अर्थः—पुण्य-पाप गहित एहगा जे परमात्मा प्रभु तेना स्वरूपनु चित्तगु तेजे ध्यान कहिये, अने स्तुति पण तेज तथा भक्ति पण तेज कहिये ॥ १२३ ॥ पण शरीरना वर्ण, रूपे करी, लागण्यताए करी, ममममरणे अने उत्रे फरी, तथा इदधजादिके करी जे परमात्माने नगण्या एहगी स्तुतिने वस्तुत साची न कहिये ॥ १२४ ॥

व्यग्रहारस्तुति· सेय वीतरागा-मवर्त्तिना ॥

ज्ञानादीना गुणाना तु वर्णना निश्चयस्तुति· ॥ १२५ ॥  
पुरादिवर्णनाद्राजा स्तुत· स्वादुपचारत· ॥

तत्त्वतः शौर्यगा भीर्यधेयादिगुणवर्णनात् ॥ १२६ ॥

अर्थः—केमके ए स्तुति तो व्यग्रहार छे, पण जेमा वीतरागना ज्ञानादिकू गुण प्रशमना तेहन निश्चय स्तुति कहिये ॥ १२५ ॥ जेम देख नगरादिके करी राना वर्गणगो ए उपचारे स्तुति जाणवी, पण राजानु गल, गामीर्यता, धैर्यतानु वर्णनबु, ते निश्चयथी स्तुति कहिये ॥ १२६ ॥

मुख्योपचारधर्माणामविभागेन या स्तुति ॥

न मा चित्तप्रसादाय रुचित्य कुकवेरिन ॥ १२७ ॥  
अन्यथाभिनिर्गेन प्रत्युतानर्थकारिणी ॥

सुतीव्यवदगधारं प्रसादेन करे धृता ॥ १२८ ॥

अर्थः—जेम दृसिनी इमिताही पडित गीत्रे नहीं, तेम गाय उपचार देखी गहेचण मिनानी ने स्तुति फरिये त थकी चित्तप्रसन्न याय नहीं ॥ १२७ ॥ जे पोताना हठ-कदाग्रह करी

मुखउपचारे स्तुति करी गुण माने छे, पण ते ऊलटी अनर्थकारी छे; जेम प्रमादे करी हाथमां ज्ञालेली तरवार ते जो कदाच पडे, तो ऊलटी अनर्थ-विधात करे छे; तेनीपरे ते स्तुति पण अन्यथा जाणवी ॥ १२८ ॥

**मणिप्रभामणिज्ञानन्यायेन शुभकल्पना ॥**

वस्तुस्पर्शितया न्यायया यावज्ञानञ्जनप्रथा ॥ १२९ ॥  
पुण्यपापविनिर्मुक्तं तत्त्वतस्त्वविकल्पकं ॥

**नित्यं ब्रह्म सदा ध्येय मेषा शुद्धनयस्थितिः ॥ १३० ॥**

**अर्थः—**मणिरत्ननी कांति देखीने जेम मणिनुं ज्ञान के० ओलखाण थाय छे, ए दृष्टांते शुभ कल्पनाये करी आत्मानुं ज्ञान थाय छे. पछी वस्तुस्पर्शिकवडे करी योग्यता थाय छे; पण ज्यां सुधी निरंजन प्रथा नथी थड त्यां सुधी कर्म छे ॥ १२९ ॥ माटे पुण्य-पाप रहितपणे तत्त्वथी निर्विकल्प एवो शाश्वतो जे आत्मा ते सदाय ध्याववो. एवी शुद्ध नयनी स्थिति छे ॥ १३० ॥

**आश्रवः संवरश्चापि नात्मा विज्ञानलक्षणः ॥**

यत्कर्मपुद्गलादानरोधावाश्रवसंवरः ॥ १३१ ॥  
आत्मादत्ते तु यैर्भावैः स्वतंत्रः कर्मपुद्गलान् ॥

**मिथ्यात्वाविरतीयोगाः कषायास्ते तदाश्रवा ॥ १३२ ॥**

**अर्थः—**आत्मा ज्ञानरूप छे, माटे आत्माने आश्रव. संवर कांड न कहिये; पण कर्म पुद्गलनुं ग्रहबुं तथा रोधबुं ते आश्रव संवर छे ॥ १३१ ॥ जे भावे करी स्वाधीनपणे कर्म-पुद्गलने आत्मा ग्रहे छे, ते मिथ्यात्व, अविगति, कषाय अने योगरूप आश्रवे करी जाणबुं ॥ १३२ ॥

भावनाधर्मचारित्रपरिपहजयादयः ॥  
 आश्रमोच्छेदिनो धर्मा आत्मनो भावसवरा ॥१३३॥  
 आश्रम सप्तरो न स्यात्सवरश्चाश्रव छचित् ॥  
 भवमोक्षफलाभेदोऽन्यथा स्याद्वेतुसकरात् ॥ १३४ ॥

**अर्थः**—अने भावना धर्म जे चारित्र हे, जेथकी परिपहनो जय थाय ते ए आश्रमनो उच्छेदक धर्म हे ए आत्माने भावसवर कहिये ॥ १३३ ॥ जे आश्रव ते सप्त न याय, अने जे संवर ते आश्रम न थाय हेतु सकर ए ते जो कदापि एकरूप थाय, तो समार अने मोक्ष ए वेता फल पण एक थाय, पण तेमा भेद रहे नहीं एटले ज्या आश्रये रुग्नी सप्तरनु सक्रमण थाय त्या मोक्षफल जाणु, अने ज्या सप्तरे करी आश्रमनु सक्रमण थाय त्या समारफल जाणु ॥ १३४ ॥

कर्माश्रियाश्च स्वप्नान्नात्मा भिन्नर्निजाशयै ॥

करोति न परापेक्षामलभूष्णु स्वत भदा ॥१३५॥  
 निमित्तमात्रभृतास्तु हिमाऽहिमादयोऽग्निला ॥

ये परप्राणिपर्याया न ते स्वफलहेतर ॥ १३६ ॥

**अर्थ**—आश्रमभावने सप्तर करतो थको जे पोताना आत्मायी जुआ नथी एवा जे पोताना जाशय तेणे करी परापेक्षान करे, केमके ते पोतायी सदा ममर्य छे ॥ १३५ ॥ जे हिमा अहिमादिरु मधला परा प्राणिना पर्याय ते आन्माने निमित्तभृत जे, पण पोताने फलहेतु नथी ॥ १३६ ॥

व्यपहारविमृढस्तु हेतृस्तानेव मन्यते ॥

वायुक्तियारतस्पान्तस्तत्त्व गूढ न पड्यति ॥१३७॥

हेतुत्वं प्रतिपद्यन्ते नैवेति नियमास्पृशः ॥

यावन्त आश्रवाः प्रोक्तास्तावन्तोहि परिश्रवाः ॥ १३८

अर्थः—व्यवहारमृढ़ जे आत्मा ते परपर्यायने पोताना फलहेतु माने छे, माटे जेनुं मन वाह्यक्रियामां रक्त छे तेवा प्राणी गुस तच्चने देखता नथी ॥ १३७ ॥ जे हिंसादिक तथा अहिंसादिक परपर्याय हेतुपणुं छे, तेने पडिवजे अथवा नथी पडिवर्जिता एहवो नियम ते तो निश्चयना जे फरमनारा छे तेहने जेटला आश्रव छे तेटला संवररूप थाय ॥ १३८ ॥

तस्मादनियतं रूपं वाह्यहेतुषु सर्वथा ॥

नियतौ भाववैचित्र्यादात्मैवाश्रवसंवरौ ॥ १३९ ॥  
अज्ञाता विषयासक्तो वध्यते विषयैस्तु नः ॥

ज्ञानाद्विद्वि मुच्यते चात्मा नतु शास्त्रादिपुद्गलात् ॥ १४० ॥

अर्थः—ते माटे सदाय वाह्य हेतुने विषे अनियतरूप छे. नियतिने विषे भावना विचित्रपणाथकी आत्मा तेज संवर आश्रवरूप छे ॥ १३९ ॥ जे अज्ञानी छे अने विषयासक्त छे, तेहिज विषयमां वंशाय छे. ते विषय तो आत्माने आत्मज्ञानथकी मृकाय, पण शास्त्रादिक पुद्गलथकी न मृकाय ॥ १४० ॥

गाम्ब्रं गुरोऽश्च विनयं क्रियामावद्यकानि च ॥

संवरांगतया प्राहु व्यवहारविशारदाः ॥ १४१ ॥  
विशिष्टा वाक्तनुस्वांतं पुद्गलास्तेऽफलावहाः ॥

ये तु ज्ञानादयो भावाः संवरत्वं प्रयांति ते ॥ १४२ ॥

अर्थः—शास्त्र भण्डुं, गुरुनो विनय करवो, तथा आवश्यकादिक क्रिया करवी एने व्यवहारमां विचक्षण पुरुषोए संवरनां

अंग कहा छे ॥ १४१ ॥ जे रुडा मन-मचन-कायाये करी  
प्रवर्त्तु तेहना जे पुद्गल ते फलदायी छे, पण जे ज्ञानादिक भाव  
छे, ते संग्रहणाने पामे छे ॥ १४२ ॥

ज्ञानादिभावयुक्तेषु शुभयोगेषु तद्वत् ॥

मवरत्प समारोप्य समयते व्यवहारिणः ॥ १४३ ॥  
प्रशस्तरागयुक्तेषु चारित्रादिगुणेऽपि ॥

शुभाश्रयत्पमारोप्य फलभेद वदति ते ॥ १४४ ॥

अर्थः—ज्ञानादिक भावे युक्त एवा जे शुभ योग तने  
पिप तद्वगत जे समरत्व तने आरोपीने व्यवहार प्रवर्त्तक जे जीव  
ते हर्ष पामे छे ॥ १४३ ॥ रुडा रागे युक्त एवा जे चारित्रादिक  
गुण तने पिपे पण शुभ आश्रयणु आरोपीने फलभेद कह  
छे ॥ १४४ ॥

भवनिर्विणहेतना वस्तुतो न विपर्यय ॥

अज्ञानादेव तद्वाना ज्ञानी तत्र न सुखति ॥ १४५ ॥  
तीर्थकूज्ञामहेतुत्प यत्पम्ब्यक्त्पस्य वर्णते ॥  
यचाहारहेतुत्व मयमस्यातिशायिनः ॥ १४६ ॥

अर्थ —मसार तया मोक्षनो हेतु तने वस्तुतत्त्व राइ  
पिपर्याम नथी, पण अज्ञानना योगयकी त जगाये पिपर्यामिपणु  
याय छे, पण तिहा ज्ञानी पुरुष राइ मुज्जाता नवी ॥ १४५ ॥  
जिननाम र्मनो हतु जे ममकित्तन र्णदीण त्रीए, त पण उपचार  
कहाय छे, अने आहारफ शरीरनो हतु जे अतिशय लविष्वत  
मंयमी मुनि ते पण उपचार कहाय छे ॥ १४६ ॥

अर्थः—निर्जगनुं कारण ते शुद्ध ज्ञाने सहित प्रगत्यो  
अने चित्तनी चंचलवृत्तिने रोकतो एहो वार भेदे तप छे  
॥ १५५ ॥ जिहां प्रभुना ध्यानयुक्त क्षायनो रोध छे, व्रह्मचर्यनुं  
धरवुं छे ते शुद्ध तप जाणवो. ए सिवाय वीजो तप ते मात्र  
लांघण करवा जेवो छे ॥ १५६ ॥

**बुभुक्षा देहकार्यं वा तपसो नास्ति लक्षणं ॥**

तितिक्षाब्रह्मगुप्त्यादिस्थानं ज्ञानं तु तद्वपुः ॥ १५७ ॥  
ज्ञानेन निपुणेनैक्यं प्राप्तं चंदनगंधवत् ॥

**निर्जरामात्मनो दत्ते तपो नान्यादृशं क्वचित् ॥ १५८ ॥**

अर्थः—भूखे मरवुं, शरीरने दुबलं करवुं, ए तपनुं लक्षण  
नथी; पण जिहां ज्ञानयुक्तपणे व्रह्मचर्यनी गुसि, तथा तितिक्षा के०  
शांति होय ते तपनुं स्वरूप छे ॥ १५७ ॥ ज्ञान साथे एकता  
भावने पाम्यो एवो जे तप तेने तप कहिये, जेम चंदन साथे  
गंध एकताभावने पाम्यो छे, तेनीपरे ए तप ते ज्ञाने युक्त थको  
आत्माने निर्जरा फल आपे, पण वीजी रीते न आपे ॥ १५८ ॥

**तपस्वी जिनभक्त्या च शासनोद्घासनोत्यया ॥**

पुण्यं बधनाति बहुलं मुच्यते तु गतस्पृहः ॥ १५९ ॥  
कर्मतापक्तरं ज्ञानं तपस्तनैव वेत्ति यः ॥

**प्राप्नोतु स हतस्वांतो विपुलां निर्जरां कथं ? ॥ १६० ॥**

अर्थः—निरासी भावे तपनो करनारो तपसी जिन तथा  
ज्ञानभक्तिए करी शासनने दिपावे, घण्यं पुण्य वांधे अने कर्मथी  
मुकाय ॥ १५९ ॥ कर्मने तपावे एवुं ज्ञान छे, अने ते ज्ञानने

जे धणी तप न जाणे ते तपमी निरुद्धिनो धणी प्रियुल निर्जरा  
केम पामे ॥ १६० ॥

अज्ञानी तपसा जन्मकोटिभि कर्म यन्नयेत् ॥

अत जानतपोयुक्तस्तत्क्षणेनैव सहरेत् ॥ १६१ ॥  
जानयोगस्तपःशुद्धमित्पाहृभुनिपुगचा, ॥

तस्माद्विकाचित्स्यापि कर्मणो युज्यते क्षय ॥१६२॥

**अर्थ—**—ज्ञान विना एक कोटि भग सुधी जेटला तप  
करे, ते तपमा जेटला कमक्षय न थाय तेटला कर्मोने एक क्षणमा  
ज्ञान सहित तपे करी सपावे ॥ १६१ ॥ माटे ज्ञानयोगे जे तप  
कररो ते शुद्ध छे, ए रीते प्रभु कहे न्हे, केमके ते तपथी निका-  
चित कर्मनो क्षय थाय छे ॥ १६२ ॥

यदिद्वाप्रर्गकरण श्रेणि शुद्धा च जायते ॥

ध्रुवः स्थितिक्षयस्तत्र स्थिताना प्राच्यकर्मणा ॥१६३॥  
तस्माद्वज्ञानमय शुद्धस्तपस्वी भावनिर्जरा ॥

शुद्धनिश्चयतस्त्वेषा शुद्धाशुद्धस्य कापि न ॥१६४॥

**अर्थ—**—जे तपयी इहा अपूर्गकरण श्रेणि शुद्ध थाय,  
बली एयी पूर्गकर्मनी रही जे स्थिति ते स्थिति निश्चयथी क्षय  
थाय ॥ १६३ ॥ ते माटे नानमयी जे शुद्ध तपमी तेने निश्चयथी  
शुद्ध भाव निर्जरा थाय, पण अज्ञान तपमीने काड न थाय ॥१६४॥

यथ कर्मत्ममश्लेषो द्रव्यत भ चतुर्विधः ॥

तडेत्वध्ययमायात्मा भावतस्तु प्रकीर्त्तित ॥१६५॥

वैष्णवत्यात्मनात्मानं यथा सर्पस्तथासुमान् ॥

तत्तज्ज्ञावैः परिणतो वधनात्यात्मानमात्मना ॥१६६॥

**अर्थः**—कर्मनी साथे आत्मानुं जे मलबुं तेने वंध कहिये, ते वंध चार भेदे छे, ते हेतु अध्यवसाये आत्मभावथी कहो छे ॥ १६५ ॥ जेम सर्प पोतानी मेले पोते विंटाय छे तेम आत्मा पण ते ते भावे परिणम्यो थको पोतपोतानी मेलेज कर्म साथे वंधाय छे ॥ १६६ ॥

वधनाति स्वं यथा कोशकारकीटः स्वतंत्रुभिः ॥

आत्मनः स्वगतैर्भावैर्बंधने सोपमा समृता ॥ १६७॥  
जंतूनां सापराधानां वंधकारी न हीश्वरः ॥

तद्वंधकानवस्थानादवंधस्याप्रवृत्तिः ॥ १६८ ॥

**अर्थः**—जेम रेशमनो कीडो पोतानी लाले करी पोतेज वंधाय छे तेम आत्मा पोताना रागादि परिणामे करी पोतेज वंधाय छे, ए उपमा कही ॥ १६७ ॥ पण जे ईश्वर कर्ता कहे छे ते वात निषेध छे, अपराधी जीवने काँइ ईश्वर वंधकर्ता नथी, ते ईश्वर वंधकर्त्तापिणाना निषेधवा थकी अवंधनीय आत्माने विषे अप्रवृत्ति छे. एटले स्वभावेज वंधनिवृत्ति आत्माने छे पण ईश्वर कर्ता नथी ॥ १६८ ॥

तत्त्वज्ञानप्रवृत्त्यर्थं ज्ञानवन्नोदना ध्रुवा ॥

अबुद्धिपूर्वकार्येषु स्वभादौ तददर्शनात् ॥ १६९ ॥  
तथा भव्यतया जंतुर्नोदितश्च प्रवर्तते ॥

वधनन् पुण्यं च पार्षं च परिणामानुसारतः ॥१७०॥

**अर्थः—**ज्ञानगतनी जे प्रेरणा छे ते तच्चज्ञाननी प्रवृत्तिने अर्थं भुव छे, केवके स्वप्नादिकू जे अनुद्विपर्यनु रार्थ छे तेने निषे ए ज्ञाननी प्रेरणा काह देखाती नयी, ते माटे ॥ १६९ ॥ तेमज ग्राणी भव्यताये प्रेर्थो यको पमिनामने अनुमारे करी पुण्य, पापने नाधतो यको प्रपर्ते न्हे ॥ १७० ॥

शुद्धनिश्चयत्, स्वात्मा न वहो वधशक्तया ॥

भयकपादिक कितु रजावहिपतेरिव । १७१ ॥  
रोगस्थित्यनुमारेण प्रगृत्ती रोगिणो यथा ॥

भवस्थित्यनुसारेण तथा वधोऽपि वर्ण्यते ॥ १७२ ॥

**अर्थः—**शुद्ध निश्चयनयकी तो आत्मा अनधक छे, पण भयकपादिके करी नधनी शका रह छे, जेम दोरडु देखी सर्पनी शका उपजे छे तेनीपर जाण्यु ॥ १७१ ॥ रोगनी स्थितिने अनुमारे रोग छे, एटले जे दिग्से शरीर उपनु, तेन दिग्मधी मर्द गेगनी स्थितिओ शरीरमा उत्पन्न थयेली छे अर्थात शरीर कपल गेगनी म्यतिम्यन छे, पण ते रोग जेवार रोगी कुपृष्ठ सरे तेवारे प्रगग्य याय न्हे तेवार रोगी पुस्प जेम रोगनी प्रवृत्ति गणे छे तेमन भवस्थितिने अनुमार आत्माने वध कहिये ढीप ॥ १७२ ॥

ददाज्ञानमयीशका भनोमपनिनीषत ॥

अध्यात्मजाग्रमिच्छति श्रोतु चेराग्यकाक्षिण, ॥१७३  
दिग्गाप्रदर्शक शार्या चद्गन्यायेन तत्पुन ॥

प्रत्यक्षप्रियथा शका न हि द्वति परोक्षभी ॥१७४॥

**अर्थ —**दद ज्ञानमय आर्यी जे शका तेहने टालगाने

इच्छतो, वैराग्यनो अभिलापी थको, अध्यात्मशास्त्र सांभलवाने  
इच्छे छे ॥ १७३ ॥ जेम निर्मल चक्रु छतां ग्रहणवेला जेवी नजर  
थह जाय तो तंणे करी एक चंद्रनी पासे बीजो चंद्र देखे ए  
न्याये करी जे अध्यात्मशास्त्र छे ते पण दिगिनु देखाइनार छे,  
पण परोक्ष बुद्धि काँइ प्रत्यक्ष विषयनी आशंकाने टाळी न शके.  
एटले अध्यात्मनो विषय प्रन्यक्षणे नथी, परोक्षणे छे; माटे  
स्वभावे जे अध्यात्मशास्त्र छे ते परोक्षबुद्धि छे, पण अनुभव ते  
साक्षात् प्रत्यक्षपणाने हणी न शके; एटले आत्मानुभवी पुरुषो  
पोताना अनुभवे करी आत्मानो प्रत्यक्ष अनुभव करे छे ॥ १७४ ॥  
शंखे श्वैत्यानुमानेऽपि दोषात्पीतत्वधीर्यथा ॥

शास्त्रज्ञानेऽपि मिथ्याधीः संस्काराद्वंधधीस्तथा १७५  
श्रुत्वा मत्वा मुहुः स्मृत्वा साक्षादनुभवंति ये ॥  
तत्त्वं न वंधधीस्तेषामात्मावंजः प्रकाशते ॥ १७६ ॥

**अर्थः**—जेम मधुरानो रोगवंतं पुरुषं ते यद्यपि शंखने  
उज्ज्वलं तो जाणे छे, पण रोगे करी तेने पीला वर्णनी बुद्धि थाय  
छे, तेम शास्त्रे करी आत्माने निर्मलं तो जाणे छे पण मिथ्यात्व  
बुद्धिना संस्कारथकी वंधरूप बुद्धि छे. एटले आत्माने रागी  
द्वेषी वंधरूप जे देखे छे, ते अनुभव विना देखे छे. ए भावार्थ  
छे ॥ १७५ ॥ गुरुना मुखथी अध्यात्मशास्त्रनुं सांभलवूँ तेने  
श्रवण कहे छे, ते सांभलेजा विषयनो अनुक्रमे पुनः पुनः अंतः-  
करणमां विचार करवो तेने मनन कहे छे, अने सांभलीने विचार  
करी संशय तथा विषयमात्र रहित थड्ने उक्त आध्यात्मिक  
विषयरूप स्वात्मतत्त्वं अंतर्वृत्ति करीने जे साक्षात् अनुभव करवो  
तेने निदिध्यासन कहे छे. एवा स्वात्मं तत्त्वज्ञानं पुरुषनै वंधबुद्धि

होती नधी, केमके नधने प्रकाश करनार तो आत्मा पोतेन छे  
त अनुभव यथा पठी अज्ञानरूप गनो आश्रय केम फरे? व्या  
सुधी आत्मा अनुभव अयगा ज्ञानमडे प्रकाशने पाम्यो न हतो  
त्या सुधी तमरूप अज्ञान अने नधगान् यथो हतो, पण अनुभव  
यथा पछी आत्माने निप नध नयी ॥ १७६ ॥

**द्रव्यमोक्षः क्षयः कर्मद्रव्याणा नात्मलक्षण ॥**

भावमोक्षस्तु तज्ज्ञेतुरात्मा रत्नव्रयान्वयी ॥ १७७ ॥  
ज्ञानदर्शनचारित्रैरात्मक्षय लभते यदा ॥

**कर्माणि कुपितानीव भवत्याशु तदा पृथक् ॥१७८॥**

अर्थ—जे द्रव्यकर्मना क्षय त द्रव्यमोक्ष छे, पण ते  
काइ आत्मानु लक्षण नयी, मात्र ते द्रव्य कर्मनो क्षय त मोक्षनो  
हतु थाय छे, पण आत्मा तो रत्नव्रय परिणतिरूप छे, तेने  
द्रव्यकर्मना क्षय तो उपचारयी मोक्षहतु कहिये, पण वस्तुथी  
तत्त्वुद्धिये कहगाय नहीं ॥ १७७ ॥ ज्ञान-दर्शन-चारित्र ए  
रत्नव्रयीमडे करीने जेगारे आत्मा एकभासपणाने पाम, तेगारे  
जे कर्म हता, ते झोडक मसारी जीम जेम रीमाइने घरमायी जुदो  
निक्कले तेम जीमयी जुदा नीक्कली जाय ॥ १७८ ॥

**अतो रत्नव्रय मोक्ष स्तदभावे कृतार्थता ॥**

पावडिगणलिंगैश्च गृहलिंगैश्च कापि न ॥ १७९ ॥  
पावडिगणलिंगेषु गृहलिंगेषु ये रता ॥

**न ते समयसारस्य ज्ञातारो वालुहयः ॥ १८० ॥**

अर्थ—ए माटे जे रत्नव्रयी तेथीन मोक्ष छे, पण त  
रत्नव्रयीन जभाव पाहटी साधुना समूहन तथा पाहडी ग्रही-

लिंगीने कृतार्थपणुं कांड नथी ॥ १७९ ॥ माटे पाखंडी साधुना  
समूहमां तथा पाखंडीयही लिंगीमां जे प्राणी रक्त छे तेहने वाल-  
मतिवाला समजवा; पण ते मिद्धांतना सार पट्टले रहस्यना  
जाण नथी ॥ १८० ॥

भावलिंगरता येषु सर्वसारविदो हि नं ॥

लिंगस्या वा गृहस्या वा सिध्यन्ति धुनकल्मषाः ॥ १८१ ॥

भावलिंगं हि मोक्षांगं द्रव्यलिंगमकारणं ॥

द्रव्यं नायन्तिकं यस्मान्नाप्यैकांतिकमिष्यते ॥ १८२ ॥

**अर्थः**—अने जे प्राणी भावलिंगे गता छे तेहने सर्व  
सारना जाण कहिये. ते वेष्वारी साधुलिंगे होय अथवा गृहस्थ-  
लिंगे होय; तोपण पापकर्म धोइने मोक्ष पासे ॥ १८१ ॥ केमके  
जे भावलिंग ते मोक्षनुं अंग छे, अने द्रव्यलिंग तो अकारण छे,  
द्रव्यलिंग ते कांड आत्यंतिक नथी, माटे जे भावलिंगी छे ते  
द्रव्यलिंगने एकांते नथी इच्छता ॥ १८२ ॥

यथाजातदशालिंगमर्यादव्यभिचारि चेत् ॥

विपक्षावाधकाभावात् तज्जेतुत्वेतु का प्रमा ॥ १८३ ॥

वस्त्रादिधारणेच्छा चेद्वाधिका तस्य तां विना ॥

धृतस्य न किमस्याने करादेरिव वाधकं ॥ १८४ ॥

**अर्थः**—इहां कोइक कहेशो जे नम्रपणे मोक्ष छे तेनो  
उत्तर कहे छे. जो ए अर्थयी वात खरी छे तो आत्माने मोह-  
वाधक छे, ते मोहनो अभाव थाशे अने जो नम्रपणे मोक्ष  
होय तो मोह टालवानुं शुं प्रमाण? तेवारे तो मोह टालवानी  
कांड जरूर न रहे ॥ १८३ ॥ वस्त्र रक्षणे एटले इच्छा विना पण

जो वस्त्र गायता मोक्षनी गावक्ता छे तो इच्छा पिता जे करादिक एटले हाय प्रमुख अग वर्या छे ते पण मोक्षना वाधक याशे, एटले दिग्पर लोक कह छे के पस्त रायगाथी मोक्षनी गावक्ता छे तेहने निरुत्तर कर्या ॥ १८४ ॥

स्वरूपेण च वस्त्रं चेऽकेवलज्ञानवाधक ॥

तदा दिरुपटनीत्यैव तत्तदावरण भवेत् ॥ १८५ ॥

इत्य केवलिनस्तेन मूर्ध्नि द्विसेन केनचित् ॥

केवलित्य पलायते त्यहो किमसमजस ॥ १८६ ॥

अर्थ.—जो परमार्थी जे वस्त्र छे तेहिज केवलज्ञानने गावक्ते होय तो दिग्परनी रीते केवलनानामरणीयने ठेकाणे वस्त्रामरणीय एम थु जोड्ये, ते वस्त्रामरणीय कर्म दिग्परीयो कहता नयी एटली एनी चुक्क छे ॥ १८५ ॥ ए रीते तो केवलीने माथे कोइक वस्त्र ओढाडे तेमारे केवलनाने नासी जु जोड्ये, पण केवलीने वस्त्र जोढाडता केवलनान नासी जाय छे एम तो थु नयी, माटे अहो इति आर्थर्ये शु जुदु असमजम नोलो छो ॥ १८६ ॥

भावलिंगात्ततो मोक्षो भिन्नलिंगेष्वपि व्रुव ॥

कदाग्रह चिमुच्येतज्जापनीय मनस्तिना ॥ १८७ ॥

अशुद्धनयतो द्यात्मा वधो मुक्त इति स्थिति ॥

न शुद्धनयतस्त्वेष नध्यते नापि मुच्यते ॥ १८८ ॥

अर्थ.—रे माट भावलिंगी मोक्ष छे, वेपनो काढ नियम नयी, कदापि द्रव्ययी अन्यलिंगीनो वेप होय, तो पण निश्चये मोक्ष छे माटे कदाग्रह छाटीने उद्दिपत पुरुषे ए रीत

विचारबुँ ॥ १८७ ॥ अशुद्ध नयथी आत्मा वंधाय हे अने  
मुंझाय पण हे, पण शुद्ध नये तो ए आत्मा वंधातो पण नयी  
अने मुंझातो पण नयी ॥ १८८ ॥

अन्वयव्यतिरेकाभ्यामात्मतत्त्वविनिश्चयं ॥

नवभ्योऽपि हि तत्त्वेभ्यः कुर्याद्वं विचक्षणः ॥ १८९ ॥  
इदं हि परमध्यात्ममसृतं ह्यद् एव च ॥

इदं हि परमं ज्ञानं योगोऽयं परमः समृतः ॥ १९० ॥

**अर्थः**—अन्वय व्यतिरेके करीने जे छते ते छतुं, तेहने  
अन्वय कहिये अने जे अछते ते अछतुं तेहने व्यतिरेक कहिये.  
॥ तद्भावे तद्भावो अन्वयः तद्भावे तद्भावो व्यतिरेकः दंडघट-  
द्यष्टांतेन भाव्यं ॥ विचक्षण पुरुषे ए रीते आत्मतत्त्वनो निश्चय नव  
तत्त्वे करीने करवो ॥ १८९ ॥ एहिज उत्कृष्ट अध्यात्म हे; एहि  
ज असृतोपम हे; वली एहिज परमज्ञान हे अने एहिज परमयोग  
कह्यो हे ॥ १९० ॥

गुह्याद्गुह्यतरं तत्त्वमेतत्सूक्ष्मनयाश्रितं ॥

न देयं स्वल्पबुद्धीनां ते ह्येतस्य विडंविकाः ॥ १९१ ॥

जनानामल्पबुद्धीनां नैतत्तत्त्वं हितावहं ॥

निर्वलानां भुधात्तानां भोजनं चक्रिणो यथा ॥ १९२ ॥

**अर्थः**—छानामां छानुं ए तत्त्व हे; माटे सूक्ष्मनय  
आश्रीने ए तत्त्व अल्पबुद्धिने न संभलावबुँ; शामाटे के जे अल्प-  
मतिवाला ते ए तत्त्वना विडंवक हे ॥ १९१ ॥ माटे अल्पबुद्धि-  
वंत प्राणीने ए तत्त्व हित करे नही, जेम चक्रवर्तीनुं खीरनुं भोजन

निर्विल जे क्षुधाये पीड्या प्राणी होय तेने पचे नहीं तेनीपरे  
जाण्यु ॥ १९२ ॥

ज्ञानागदुर्विदग्धाना तत्त्वमेतदनर्थकृत् ॥

अशुद्धमत्रपाठस्य फणिरत्नग्रहो यथा ॥ १९३ ॥

व्यवहाराविनिष्णातो यो जीप्साति विनिश्चय ॥

कासारतरणाशक्तः सागर स तितीर्पति ॥ १९४ ॥

**अर्थः**—तेम सठ सठ पडिताइये करीने अर्धमल्या एहवा  
जे प्राणी तेने ए तत्त्व अनर्थकारी छे, जेम अशुद्ध मत्रना पाठ-  
वालो पुरुष सर्पनो मणि लेना जाय, ते तेने अनर्थकारी थाय  
तेनीपरे जाण्यु ॥ १९३ ॥ जे प्राणी व्यवहारनयमा कुशल नथी  
अने निश्चयनयने समजबा जाय, ते प्राणी तलामने तरवामा  
असर्थ उता समुद्र तरबा बाहे छे ॥ १९४ ॥

व्यवहार विनिश्चित्य ततः शुद्धनयाश्रितः ॥

आत्मज्ञानरतो भूत्वा परम साम्यमाश्रयेत् ॥ १९५ ॥

**अर्थः**—व्यवहार अने निश्चये करी शुद्धनयने आश्रीने  
आत्मज्ञाने रत थइ जे प्रत्येक ते प्राणी परमपदने पामे ॥ १९५ ॥

इति आत्मनिश्चयाधिकार अष्टादश समाप्त ॥



## जैनमतस्तुत्याधिकारः

उत्सर्पद्रव्यवहारनिश्चयकथाकल्पोलकोलाहल  
 ब्रस्यहर्नयवादिकच्छपकुलं भ्रद्यत्कुपक्षाचलं ॥  
 उद्युक्तिनदीप्रवेशसुभगं स्याद्वादमर्यादया  
 युक्तं श्रीजिनशासनं जलनिधि सुकृत्वा परं नाश्रये ॥१॥

**अर्थः**—हवे जिनशासनरूप रत्नाकरनी स्तुति करे छे तेमां प्रथम जिनशासनने समुद्रनी उपमा आपे छे, ते जिनशासनरूप समुद्र केवो छे ? ते कहे छे. प्रसरती एहबी व्यवहार तथा निश्चयनयनी जे कथा, तेरूप जे कल्पोल तेनो जे कोलाहल, तेणे करीने दुष्टजन नयवादिरूपी काचवानो कुल जेने विषे त्रास पासे छे. वली जेमांथी कुमतिरूपी पर्वत तूटी गया छे, भाँग्या छे; वली जेमां मोटी उक्तियुक्तिरूपिणी नदीओनो प्रवेश छे तेणे करी जे सुभग एटले मनोहर छे; वली स्याद्वादशैलीरूप मर्यादाये जे युक्त छे एवो श्रीजिनशासनरूप रत्नाकर जे समुद्र तेने तजीने परदर्शनने कोण सेवे ? ॥ १ ॥

पूर्णपुण्यनयप्रमाणरचनापुष्पैः सदास्थारसै  
 स्तत्त्वज्ञानफलैः सदा विजयते स्याद्वादकल्पद्रुमः ॥  
 एतस्मात् पतितैः प्रवादकुसुमैः षड्दर्शनारामभू-  
 यः सौरभमुद्वमत्यभिमतैरध्यात्मवार्तालवैः ॥ २ ॥

अर्थः—हवे ए जिनमतने कल्पवृक्ष करी देखाडे छे  
जेमा पूर्ण पवित्र जे सात नय अने चार प्रमाण तेहनी जे रचना  
तेहुपी फूलमाहेथी सदैव श्रद्धालुप रसे करीने तच्चज्ञानरूप  
फूल नीपन्या छे, एतो स्प्रादाद नामा जे कल्पवृक्ष ते सदा जय-  
वंतो वतो ! ए कल्पवृक्षथी खरी पड्या जे प्रमाहरूपी फूल तेणे  
करीने पहर्दशनरूप बाढीनी जे धरती ते नगरभी अध्यात्मनी जे  
वार्ताओ तेना जे लप तेणे करीने भूयः कृहता फरी फरीने सुगध-  
पणाने प्रगट करे छे ॥ २ ॥

चित्रोत्सर्गशुभापवादरचनासानुश्रियालकृत,  
अद्वानदनचदनद्वुमनिभप्रजोल्लसत्सौरभ ॥  
आम्यद्वि, परदर्शनग्रहगणैरासेव्यमानः सदा  
तर्कस्पर्णशिलोच्छितो विजयते जैनागमो मद्रः । ३॥

अर्थः—हवे जिनशासनने मरुपर्वतनी उपमा आपे छे,  
नाना प्रकारनो उत्सर्ग मार्ग अने रुडो जे अपवाद मार्ग तेनी  
रचनास्प शिखर तनी शोभाण शोभित छे वली श्रद्धास्प भैरवा,  
यनमा चदनना वृक्ष तस्प जे तुड्हि ते यकी प्राणी ॥ ३ ॥ याँ  
जिहा एतो मरुतुत्य ते, यली ए मेरुपर्वतनी पाइनावै नाना यो  
परदर्शनस्पी ग्रन्था ममृह तेणे करीने मना गाँग ॥ ३ ॥ नाना याँ  
जे शुद्ध मिचार त नविणी सुपर्णशिला गण ॥ ३ ॥ नाना याँ  
जैनागमस्प जे मरु त जयवंतो उर्ना ॥ ४ ॥

स्पादांपापगमस्तमामि नानामि ॥ ३ ॥ नाना  
दग्धानामो ॥ ४ ॥ निधा रश्मीर्गन्त्रति ॥

यस्मिन्नभ्युदिते प्रमाणदिवसप्रारंभकल्याणिनी  
प्रौढत्वं नशगीर्दधाति स रविज्ञेनागमो नंदतात् ॥४॥

**अर्थः—** हवे जिनशासनने सूर्यनी उपमा आपी वर्खाणे छे. जैनागमरूप सूर्यना उदयथकी चोरी जारी इत्यादि दोपट्टले, वली जे थकी क्षणेकमां जगत्ने विषे अज्ञानरूप अंधारुं क्षय थाय, जे थकी मार्ग निर्मल थाय छे, वली चक्षुमांथी प्रमादरूप निद्रा जाय छे, तथा जेम सूर्योदयथी दिवस उग्मो एम सिद्ध थाय छे तेम जैनागमना उदयथी प्रमाणनी सिद्धतारूप दिवसनी सिद्धता थाय छे ते जाणे दिवसने प्रारंभे लोक प्रभाते मंगलिक बोले छे. जेम सूर्य उदये लोक न्यायमार्ग चाले, न्यायनां वचन बोले, तेम जैनसूर्य उदये नय तथा आगमनी वाणी ते घणी रुडी रीते प्रौढता पासे छे. एवो ए जिनशासनरूपी सूर्य ते जयवंतो वर्त्तो ! ॥ ४ ॥

अध्यात्मामृतवर्षिभिः कुवलयोळासं विलासैर्गवां  
तापव्यापविनाशिभिर्वित्तनुते लब्धोदयोऽयः सदा ॥  
तर्कस्थाणुशिरःस्थितः परिवृतः स्फारैर्नयैस्तारकैः  
सोऽयं श्रीजिनशासनामृतरुचिः कस्यैति नो रुच्यतां ॥५॥

**अर्थः—** हवे जिनशासनने चंद्रनी उपमा आपी वर्खाणे छे. अध्यात्मरूप अमृतनो जे वरसाद् तेणे करीने कुवलय जे पृथ्वीरूप कमल तेने विकस्वर करे छे एवो, वली गवां केंद्र वाणीरूप किरण तेना विलासे करीने संसारना तापनो जे समूह तेनो नाश करे छे एवो, वली ए चंद्रमा केवो छे? जे तर्कविचाररूपी जे महादेव तेना मस्तके रखो थको उदय पाम्यो छे एवो,

बली दीप्ति जे नय तेस्वप्न जे तारामढल तेणे परियों थको फिरे  
छे एवो जिनागमस्तुपी चढ़ ते रोने स्वचिपणाने न उपजाने । अपितु  
सर्वने उपजावेज ॥ ५ ॥

बौद्धानामृज्ञसूत्रतो मतमभूद्वेदातिना सग्रहात्  
साख्याना तत एव नैगमनयाद् योगश्च वैशेषिकः ॥  
शब्दन्त्रमविदोऽपि शब्दनयतः सर्वन्यैर्गुफिता  
जैनी दृष्टिरितीह सारतरता प्रत्यक्षसुदृशीक्षते ॥ ६ ॥

**अर्थ.**—जेना अनेक नयमायी एकेका नय ग्रहण करीने  
एटले रुजुमूलनयथी नौद्धनो मत प्रगट्यो, अने सग्रहनयथी वेदा-  
तिकनो मत प्रगट्यो, तथा साख्यमत पण सग्रहनयथीज उपनो  
अने नैगमनयथी योगमत अने वैशेषिकमत प्रगट्यो, शब्दनयथकी  
मीमासक दर्शन उपनु अने जैनशासन तो सर्व नये करीने गुफित  
छे, ते माटे आ जिनशासनमा सारमा सारपणु प्रत्यक्षपणे रुडी  
रीते देखीए छीए ॥ ६ ॥

जप्तमा नार्कमपाकरोति दहन नैव स्फुलिगापली  
नाविधं सिंधुजल लुवः सुरगिरि ग्रावा न वाभ्यापतन् ॥  
एव सर्वन्यैकभावगरिमस्यान जिनेद्रागम  
तत्तदर्शनसकथाशरचनास्वप्न न हतु क्षमा ॥ ७ ॥

**अर्थः**—उक्लाट जे वाफ तेनो जे ताप ते सूर्यने जीती  
शके नहीं, अने अग्निना कणिया ते दागानलने जीती न शके,  
तथा सिंधुनदीनु जल तेनो जे वेग ते लग्नसमुद्रने ठेली न  
शके, पत्थरना जे खड ते मेरुपर्वतने दागी न शके, एम सर्व

नयना एकता भावनी मोटाइनुं स्थानक एहवुं तीर्थकरनुं जे आगम तेहने ते परदर्शनीओ हणवाने समर्थ नथी, शा माटे जे ए जैन ते सर्वदर्शनी छे, अने ते दर्शनीयो जैनना एकेक अंशी छे ॥ ७ ॥

दुःसाध्यं परवादिनां परमतक्षेपं विना स्वं मतं  
तत्क्षेपे च कपायपंककलुषं चेनः समाप्त्वते ॥  
सोऽयं निःस्वनिधिग्रहव्यवसितो वेतालकोपक्रमो  
नायं सर्वहितावहो जिनमते तत्त्वप्रसिद्धयर्थिनां ॥ ८ ॥

**अर्थः**—परदर्शनी जेटला छे ते एक एकना मतने खंख्या विना पोताना मतने थापी शक्ता नथी. ए मतमतनो जे कदाग्रह तेनो प्रक्षेप करतां कपायरूप कादवे करीने मन मलिन थाय छे. ए कदाग्रहनो व्यापार ते तो दरिद्रीना घरनो निधान हरवाने वेताल गयो ते प्राय जाण्वो. ए उपक्रम सर्व जिनमतने विषे हितकारी नथी, माटे अर्थी जीवने ए जिनमत ते तत्त्वरूपे प्रसिद्ध छे ॥ ८ ॥

वार्ता: संति सहस्रशः प्रतिमतं ज्ञानांशवद्वक्रमा  
श्रेतस्नासु ततः प्रयाति न तु मां लीनं जिनेंद्रागमे ॥  
नोत्सर्पति लताः कति प्रतिदिशं पुष्पैः पवित्रा मधौ  
ताभ्यो नैति रतिं रसालकलिकारक्तस्तु पुंस्कोकिलः १

**अर्थः**—जेनो अनुक्रम ज्ञानने मात्र अंशे करीने वंधायो छे एवी परदर्शनीओनी वार्ता छे, तेवा मतममत्व हजारो गमे वर्त्ते छे, पण ते वातोने विषे माहरुं चित्त जातुं नथी. शा माटे?

जे सिद्धातोने यिषे महारु मन लीन छे, माटे चेप्रमासे दिशोदिशो  
जे फूल तेणे करीने परिप्र एहरी जे लता त केटलीक निकस्वर  
थाय, फले, पण पुस्फोफिल जे कोयल ते आगानी मज्जरीथी रक्त  
एरी थकी ते लताओने यिषे रति न पाम, तेनी पर महारु चित्त  
पण सिद्धातरूप आगानी मज्जिये रक्त थयु यकु अन्य दर्जनरूप  
लताओमा जातु नयी ॥ ९ ॥

शब्दो वा मतिरर्थ एव वसु वा जाति क्रिया वा गुणः ।  
शब्दार्थं किमिति स्थितिः प्रतिमत सदेहशकुर्यथा ॥  
जैनेद्रे तु मते न सा प्रतिपद जात्यतरार्थस्थितिः ।  
सामान्यं च विशेषमेव च यथा तात्पर्यमन्विच्छति ॥ १० ॥

अर्थ —आ शाद छे, किंगा मति छे, के अर्थ छे, के  
गुण छे, के गस्तु केंद्र द्रव्य छे, के जाति छे के क्रिया छे ।  
बली एनो शब्दार्थ केम हशे ? एवो सदेहरूपी खीलो मत मत  
प्रत्ये रहो छे पण जिनमतमा नयी. ते पद पद प्रत्ये जात्यतर  
अर्थनी स्थिति छे, माटे सामान्य अने विशेष जेगा पदार्थनो  
यथार्थ निश्चय तात्पर्य—अर्थ तेने भजे छे, माटे जिनमतमा सदेह-  
रूप खीलो नयी । १० ॥

यत्रानपितमाद गति गुणता सुरय तु वस्त्वर्पित ।

तात्पर्यनवलग्नेन तु भवेद्योधः स्फुट लौकिकः ॥  
सपूर्णं त्वयभासते कृतधिया रूत्स्नाद्विवक्षाक्रमात् ।

ता लोकोत्तरभगपदतिपद स्पाद्वादसुद्रा स्तुमः ॥ ११ ॥

अर्थ.—स्पाद्वादरूप जैन सुद्रामा केमो गुण छे ? के

जैमां वस्तुने अर्पण करी छतां पण ते वस्तु गौणताने प्राप्त थाय  
छे; अने वस्तु अर्पण करी छतां ते मुख्यताभावने पामे छे, अने  
जेना तात्पर्य अर्थने अवलंबने करीने तो प्रगटपणे लौकिक वोध  
थाय छे; अने संपूर्ण वोध तो समग्र विवक्षाना अनुक्रमयकी महा-  
निपुण बुद्धिवालाने प्रकाश थाय छे; ते माटे ए लोकोत्तर भंग-  
जालमुँ ठेकाणु एवी जे स्याद्वादशैलीरूप मुद्रा तेने अमे  
स्तवीए छीए ॥ ११ ॥

आत्मीयानुभवाश्रयार्थविषयोऽप्युच्चैर्यदीयः क्रमो ।

म्लेच्छानामिव संस्कृतं तनुधियामाश्र्वर्यमोहावहः ॥  
व्युत्पत्तिप्रतिपत्तिहेतुविततस्याद्वादवाग्गुणितं ।

तं जैनागममाकलय्य न वर्यं व्याक्षेपभाजः क्वचित् ॥ १२ ॥

अर्थः—ते जैनागम केबुं छे ? जैमां पोताना आत्मानो  
अनुभव करवाना आश्रयनो विषय छे, एवो उच्चपणे करीने जेनो  
क्रम छे एटले परिपाटी छे, अने म्लेच्छने जेम संस्कृत भाषा  
आश्र्वर्य करनारी अने मोह उपजावनारी छे तेनी परे अल्पबुद्धि-  
वाळाने अचंचो पामी मुंझावानुं स्थानक छे; माटे जैनागम ते  
व्युत्पत्तिनुं निरूपण करनारा जे हेतु तेणे करी विस्तीर्ण एहवो जे  
स्याद्वाद मार्ग तेणे करी रचेलुं छे. तेने पामीने महारा चित्तमां  
बीजुं कोइपण व्याक्षेपपणुं क्यारे पण थतुं नथी ॥ १२ ॥

मूलं सर्ववचोगतस्य विदितं जैनेश्वरं शासनं ।

तस्मादेव समुच्छितैर्नयमतैस्तस्यैव यत्खंडनं ॥

एतत्किञ्चन कौशलं कलिभलच्छन्नात्मनः स्वाध्रितां ।

शाखां छेत्तुमिवोद्वतस्य कटुकोदकार्य तर्कार्थिनः ॥ १३ ॥

अर्थ—माटे मर्मचनगत मसृहनु जे शूल एहबु ए  
जिनशामन करु छे ए जिनशामनथकीज प्रगट्या एहरा जे  
नयनयना मत तेगा मते करीनेन दुष्ट प्राणी तेज जिनआगमनु  
गडन करे छे, ते पापिए आत्माजोनो आत्मा पापरूप भेले  
करी हंकाणो छे, एसा दुष्टोनु जे काढ किंचित्मात्र डहापणपणु  
छे, ते जेम झोइ मृर्दि जे घृखनी झाले बेठो यको तेज डाल  
कापवाने उनमाल वाय तेथी कडवा रिपाक पामे, तेम ते  
कुविचारगालाने आगल कडवा फल प्रगटे छे ॥ १३ ॥

त्यक्त्वोन्माद पिभज्य चादरचनामाकार्य कर्णासृत ।

सिहातार्थरद्दस्यवित्क लभतामन्यत्र शास्त्रे रति ॥  
यस्या मर्वनया वमति न पुनर्व्यस्तेषु तेष्वेव या ।

मालाया मणयो लुठति न पुनर्व्यस्तेषु तेष्वेव सा ॥१४॥

अर्थ—पिभेचना लभण जे नयनोगार तेनो उन्माद तनीने,  
माहोमाह झगटो तनीने, यसी काने अमृतस्य वाणी सामलीने,  
मिदातना अर्थगदस्यनो जे जाण पुरुष ते नीजा शास्त्रने रिषे  
रति रेम पामे ? जधार नन पाम जे जैनवाणीने रिष सघला  
नय प्रयेश करे छे, पण ते जुता जुता गतगालाना मतमा मर्वनय  
नधी तेथी जैन वाणी काढ तेमा रहती नधी शा माटे जे ते  
गर्व व्यग्र गिचगाला ते माट जैनमा मर्व नय छे जेम मालाने  
रिष मर्व मणसा रम छे, पण छटा मणसा पट्या होय तेने माला  
न रहिंगे, अन एक भगके मर्व मणसा ममाणा एम पण न  
फटीण, भाँगे न माला मग्गो जैनमत ते ॥ १४ ॥

अन्योऽन्यप्रतिष्ठभारप्रितयान स्त्रसार्यमत्प्राज्ञया—  
नपेष्ट्राविषयग्रह्यर्दिर्भजते माय्यस्यमास्याय य ॥

स्याद्वादे सुपथे निवद्य हरते तेषां तु दिग्मृढतां ।  
कुंदेदुप्रतिमं यशोविजयिनस्तस्यैव संवर्धते ॥ १६ ॥

**अर्थः**—एम एकवीजाने वैरभावे करी जूठा जठा जे पोतपोताना अर्थ तेन माचा करता एवा मतवाला जे दर्शनी ते पोताना नयनो विषय ग्रहण करी, माध्यस्थपणाने स्वीकारी, सारा माठानो विभाग करीने, स्याद्वादस्प उत्तम मार्गने विषे लोकनुं चित्त स्थापन करावीने अने माध्यस्थपणुं ग्रहण करी तेमनी दिग्मृढतानो नाश करे, ते विजयवंत प्राणी कुंदनुं फूल तथा चंद्रमा सरखो उजवलो जे जश तेणे करी वृद्धिवन्तो थशे. अहीं कविये पोतानुं नाम पण सूचव्युं छे ॥ १५ ॥

। इतिश्री जैनमतस्तुत्यधिकार एकोलविश्वति समाप्तः ॥

॥ इतिश्री महोपाध्याय श्री यशोविजयगणिना  
विरचिताध्यात्मसारप्रकरणे पष्टप्रवंधः ॥



## अनुभवाधिकार

**शास्त्रोपदर्शितदग्ना गलितासद्यग्रहकपायरुलुपाणा**

**प्रियमनुभवैकवेय रहस्यमाविर्भवति किमपि ॥१॥**

**प्रथमाभ्यासविलासा दालिर्भृगाव यत्क्षणाल्पीन ॥**

**चचलतरुणीविभ्रमसम सुतरलभन कुरुते ॥ २ ॥**

**अर्थः—** शास्त्रे नतांगी जे दिशा तेणे करीने गली गइ  
छे मारी नरमी असद्यग्रहरूप कपायनी कलुपता जेनी, तेने प्रिय  
एहबो जे एक अनुभव तेथी जणातु एउ जे रहस्य ते काढक  
प्रगट थाय छे ॥ १ ॥ प्रथम अभ्यासरूपी पिलामना योगे करीने  
ते प्राणी पूर्वोक्त फाडक रहस्यना लीन थाय छे अने फरी  
चंचलपणे रह छे, जेम चचल स्त्री पोताना पिलामना योगे करी  
काढक सुसमा लीन थाय छे अने पछी जेवी ने तेवी चचल  
रहे छे, तया जेम फीडाने भमरी त्यारे चटको भरावे छे त्यारे  
तेना ध्याने फरीने ते तछ्वीन थड नाय छे अने पत्री जेवारे  
भमरी पोताना चटकानो उद्योग मुकी दे छे, तगारे ते सर्व  
मूली जह पोतानो मूलनो स्वभाव धारण कर छे तेनी परे  
जाणी लेउ ॥ २ ॥

**खुविदितयोगेरिष्ठ क्षिस मूढ तयैऽ विक्षिस ॥**

**एकाग्र च निरुद्ध चेतः पञ्चप्रकारमिति ॥ ३ ॥**

**विषयेषु कल्पितेषु च पुरस्थितेषु च निरेशित रजमा ॥**

**सुग्रह ग्रयुग्मद्दिर्मुग्ममायात खिसमिह चित्त ॥४॥**

अर्थः—योगज्ञानिये पांच भेदे मन कहुं छे. १ शिस-  
मन, २ मूढ मन, ३ विक्षिप्तमन, ४ एकाग्रमन, ५ निरुद्धमन. ए  
पांच प्रकार मनना छे ॥ ३ ॥ तेमां शिसतुं लक्षण कहे छे.  
पोताना चित्तने सन्मुख कल्प्या जे विषय तेने विषे रजोगुणे  
करीने थाप्युं तेमज सुख तथा दुःखयुक्त, अने वहिर्मुख थयेलं  
चित्त तेने शिस मन कहुं छे ॥ ४ ॥

क्रोधादिभिर्नियमितविरुद्धकृत्येषु यत्तमो द्राग् ॥

— कृत्याकृत्यविभागासंगतमेतन्मो मूढं ॥ ५ ॥

सन्त्वोद्धेकापरिहृतदुःखनिदानेषु सुखनिदानेषु ॥

शब्दादिषु प्रवृत्तं तदेव चित्तं तु विक्षिप्तं ॥ ६ ॥

अर्थः—जेमां बहुलताये तमोगुण होय, एटले क्रोध  
सहित विरुद्ध कामने विषे जे तत्पर होय अने विवेकरहितपणे  
कृत्याकृत्यनी वहेंचण विना जे मन, तेने मूढ मन कहिये ॥ ५ ॥  
जे धैर्यना वलथी दुःखनां कारण गणतुं नथी, शब्दादिक विषयमां  
रूपरसादिकनां कारण जाणी कठोरपणे प्रवर्त्ते एवुं जे चित्त तेने  
विक्षिप्त मन कहिये ॥ ६ ॥

अद्वेषादिगुणवतां नित्यं खेदादिषट्कपरिहारात् ।

सदृशप्रत्ययसंगतमेकाग्रं चित्तमास्नातं ॥ ७ ॥

उपरतविकल्पवृत्तिकमवग्रहादिकमच्युतं शुद्धं ॥

आत्मारामसुनीनां भवति निरुद्धं सदा चेतः ॥ ८ ॥

अर्थः—रागद्वेषादिके रहित जे गुणवंत पुरुष छे अने सदा  
खेदादिकलो परिहार करनार जे पुरुष छे, जेनुं मन सदैव रागद्वेष  
टलवाथी सर्व कार्यमां सरखुं मल्युं छे; तेने एकाग्र मन कहिये

॥ ७ ॥ जेनी पिकल्पवृत्ति शात यड छे, बली अग्रहादि  
क्रमधी पाउ औंसर्यु छे एहु शुद्ध मन, आत्माराममुनिनु जे  
अतःकरण तेने निरुद्ध मन कहिये ॥ ८ ॥

न समाधावुपयोग लिस्थश्वेतोटजा इह लभते ॥

सन्त्वोत्कर्पात् स्थैर्यादुभं समाधिसुखातिशयात् ॥ ९ ॥  
योगारभस्तु भवेद्विक्षिप्ते मनसि जातुसानदे ॥

क्षिप्ते मूढे चास्मन् व्युत्थान भवति नियमेन ॥ १० ॥

अर्थ —चित्तनी ग्रण दग्गा ते आ समाधिमा काढ  
उपयोग पामती न'पी, तेगार पण तमा ने दशा तो सर्वार्कर्पथकी  
तथा स्थिरताथकी अने समाधिसुखना अतिशयर्यी उपयोग  
पाम छे ॥ ९ ॥ कदाचित् रिक्षिप्त चित्तने पिये योगसमाविमा  
आनंदित होय तो योगारभ सभवे, किस मूढ मने तो योगनो  
पिशेष प्रियरूप उदय होय ॥ १० ॥

• विषयकृपायनिहृत्य योगेषु च मन्त्ररिष्णु विविधेषु ॥

गृहग्वेलदवालोपममपि चलमिष्ट मनोऽभ्यासे ॥ ११ ॥  
वचनानुष्ठानगत यातायात च मातिचारमपि ॥

चेतोऽभ्यासदशाया गजाकुञ्जन्यायतोऽदुष्ट ॥ १२ ॥

अर्थ —रिमिध प्रकारना योगने विष फरतु अने प्रिय-  
कृपाय भयुं ऐनु घग्मा रमता वालक्ली पर चपल जे मन ते  
अभ्यासे करी रुद्ध जाणु ॥ ११ ॥ वचनानुष्ठानमा रह्य एउ  
जातु आगतु अतिचार सहित मन होय तो पण जो अभ्यासदशामा  
वर्ततुं होय ता, जेम द्वस्ति त अकुशे कली रुडो थाय ते दृष्टाते  
त मन पण रुद्ध थाय ॥ १२ ॥

ज्ञानविचाराभिसुखे यथा यथा भवति किमपि सानंदं ।

अर्थः प्रलोभ्य वाह्येरनुगृणीयात्तथा चेतः ॥ १३ ॥

अभिस्फुपजिनप्रतिमां विद्विष्टपदवाक्यवर्णरचनां च ॥

पुरुषविशेषादिकमध्यत एवालंबनं ब्रुवने ॥ १४ ॥

अर्थः—ज्ञानविचारणाना सुखशी जेम कांडक आनंदथाय एहवे वाह्य अर्थे करी लोभावीने तेमां चित्तने थोभावीराखीने ज्ञानना विचारने सन्मुख करीये ॥ १३ ॥ रुडी जिन-प्रतिमा, रुडां सिद्धांतनां पद, वचन, अश्वर, ते पुरुषविशेष जे वहुश्रुत गीतार्थे मुनि होय तेहने ए त्रण आलंबन प्रभुए कहां छे ॥ १४ ॥

आलंबनैः प्रशस्तैः प्रायो भावः प्रशस्त एव यतः ॥

इति सालंबनयोगी मनः शुभालंबन दध्यात् ॥ १५ ॥

सालंबनं क्षणमपि क्षणमपि कुर्यान्मनो निरालंबं ॥

इत्यनुभवपरिपाकादाकालं स्यान्निरालंबनः ॥ १६ ॥

अर्थः—रुडे आलंबने करीने प्राये रुडो भाव होय, माटे सालंबन योगी जे रुडा जीव होय तेणे शुद्ध आलंबन धरबुं ॥ १५ ॥ अने क्षणिकमां सालंबन मन करे, अने क्षणिकमां निरालंबन मन करे, ए रीते अनुभवना परिपाकथी ते प्राणी सदा निरालंबन थाय ॥ १६ ॥

आलंब्यैकपदार्थं यदा न किंचिद्विचिंतयेदन्यत् ॥

अनुपनतेऽधनवन्हिवदुपशांतं स्यात्तदा चेतः ॥ १७ ॥

शोकमदमदनमत्सरकलहकदाग्रहविषादवैराणि ॥

क्षीयंते शांतद्वदामनुभव एवात्र साक्षात्तः ॥ १८ ॥

अर्थः—पछी एक पदार्थने अपलब्धीने जे वार भीजु काह  
चितरे नहीं तेगरे जेम काछ बिनानो अग्रि उपशमे छे, तेनी परे  
मन उपशातपणु पामे ॥ १७ ॥ माटे शोक, गर्व, काम, मत्सर,  
हैश, हठ, विपाद अने वेर एटला वाना शुभतावत प्राणीने न  
होय, ए वातनो साक्षी इहा अनुभव छे ॥ १८ ॥

शाते मनमि ज्योति, प्रकाशते आत्मात्मन सहज ॥

भस्मीभवत्यविद्या मोहध्वात विलयमोति ॥ १९ ॥

नाश्चात्मनोऽधिकारः आत्मदामतरात्मना न स्यात् ॥

परमात्मानुपेय, सञ्जिहितो ध्यानतो भवति ॥ २० ॥

अर्थ.—शात मनने भिषे रहेता थका आत्मानु शात, स्वाभाविक, सहजानदरूप जे तेज छे ते प्रगट थाय, तेगर जे  
दुर्मिया त राख थइ जाय अने मोहाधकार नाश पामे ॥ १९ ॥ शाह्यफी मननो जे अधिकार ते शात परिणामी अतरआत्मा  
वाला प्राणीने न होय, केमके तेने ध्येयरूपी जे परमात्मा ते  
ध्यानथी दुरडो छे ॥ २० ॥

कायादिर्धिरात्मा तदधिष्ठातातरात्मतामोति ॥

गतनि, शोपापाधि परमात्मा कीर्तिस्तज्ज्ञैः ॥ २१ ॥

विषयक्षयायांश्चस्तत्त्वाश्रद्धा शुणेषु च द्वेष ॥

आत्मज्ञान च यदा ग्राह्यात्मा स्यात्तदा व्यक्त ॥ २२ ॥

अर्थ—काया अविष्टित जे वहिरात्मा तनु अधिष्ठान जे  
अतरगत्या छे त प्रते पामे अने गइ छे समस्त उपाधि जेने तने  
झानिम परमात्मा कसो छे ॥ २१ ॥ जेने विषयक्षयायनो आवेश

होय, तत्त्वनी अथद्वा होय, गुणी उपर द्वेष होय, अने जेने आत्मानी ओलखाण नधी तेने प्रगटपणे ब्रह्मात्मा कहिये ॥२३॥

तत्त्वश्रद्धा ज्ञानं महाब्रतान्यप्रमादपरता च ॥  
मोहजयश्च यदा स्यात् तदांतरात्मा भवेद्व्यक्तः ॥२३॥  
ज्ञानं केवलसंज्ञं योगनिरोधः समग्रकर्महतिः ॥  
सिद्धिनिवासश्च यदा परमात्मा स्यात्तदा व्यक्तः ॥२४॥

**अर्थः**—जेने तत्त्वनी अद्वा होय, ज्ञानपणुं होय, महाब्रतीपणुं होय, तथा अप्रमादीपणुं होय, एम करतां जेवारे मोहने जीते तेवारे तेने प्रगटपणे अंतरात्मा कहिये ॥ २३ ॥ जिहां केवलज्ञान होय अने मन—वचन—कायाना योगनिरोधी आठ कर्म क्षय करी सिद्धमां वसे तेवारे तेने प्रगटपणे परमात्मा कहिये ॥ २४ ॥

आत्मानंतो गुणवृत्तिर्विच्चय यः प्रतिपदं विजानाति ॥  
कुशलानुवंधयुक्तः प्राप्नोति ब्रह्मभूयमसौ ॥ २५ ॥  
ब्रह्मस्यो ब्रह्मज्ञो ब्रह्म प्राप्नोति तत्र किं चिच्चं ? ॥  
ब्रह्मविदां वचसाऽपि ब्रह्मविलासाननुभवामः ॥ २६ ॥

**अर्थः**—जे प्राणि आत्माने अने गुणवृत्तिने मांहोमांहे वहेंचण करीने ठेकाणे जोडे ते प्राणि कुशलानुवंधी पुण्य सहित मोक्षपदने पामे ॥ २५ ॥ जे ब्रह्ममां रहो ब्रह्मनो जाण ते ब्रह्मने पामे, एमां शो अचंगो छे ? माटे ब्रह्मवेत्ता पुरुष जे ज्ञानी तेना वचने करी ब्रह्म जे मोक्षविलासी सुख, तेने अमे अनुभवीए छीए ॥ २६ ॥

ब्रह्माध्ययनेषु मतं ब्रह्माष्टादशसहस्रपदभावैः ॥  
येनासं तत् पूर्णं योगी स ब्रह्मणः परमः ॥ २७ ॥

यैयोऽय मेव्योऽय कार्या भक्ति सुकृतधिया सैव ॥  
अस्मिन्गुरुत्ववुद्धया सुतरः ससारसिधुरपि ॥ २८ ॥

अर्थ.—प्रक्षब्द्यननेपि कहु छे के, अढार हजार  
शीलागरथे करी जे प्रक्षचर्यने पाम्यो, तेने पूर्ण योगी अने परम  
प्रक्ष कहिये ॥ २७ ॥ माटे एनेज ध्यायो, एनीज पुण्यवते भक्ति  
करी, अने एने पिपे मोटापणानी उद्धि धरीये, तो ससारसेमुद्र  
तरबो सहेल छे ॥ २८ ॥

अवलच्येच्छायोग पूर्णाचारासाहिष्णवश्च वय ॥

भक्त्या परमसुनीना तदीयपदवीमनुसरामः ॥ २९ ॥

अह्वापि यत्र यतना निर्देभा सा शुभानुवधकरी ॥

अज्ञानविषय यत्तद्विवेचन चात्मभावाना ॥ ३० ॥

अर्थः—इच्छायोग तो अमारे निर्विल छे, पुरो आचार  
पण अमे पाली शक्ता नथी, पण मोटा मुनिनी भक्तिए करीने  
तेइनी पदमीने पामशु ॥ २९ ॥ थोडी पण जयणा कपट रहित  
थशे तो ते शुभ अनुवधकारी छे, पण आत्मभावनी जे बहेचण  
ते अनानने टालनार छे ॥ ३० ॥

सिद्धाततदगाना शास्त्राणा य सुपरिचयः शक्त्या ॥

परमालबनभूतो दर्ढनपक्षोऽयमस्माक ॥ ३१ ॥

विधिक्यन विधिरागो विधिमार्गस्थापन विधेरिच्छा ॥

अविधिनिषेधश्चेति प्रवचनभक्ति प्रसिद्धातः ॥ ३२ ॥

अर्थ.—सिद्धातना अमे पक्षी छीये, तेना अंग जे शास्त्र  
तेनो शक्ति प्रमाणे अमारे परिचय छे, माटे परम आलबनभूत  
एतो जे समक्षितपद ते अमार रुडो छे ॥ ३१ ॥ शुद्ध भाष्य,

विधिशास्त्रनो राग करवो, शुद्ध मार्गनुं स्थापन करवुं, विधिमार्गनी  
इच्छा राखवी, अविधि टालवी अने सिद्धांतनी भक्ति करवी ए  
अमारो सिद्धांत छे ॥ ३२ ॥

अध्यात्मभावनोऽज्ज्वलचेतोवृत्तोचितं हितं कृत्यं ॥

पूर्णोक्तयाभिलाषश्चेति द्वयमात्मशुद्धिकरम् ॥ ३३ ॥

द्वयमिदं शुभानुवंधः शक्यारंभश्च शुद्धपक्षश्च ॥

अहितो विपर्ययः पुनरित्यनुभवसंगतः पंथाः ॥ ३४ ॥

अर्थः—अध्यात्मनी भावनाए करी उज्ज्वल एहवी जे  
चित्तवृत्ति तेणे करीने उचित कार्य करवुं, तथा हितकारी करणी  
करवी, पूर्ण क्रियाना विलासनो अभिलाष धरवो, ए अमारे आत्मानी  
शुद्धिकारक छे, एटले एक अंतःकरणनी उज्ज्वलता जे शुद्धि  
करवी ते, अने वीजुं आद्यथी मांडी अंतर्पर्यंत पूर्ण शुभ क्रिया  
करवानी अभिलाषा ए वे वानां आत्मानी शुद्धि करनारां छे  
॥ ३३ ॥ तथा एक करवा योग्य आरंभ ते शक्य आरंभ अने  
वीजो शुद्ध पक्ष ए वे वानां शुभानुवंधी छे, ए वे जेने प्रारंभ काले  
समर्थ छे, एमां जेनी शक्ति, उद्यम अने शुद्ध प्रस्तुपणुं छे तेने  
हितकारी माने अने एथी विपर्यास जे छे, तेने अहितकारी माने,  
एवी रीते अनुभवज्ञानने मलवानो पंथ छे, एथी मिथ्यात्म टले ॥ ३४ ॥

ये त्यनुभवाविनिश्चितमार्गश्चारित्रपरिणतिभ्रष्टाः ॥  
वाह्यक्रियया चरणाभिमनिनो ज्ञानिनोऽपि न ते ॥ ३५ ॥

लोकेषु वह्विर्बुद्धिषु विपणिकानां वह्विः क्रियासु रतिः ॥  
अद्वां विना न चैताः सतां प्रमाणं यतोऽभिहितं ॥ ३६ ॥

अर्थः—जेने अनुभवनो निश्चय नथी, अने निश्चय मार्गना  
चारित्रथी भ्रष्ट छे, तथा वाह्य क्रियानी आचरणा छे अने लोकमां

उग्र मिहारी थइ आचारनो गर्व धरे ह्ये, तेने ज्ञानी न कहीए ॥ ३५ ॥ गाय दृष्टिगला जे मुर्हं लोक ते तेने गाहकियावत देखी प्रीति धरे, ते तो जेम कोइक गणियो गाहकस्त्रियाणानो व्यापार करतो देखिये तेनी परे जाणनी, माटे श्रद्धा पिनानु कशुये प्रमाण नथी ॥ ३६ ॥

बाल पठ्यति लिङ्ग मध्यमवुद्धविचारयति वृत्त ॥  
आगमतत्त्व तु बुध परोक्षते सर्वयत्नेन ॥ ३७ ॥  
निर्गोन कोऽपि लोके पापिष्ठेष्वपि भवस्थितिश्चिन्त्या ॥  
प्रज्या गुणगरिमाद्या धायौं रागो गुणलवेऽपि ॥३८॥

**अर्थः**—जे गाल जीव होय ते वैप जोइने परीक्षा करे, तथा मध्यम जीव ते आचरणा जोइ परीक्षा करे, अने पडित तो ज्ञानतत्त्व देखी परीक्षा करे ॥ ३७ ॥ लोकने पिणे कोइनी निंदा करिये नहीं पापीने विषे महोटी ससारनी स्थिति चिंतरिये, जे गुणयुक्त पुरुष होय तेनी पूजा करीये, बडाड करीये, तथा जे अल्पगुणी होय तेना उपर पण राग धरीये ॥ ३८ ॥

निश्चित्यागमतत्त्व तस्मादुभृज्य लोकसज्जा च ॥

अद्वाविषेकसार यतितव्य योगिना नित्य ॥ ३९ ॥  
ग्राह्य हितमपि वालादालापैदुर्जनस्य न द्वेष्य ॥

मत्या याच पराशापाशा डव मगमा ज्ञेया ॥४०॥

**अर्थः**—प्रागमनो निश्चय करी लोकमज्जा छोडीने पिषेकनो सार जे श्रद्धा तेने पिष योगीश्वर सदा उद्यम करनो ॥ ३९ ॥ पालकथकी पण आलापे करीने हितनी ग्रात लेगी, दुर्जन उपर डेप न करनो, मत्य गोलतु अने पार्गकी आशा पाम सरसी जाणनी ॥ ४० ॥

स्तुत्या समयो न कार्यः कोपोऽपि च निंदया जनैः कृतया ॥

सेव्या धर्मचार्यस्तत्त्वं जिज्ञासनीयं च ॥ ४१ ॥  
गौचं स्थैर्यमदंभो वैगग्यं चान्यतिग्रहः कार्यः ॥

दृश्या भगवतदोपाश्रित्यं देहादिवैस्त्वप्यं ॥ ४२ ॥

अर्थः—कोइ वखाणे तो गर्व न करवो, कोइ निंदे तो  
कोप न करवो, धर्मचार्यनी सेवा करवीः तत्त्वने जाणवानी इच्छा  
राखवी ॥ ४१ ॥ पवित्रपणु, स्थिरगतापणु अने निष्कपटपणु आद-  
रवुं तथा वैगग धरवो अने मनने वश करी राखवुं, तथा संसारना  
दोप देखवा, वली देहने विनाशीपणे चितववो ॥ ४२ ॥

भक्तिर्भगवति धार्या सेव्यो देशः सदा विविक्तश्च ॥

स्थातव्यं सम्यक्त्वे विश्वास्यो न प्रमादारिपुः ॥ ४३ ॥  
ध्येयात्मवोधनिष्ठा सर्वत्रैवागमः पुरस्कार्यः ॥

त्पक्तव्याः कुविकल्पाः स्येयं बृह्णानुबृत्या च ॥ ४४ ॥

अर्थः—प्रभु उपर भक्ति धरवी; पशुपंडकादि दोप रहित  
देश जे स्थानक ते सेववुं, समकितदशामां स्थिर रहेवुं, प्रमाद-  
स्प शत्रुनो विश्वास न करवो ॥ ४३ ॥ ध्येयस्वरूप जे आत्मवोध  
तेमां रहेवुं, सवले स्थले आगमसिद्धांतने आगल करवुं, कुविकल्प  
छांडवा, जे मार्गे बृह्ण चाले ते मार्गे चालवुं ॥ ४४ ॥

साक्षात्कार्यतत्त्वं चिद्रूपानंदमेदुर्भाव्यं ॥

हितकारी ज्ञानवतामनुभववेद्यः प्रक्तारोऽयम् ॥ ४५ ॥

अर्थः—तत्त्वने प्रगट करवुं, ज्ञानरूप आनंदभर रहेवुं,  
ज्ञानवंतने हितकारी थइने रहेवुं, प. अनुभववंत जीवोना प्रकार  
छे ॥ ४५ ॥

॥ इति अनुभवाधिकारः समाप्तः ॥ २० ॥

## प्रशस्ति.

येषा कैरवकुदवृदगश भृत्यर्पूरशुभ्रा गुणा ॥

मालिन्य व्यपनीय चेतसि नृणा वैशाश्रमातन्वते ॥

सतऽसतु मयि प्रसन्नमनसस्ते केऽपि गौणीकृत—॥

स्वार्यामुख्यपरोपकारविधयोऽत्युच्छृंखलै किंखलैः?॥१॥

अर्थ — चढ़पिकासी कमलना फूलनो समृह, चढ़मा, कपूर, ए सरसा उज्ज्वला जेना गुण छे, तथा जे मनुष्यना चित्तने विष मलिनता टालीने निर्मलता—उज्ज्वलताने प्रिस्तार छे, एवा जे सज्जन पुरुषो ते, मारा उपर प्रसन्न मने सदेव रहजो ! जेणे पोतानो अर्थ गोण कर्या छे, अने जेनी मुख्यपणे परउपकारनी बुद्धि छे, एवा सज्जन जो मारा उपर प्रसन्न छे तो, उन्मत्त एवा खल जे दुर्जन लोक तेनी अप्रसन्नताए शुथालु छे ? ॥१॥

यथार्थान् प्रगुणीकरोति सुकविर्यत्नेन तेषा प्रथा—  
मातन्त्रति कृपाकृटाक्षलहरीलावण्यत सज्जना, ॥

मारुदृममजरी वितनुते चित्रवा मधुश्रीस्तत,

सौभाग्य प्रथयति पचमचमत्कारेण पुस्कोकिलाः॥२॥

अर्थ.—सडा जे कमि छे, ते जर्थानुपत्तिए नगा ग्रथ रचे, पण कृपानजरनी लेहगो तेनु घर एवा जे सज्जन ते ग्रन्थने ग्रहाणीने प्रिस्तार करे छे त उपर दृष्टात कह छे, जेम वयत-लक्ष्मी आयानी मजरीना मनोहरपणाने प्रगट कर छे, पण पोताना पचम रागना चमत्कार करी एटले रागना ठहुको तणे करीने कोयल मजरीनु सौभाग्यपणु जगमा विस्तार छे ॥ २ ॥

दोपोल्लेखविषः खलाननविलादुच्याय कोपाज्ज्वलन्  
जिह्वाहिर्ननु किं गुणान्न गुणिनां वासक्षयं प्रापयेत् ॥  
तस्माच्चेत्प्रवलप्रभावभवनं दिव्यौषधी सन्निधौ  
शास्त्रार्थप्रतिपद्धिदां शुभहृदां कारुण्यपुण्यप्रथा ॥ ३ ॥

**अर्थः**—दोपना विस्ताररूप विषे सहित एहवुं खल  
प्राणीना मुखरूप जे सर्पनुं घर तेथी उठीने कोपे बलतो थको एवो  
दुर्जननी जीभरूप जे सर्प ते गुणीना गुणने ननु कें निश्चेथी  
क्षयपणाने न पमाडे शुं ? अपितु पमाडेज. ते माटे महाप्रभावनुं  
घर एहवो जे शास्त्रनो अर्थ छे तेनी प्राक्षिना जाण जे सज्जन  
तेनी जे करुणा ते पुण्य वार्तारूपनी बुटी एटले जडी ते दिव्य  
औषधि कहिये, तेनी पासे रहता थका तेने झेर चढे नहीं ॥ ३ ॥

उत्तानार्थगिरां स्वतोऽप्यवगमान्निः सारतां मेनिरे  
गंभीरार्थसमर्थने वत खलाः काठिन्यदोषं दद्धः ॥  
तत्को नाम गुणोऽस्तु कश्च सुकविः किं काव्यमित्यादिकां  
स्थित्युच्छेदमतिं हरंति नियतां दृष्टा व्यवस्थाः सतां ॥४॥

**अर्थः**—जेवारे पोतानी मेले पद वांचतां अर्थ सुझे एवा  
अल्पार्थ ने सुगम पद जो अमे जोडीये तो खल माणस एम  
कहेशे जे, आ ग्रन्थमां कांइ सार नधी, वली जो अमे गंभीर अर्थ  
सहित पद वांधीए तो खल माणस कहेशे के, कठण पद वांध्यां  
छे, एनो शुं अर्थ करीए ? ए तो मुंगानी पारसी छे. एवे ग्रन्थे  
कोइने गुण न थाय; जे आगलबुद्धि विचारे एवा आजे कोण रुडा  
कवि छे ? वली सर्वने सोग पडे एवां काव्य क्यां छे ? एवुं  
दुर्जन बोले माटे ए ग्रन्थ मर्यादानी स्थितिने उच्छेद करवानी

मति छे, तेने जे टाले, कपिना गुणने जाणे एवा जे सज्जन  
पुरुष तेनी व्यभस्था रुडी दीठी ॥ ४ ॥

अध्यात्मामृतवर्षिणीमपि ऋथाभापीय सतः सुख  
गाहते विषमुद्दिरति तु खला वैषम्यमेतत्कृतः ॥  
नेद वाद्भुतमिदुदीधितिपिबा प्रीताश्चकोरा भृश  
किं न स्युर्वत चक्रवाकतरुणास्त्वत्यतखेदातुराः ॥५॥

**अर्थः**—अध्यात्मसूप अमृतवृष्टि एवी वार्ता, तेनु पान  
करीने सज्जन पुरुष सुख माने छे, अने जे खल लोक छे ते एवी  
वाणीने विषमपद कहीने विषरूप प्रगट करे छे, एमा शु आश्र्य  
छे । ते उपर दृष्टात कहे छे जुओ चद्रकिरणना दर्शनधी अमृत  
पीने चक्रोर घणु रीझ पामे छे, तो शु चद्र देखीने चक्रो चक्री  
घणो खेद नथी पामता ? अपितु पामेज छे ॥ ५ ॥

किञ्चित्साम्यमवेष्य ये विदधते काचेद्रनिलाभिदा  
तेषा न प्रमदावहा तनुधिया गृढा कवीना कृतिः ॥  
ये जानति विशेषमप्यविषमे रेखोपरेखाशतो  
वस्तुन्यस्तु सतामित, दृतविया तेषा महानुत्सव. ॥६॥

**अर्थ.**—जेम काइक सरसापणु देखीने काचमां अने  
इद्रनीलमणिमा अभेदरूप ते एकपणु जाणे, तेगा अल्प उद्धिगालाने  
मोटा कपिनी गूढ अर्थनी रचना ते हर्षमणी न थाय जे ग्राणी  
अविषम वस्तुने गिरे एक रसा, उपरेखा, अर्धरेखा इत्यादिक  
अशे थकी वस्तुने विशेषपणे जाणे छे, एवा कुशल उद्धिगाला  
सज्जनने ए ग्रन्थना जे भाग छे, ते महा ओच्छवरूप छे. ॥ ६ ॥

पूर्णाध्यात्मपदार्थसार्थवटना चेतश्चमत्कारिणी  
 मोहच्छब्दशां भवेत्तलुधियां तो पंडितानामिव ।।  
 काकुच्याकुलकामगर्वगहनप्रोदाम वाक्चातुरी  
 कामिन्याः प्रसभं प्रमोदयति न ग्राम्यान् विदर्घानिवाऽ ॥

**अर्थः**—जेमां पूर्ण अध्यात्म पदार्थ ते सहित घटना छे, पण जेनी दशा अज्ञाने करीने अवराणी छे एवा अल्पबुद्धिवालाना चित्तमां तो जे रीते पंडित लोक आवा ग्रंथथी रीझ पामे ते रीतनो चमत्कार न उपजावे. तेहनो दृष्टांत—जेम कामे व्यापी थकी, अंतरंगमां विषयसुखने इच्छती थकी, तथा वाह्यथी भय शोक धरती थकी, पुरुषने वछम, हुं रूपवती एम गर्वे भरी थकी, रुडी वचननी चतुराइ करनार एवी जे चतुर स्त्री होय ते पण गामडीआ मूर्खने रीझवी न शके, पण पंडितने तो आनंद पमाडे तेनी पेरे जाणदुँ ॥ ७ ॥

स्नात्वा सिद्धांतकुंडे विधुकरविशदाध्यात्मपानीयपूरै—  
 स्तापं संसारदुःखं कलिकलुपमलं लोभतृष्णां च हित्वा ॥  
 जाता ये शुद्धरूपाः शमदमशुचिताचंदनालिसगात्राः  
 शीलालंकारसाराः सकलगुणनिधीन्सज्जनांस्तान्नमामः ॥

**अर्थः**—सिद्धांतरूप कुंडमां चंद्र सरखा निर्मल अध्यात्म रूप पाणीना पूरमां स्नान करीने, भवदुःखरूप जे ताप अने पापरूप जे मंल तथा लोभ, ने तृष्णाने छांडीने, यथा शुद्धरूपे करी, वली समतारूप इंद्रियदमन जे पवित्र ते रूप चंदने करी शरीर निलेपित छे जेनुं, वली शीलरूप घराखे करीं शोभता, सर्वगुणना निधान एवा जे सज्जन तेनै असे नमीए छीए.

पायोदं पश्यवैर्विपुलरसभर वर्षति ग्रयकर्त्ता  
 प्रेमणा पूरैस्तु चेतःमर इह सुहृदा क्षाव्यते वेगवद्धिः ॥  
 त्रुट्यति स्वातथधा पुनरसमगुणद्वेपिणा दुर्जनाना  
 चिब भावज्ञनेत्रात् प्रणयरसवशान्नि सरत्यश्रुनीरम् ॥९॥

अर्थः—जे ग्रयकर्त्ता मेष सरखा हे से पद्धत्ये करीने,  
 उह रमभरे, वरसता थका ते प्रेमरूप पूर ते सज्जनना चित्त-  
 रूप सरोवरमा वेगे करीने भराय हे, वली अमाधारण गुणना  
 द्वेषी जे दुर्जन, तेना तो अतकरणना वध तूटे हे, अने एवा  
 विचिप्रकारी जे ग्रथ तेना भावना जाण जे पुरुष हे ते विनये-  
 प्रणीत रसे उज्ज्वला हे तेना नेत्रथी स्नेहरूप आसु झरे हे ॥९॥  
 उद्दामग्रथभावप्रथनभवयशः सचयः सत्कर्त्ताना  
 क्षीराद्विर्भर्मयये य, सहृदयविषुधैर्मेषुणा वर्णनेन ॥  
 एतद्विढीरपिंडो भवति विषुरुचेर्मडल पिष्ठुपस्ता  
 स्तारा कैलासशैलादय इद्ददधते वीचिविक्षोभलीला ॥१०॥

अर्थः—रुडा कमिनी उद्दामके प्रीढ एहवी जे ग्रथना  
 भावनी रचना तेणे करीने उपनो जे यश्नो समृद्ध ते रूप क्षीर  
 समुद्र ते सज्जन पंडिते वर्णनरूपी मेरुए करीने मव्यो तेथी  
 प्रगटश्च जे फीण, तेनो उज्ज्वलो चन्द्रमा थयो, वली तेने वलोपता  
 जे छाटा उच्चा तेना तारामडल थया, तथा कैलासादिक पर्वत  
 थया, ए रीते ग्रथनो जश लीलाए करी प्रमर्यो ॥ १० ॥

काव्य द्वाकर्णीना हृतमसृतमिति स्वः सदा पानशक्ती  
 वेद धत्ते तु मूर्खा सृदुतरहृदयः सज्जनो व्यापुतेन ॥

ज्ञात्वा सर्वोपभोग्यं प्रसुमरमय तत्कीर्तिपीयूषपूरं  
नित्यं रक्षाविधानानियतमतितरां मोदते च स्मरेन ॥१॥

**अर्थः—** कविनां काव्य देखीने अमृत द्वायुं, एम विचारीने देवताओ सदा अमृत पीवानी शंका धरता थका खेद धरे छे. शामाटे जे मृदु सुकोमल छे हृदय जेनुं एवा जे सज्जन ते मस्तक धृणावीने जे सर्वने उपभोग्यपणे प्रसरतुं एबुं, कविनी कीर्तिरूप अमृतनुं पूर तथा जेने निरंतर रक्षास्प ढांकणुं अत्यन्तपणे दीधुं छे तेने जाणीने, देखीने हर्य पामे छे ॥ १ ॥

निष्पाद्य श्लोककुंभं निपुणनयमृदा कुंभकाराः कर्वोद्रा  
दाळ्यं चारोप्यस्मिन् किमपि परिचयात्सत्परीक्षार्कभासाम्  
पकं कुर्वति यादं गुणहरणमतिप्रज्वलदोपदाष्टि—  
ज्वालामालाकराले खलजनवचनज्वालजिह्वे निवेद्य ॥२॥

**अर्थः—** रुडा नयरूप माटीबडे कवीश्वररूपी जे कुंभकार ते श्लोकरूप घडो निपजावे, पछी जेम कुंभकार ते घटने परिचयथी हाथे झाली, टपणे समारी तडके मूके तेम श्लोक घटने परिचय विचारीने पद अक्षर आघापाडा होय तेने समारे एवी रीते तडके मूके; पछी पंडितने देखाडी परिपक करे, ते जाणे नीभाडो देखाडे छे. हवे दुर्जन जाणे जे ए पंडित छे, तेथी माहरा गुण हरण थशे, एम बलतो थको पंडितनी जोडेली कलामां दोष काढवानी दृष्टिरूप आगमनी ज्वालानी श्रेणि तेणे करी विकराल एवी पोतानी नजररूप अग्नि, वली ते दुर्जननां जे वचन ते जाणे निंदारूप अग्निनी ज्वाला तेणे करी घडेली जीम ते

वेहु अग्निना वचना ग्रथस्य घडो मूकीने पाको करे छे, अने  
नीभाडानो राख्व थाय, घटमूल पोसाय छे ॥ १२ ॥

इकुडाक्षारसौध, कविजनवचन दुर्जनस्पानियत्रा-  
ज्ञानार्थद्रव्ययोगात्मसुपचितगुणे मशता याति सद्यः ॥  
सतः पित्वा यदुच्चर्दधति हृदि मुद धूर्णयत्यक्षियुग्म  
स्वैर हर्षप्रकर्षादपि च चिदधते नृत्यगानप्रबध ॥ १३ ॥

**अर्थ.**—शेलडी अने द्राक्षना रसना ममूह सरखु कविनुं  
वचन छे, पण दुर्जनस्पी अग्निनु जे यत्र छे ते मध्ये नाना प्रका-  
रना द्रव्यना योगयकी रुडी रीते गुणपुष्टिने पामतु एहबु  
कविनु जे वचन ते, ताजा मदिराशनाने पामे छे, ते मदिराने  
हर्षे करी सज्जन पुरुप पान करीने हृदयमा हर्ष धरे छे, तेथी बे  
आखो धुर्णयमान थाय छे। स्वडच्छाये हर्षना कछुलथी पण  
शोक्लो भागार्थ पामीने नाचे छे, गाय छे ॥ १३ ॥

नव्योऽस्माक प्रवधोऽप्यनणुगुणभृता मञ्जनाना प्रभावात्  
विरुपात् स्यादिति सुदितकरणविधां प्रार्थनीया न किं नः ॥  
निष्णातात्र स्पतस्ते रविरुचयहयाभोरुद्धाणा गुणाना-  
सुमासेऽपेक्षणीयो न खलु पररुचा कापि तेषा स्वभावः ॥ १४ ॥

**अर्थ.**—अमारो ग्रथ नयो छे, तोपण महागुणपत जे  
मञ्जन तेना प्रभावयकी विरुपात थजो ! ॥ रीते रुडा हितने  
अर्थ अमार ए सज्जनने प्रार्थना करवा योग्य नधी शु ॥ अपितु  
ऐ ज जेम कमलना गुणने उद्धाम करवाने सूर्यना किरण छे एम  
पोतायसी ले प्रणिण छे एवा ते सञ्जनना जे स्वभाव ते कपाये  
पररुत्तिमणी निथे उपेतवा योग्य नधी ॥ १४ ॥

यत्कीर्तिस्फूर्तिगानावहितसुरवधृवृद्धकोलाहलेन  
 प्रशुब्धस्वर्गसेतोः पतितजलभरैः क्षालिनः शौत्यमेति ॥  
 अथ्रांतभ्रांतकांतग्रहगणकिरणैस्तापवान् स्वर्णशैलो  
 आजंते ते मुनींद्रा नयविजयवुधाः मज्जनत्रातधुर्याः ॥१५॥

**अर्थः**—हवे पोताना गुरुनो वर्णव करे छे. जेनी प्रसरती  
 जे कीर्ति तेने गावाने सावधान एटले स्वर्गमां देवतानी अप्स-  
 राओ जे छे ते श्रीनयविजयजीना गुण गाय छे, तेना गीत  
 शब्दना कोलाहले करीने थोमना पामी एवी जे स्वर्ग नदी तेनी  
 पाज मांगी, तेथी पड्युँ जे जल तेना समृहे करी पखालयो जे  
 मेरु पर्वत, तेणे करी मेरुर्पर्वत पण शीतलताने पामयो छे. नहि  
 तो अहर्निश प्रदक्षिणायै भवता जे ग्रहमंडल तेना किरणे करी  
 तापवंत मेरु हतो, ते हमणां शीतल थयो थको शोभे छे. एवा  
 ते मुनींद्र श्रीनयविजयनामा पंडित जे सज्जन पुरुषोना समृहमां  
 बडेरा हता ॥ १५ ॥

चक्रे प्रकरणमेतत्तपदसेवापरो यशोविजयः ॥  
 अध्यात्मधृतरुचीनामिदमानन्दावहं भवतु ॥ १६ ॥

**अर्थः**—तेना चरणना सेवक उपाध्याय श्रीयशोविजयजी  
 ए प्रकरण करता हवा, ते अध्यात्मने विषे जेणे रुचि धरी छे,  
 एवा प्राणीने रुचि सहित ए प्रकरण आनंद सुखनुं आपनार  
 होजो ॥ १६ ॥

॥ इति सज्जनस्तुतिअधिकार एकर्विशतितमः समाप्तः ॥

॥ इति महोपाध्याय श्रीकृल्वाणविजयजीगणि शिष्यमुख्य पडित  
 श्रीलाभपिजयगणि शिष्य मुख्य पडित श्रीजितपिजयगणि  
 तच्छिंशमुख्य पडित श्रीनयपिजयगणी चरणकमलचचरी-  
 केण पटित श्रीपद्मपिजयगणिसहोदरेण पडित श्री  
 यशोपिजयेन पिरचिते अध्यात्मसारप्रकरणे  
 सप्तमग्रथं समाप्तः ॥

॥ इति श्रीमत्तपागच्छे भद्रारकश्रीविजयसिहस्रीश्वर  
 शिष्य पडित श्रीसत्यविजयगणि शिष्य पडित श्री  
 कर्पूरविजयगणि शिष्य पडित श्रीक्षमाविजय-  
 गणि शिष्य पडित श्रीयशोविजयगणि शिष्य  
 पडित श्रीशुभविजयगणि शिष्य पडित  
 श्रीवीरविजयगणिभिरध्यात्मसार  
 ग्रथस्य वार्त्तिकस्त्वपो मुनि कीर्ति-  
 विजयस्यानुग्रहाया यटवार्थं  
 श्रृङ् त सवत् १८८१ चंत्र  
 शुक्लपक्षे पूर्णिमाया-  
 मितिश्रेयः ॥